ਸੂਫ਼ੀ ਸੰਤ ਚਰਿਤ

ਭਗਵਾਨ





सूफी संत-चरित

चुने हुए मुस्लिम संतों के जीवन-परिचय और उपदेश

•

लेखक

'भगवान'



१९६६

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
एन-७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-११०००१

●

दूसरी बार : १६६६
प्रतियाँ : ११००
मूल्य : रु० 20

●

मुद्रक
पशुपति ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली

प्रकाशकीय

संत-साहित्य के प्रकाशन की ओर 'मण्डल' का ध्यान बहुत दिनों से रहा है और उसने अबतक उसके अन्तर्गत कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिन्हें सभी वर्गों के पाठकों ने पसन्द किया है और उनकी उपयोगिता को मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है।

प्रस्तुत पुस्तक उसी श्रृंखला की एक मूल्यवान कड़ी है। इसमें चुने हुए पच्चीस मुस्लिम संतों के संक्षिप्त जीवन-परिचय दिये गए हैं, साथ ही उनके उपदेश भी। इन जीवन-चरितों और उपदेशों में जीवन-शोधकों को तो प्रेरणादायक सामग्री प्राप्त होती ही है, सामान्य पाठकों को भी बहुत-कुछ मिलता है। वस्तुतः, संत-महात्मा किसी भी देश और किसी भी धर्म में पैदा हों, वे देश-काल की परिधि में सीमित नहीं होते। उनकी वाणी सार्वजनीन और सर्वकालीन होती है।

इस पुस्तक के उदात्त चरितों में बहुत-सी ऐसी घटनाएं मिलती हैं, जो शिक्षित-अशिक्षित सभी के लिए शिक्षाप्रद हैं। वे जीवन के लक्ष्य को समझने और उसे प्राप्त करने की दिशा में अच्छी प्रेरणा देती हैं। कुछ चमत्कारी घटनाएं भी हैं, जिन्हें संभव है, बुद्धिवादी सहज ग्रहण न कर सकें। ऐसी घटनाओं के शाब्दिक अर्थ को न लेकर उनकी मूल भावना को समझेंगे तो उनमें से नया प्रकाश मिलेगा।

यह पुस्तक उर्दू के सुविख्यात ग्रंथ 'तज़किरत्-उल-औलिया' के आधार पर तैयार की गई है।

इसके लेखक का वास्तविक नाम श्री क्षेमानन्द राहत है। वह हिन्दी के पुराने लेखक हैं। मौलिक लेखक के रूप में उनकी सेवाएं उल्लेखनीय रही हैं। उनकी कविताओं ने किसी समय में हिन्दी-जगत में अच्छा स्थान प्राप्त किया था।

पुस्तक की भाषा और शैली के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं : संक्षेप में हम इतना ही निवेदन करेंगे कि सारी सामग्री को उन्होंने बड़ी ही प्रांजल, प्रवाहपूर्ण तथा सजीव भाषा में प्रस्तुत किया है। प्रत्येक चरित को पढ़ने में ऐसा जान पड़ता है, मानो किसी उपन्यास का अध्याय पढ़ रहे हों।

आज के विज्ञान-युग में हमारा जीवन इतना भौतिकता से आवृत्त हो रहा है कि हमारे मूल्य ही बदल गए हैं। फलतः, हमारे जीवन में अशान्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। विज्ञान की उपलब्धियों को हम आज अस्वीकार नहीं कर सकते; लेकिन इसमें संदेह नहीं कि जबतक विज्ञान के केन्द्र-विन्दु मानव का सुख-दुख नहीं रहेगा, अर्थात् विज्ञान और आध्यात्मिकता का समन्वय नहीं होगा, तबतक मानव सच्चे सुख और स्थायी शान्ति की प्राप्ति नहीं कर सकेगा।

हम आशा करते हैं कि इस पुस्तक का सर्वत्र आदर होगा और इसके पठन-पाठन से सभी वर्गों और सभी धर्मों के पाठक लाभान्वित होंगे।

—मंत्री

विषय-सूची

सूफ़ी संत-चरित

सूफ़ी सन्त-चरित

: १ :

राबिआ

भगवान सन्तों के हृदय से खेलते हैं। उनकी आत्मा में बैठकर चहकते हैं। उनके पारस्परिक वाग्-विनोद और प्रेमालाप में काफ़ी बेतकल्लुफ़ी रहती है; मगर वे अपने भक्तों पर जुल्म करने में भी नहीं चूकते। जितना गहरा उनका प्यार होता है उनका जुल्म भी कुछ उतना ही ज्यादा तीखा होता है।

सन्त-शिरोमणि राबिआ के साथ उनका कुछ ऐसा ही सलूक था। उस पर उन्होंने जुल्म न किया हो, यह तो नहीं कहा जा सकता; पर उस पर उनका प्यार भी अपार था। भले आदमी की तरह भगवान को भी चाहिए कि भक्त का बोझा बटा लें। कमज़ोर पैरों वाला इन्सान कैसे सातवें आस्मान (वैकुण्ठ) या हृदय-गुहा में छुपे ईश्वर तक पहुँच सकता है! भगवान शक्तिशाली हैं! उन्हें कहीं भी पहुँचना कठिन नहीं।

मुस्लिम संतों के इतिहास में राबिआ का अस्तित्व अद्वितीय है। वह स्त्री सन्तों में ही अग्रगण्य नहीं, पुरुषों में भी यदि वह सबसे आगे नहीं तो किसी से कम भी नहीं। राबिआ के जीवन की श्रेष्ठता और विचारों की शुद्धता किसी भी जाति और किसी भी काल के सन्तों के लिए अभिनन्दनीय कही जा सकती है। उसके समकालीन ऊँचे-ऊँचे सन्त दिल से उसकी इज्ज़त करते और सत्संग से लाभान्वित होते।

राबिआ के माता-पिता भक्त-हृदय, ईश्वर-विश्वासी, आत्म-सन्तोषी और बड़े ही दीन थे। कहते हैं कि जब उसका जन्म हुआ तो ग़रीबी इतनी ज्यादा थी कि न चिराग़ में तेल था, न उसे ओढ़ाने के लिए कोई कपड़ा ही घर में था। नाभि पर तेल रखने का रिवाज था, लेकिन तेल घर में था नहीं। बुझे दिल से उसके पिता पड़ोसी के घर गए; पर उसने द्वार ही न खोला।

हद दर्जे की अपनी लाचारी से दुखी होकर वह घर आकर पड़ रहे। आँख लग गई तो स्वप्न देखा कि रसूल मुहम्मद कह रहे हैं—"रंज न करो। तुम्हारी यह लड़की खुदा की बड़ी ही प्यारी होगी। बेहद वफ़ादारी के साथ उनकी इबादत करेगी। मेरी उम्मत (समुदाय) के ७० हज़ार इंसानों का उसके ज़रीआ गुनाहों का छुटकारा होनेवाला है। तुम एक काम करो। एक कागज़ पर जो बताता हूँ, वह लिख कर अमीर बसरा के पास भेज दो :

"कि तू हर रोज रात को एक हज़ार दुरूद (रसूल पर सलाम) देता है और जुमा की रात को ४०००; पर इस जुमा की रात को तो तू अपना वह दुरूद देना भूल गया। इससे बतौर कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) रुक्काहज़ा को चार सौ दीनार दे दे।" आँख खुली तो वह बहुत रोए—रसूल को मेरे लिए कितना कष्ट करना पड़ रहा है। पर स्वप्न में मिले आदेश के अनुसार पत्र लिख कर दरबान के हाथों अमीर बसरा के पास भेज दिया।

अमीर ने जब वह कागज़ देखा तो बहुत विस्मित हुआ। सचमुच वह दुरूद देना भूल गया था। पर उसकी प्रसन्नता उसके विस्मय से भी अधिक थी, रसूल को उसका खयाल है। वह जो दुरूद देता है उसे रसूल स्वीकार करते हैं। उसने १० हज़ार दीनार शुक्राने में फ़क़ीरों को बाँटने का हुक्म दिया और ४ सौ दीनार राबिआ के पिता के पास भेजे। इतना ही नहीं, वह खुद दौड़ा हुआ उनके पास आया और बोला, "जब ज़रूरत हो हुक्म दें, बजा लाऊँगा।"

जब राबिआ बड़ी हुई तो माता-पिता का देहान्त हो गया और उन्हीं दिनों एक भयंकर अकाल पड़ा, जिसमें उसकी दूसरी तीन बहनें तितर-बितर हो गईं। राबिआ को भी किसी ने पकड़ पर ग़ुलाम बना लिया, और फिर उसे किसी दूसरे ज़ालिम के हाथ बेच दिया। वह राबिआ से सख़्त मेहनत लेता। राबिआ दिन में रोज़े रखती, मेहनत-मशक्क़त करती और रात को जब सब सो जाते, वह अकेले में बैठकर दर्द भरे दिल से खुदा की इबादत करती।

एक दिन रात के समय जब वह सिज्दे में थी—सिसक-सिसक कर कह रही थी "तुमने मुझे दूसरे की मिल्कियत बना दिया है। इसलिए दिन में तेरे दरबार में आने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती। उसीकी खिदमत में लगी रहती हूँ; पर ऐ मेरे दिल के मालिक! तू जानता है कि मेरी ख़ाहिश तो तेरी खिदमत करने की है; तेरी दरगाह मेरी आँखों की रोशनी है; अगर आज़ाद होती, तो तेरी दी हुई इस ज़िन्दगी का हर लम्हा तेरी खिदमत, तेरी इबादत में ही बीतता। वैसे जो तेरी मर्ज़ी!"

दैवयोग से मालिक की आँख खुली। वह उठा, आवाज़ सुन कर उधर आया यह देखने के लिए कि यह कैसी आवाज़ है और कहाँ से आ रही है। उसने देखा, राबिआ सिज्दे में कुछ कह रही है। वह ध्यान से सुनने लगा। राबिआ की जुबान नहीं, उसका दिल बोल रहा था और एक दैवी ज्योति उसके सिर पर चमक रही थी। यह सब देखकर वह सन्न रह गया—यह तो कोई बहुत ही बड़ी पाक हस्ती है। इससे सेवा लेना तो बड़ा गुनाह है!

सवेरा होते ही मालिक ने राबिआ को गुलामी से आज़ाद कर दिया और बड़ी विनम्रता से कहा, "मेरे गुनाह (अपराध) माफ़ करें। अनजान में मुझसे बड़ी भूल हुई। अब आप आज़ाद हैं, जहाँ जाना चाहें जा सकती हैं। अगर यहाँ रहना चाहें तो मैं बड़ी खुशी से आपकी खिदमत करूँगा।" राबिआ वहाँ से चली आई और एकान्त में जाकर जी-जान से अपने कृपालु भगवान की आराधना में लीन हो गई।

उनकी साधना के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह दिन-रात आराधना में निमग्न रहतीं। रोज एक हज़ार नमाज़ पढ़तीं। इस तरह बहुत दिनों तक जंगलों में रहीं और फिर गोशानशीनी (एकांतवास) इख्तियार की। किसी से मिलती-जुलती न थीं।

हसन बसरी नाम के प्रतिष्ठित और पहुँचे हुए सन्त भी वहीं रहते थे। दोनों की एक-दूसरे के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। राबिआ कभी-कभी उनके उपदेश सुनने भी जाती।

मुसलमान होने के नाते, हज करने और मक्का-मदीने के दर्शन करने की उनको इच्छा होना स्वाभाविक ही है; पर उन्होंने जब हज का इरादा किया उस समय तक अध्यात्म-लोक में वह बहुत ऊँचे उठ चुकी थीं। यहाँ तक कि फरीदुद्दीन अत्तार ने अपनी बहुमूल्य पुस्तक में लिखा है कि काबा खुद उनके स्वागत के लिए आगे आया और दूसरे यात्रियों को वह अपने स्थान पर नहीं दिखाई दिया।

इस सबंध में एक बड़ी ही मज़ेदार घटना घटित हुई—एक बुज़ुर्ग सन्त इब्राहीम-बिन-अदहम उसी समय चौदह वर्ष की यात्रा समाप्त करके मक्का पहुँचे। वह हर कदम पर रकअत (एक विशेष ढंग की नमाज़) पढ़ते। इसीलिए उनको चौदह वर्ष लगे; पर जब वह वहाँ पहुँचे तो उनको काबा नज़र न आया।

बड़े दुखी हुए कि जिसके लिए इतनी मेहनत की वह नज़रों से ओझल है। समझा, शायद आँखों में फ़र्क़ आ गया है। बड़ी दीनता से भगवान के आगे गिड़गिड़ाए। भगवान ने उनके हृदय को आश्वासन देते हुए

कहा, "ऐ इब्राहीम ! तेरी आँखों में कोई फ़र्क नहीं है। काबा इस वक़्त एक बूढ़ी औरत के इस्तिक़बाल के लिए गया है। इसीलिए तुम्हें नज़र नहीं आ रहा।"

ऐसी कौन-सी भाग्यशालिनी, पुण्य-शीला महिला है वह कि जिसके स्वागत के लिए खुद काबा गया है। भगवान से वे यह पूछ ही रहे थे कि लकड़ी टेक कर आती हुई एक बुढ़िया को उन्होंने देखा। वे राबिआ थीं। प्रेम भरे स्वर में झिड़कते हुए वे बोले, "अरी राबिआ ! यह कैसा शोर और हंगामा तुमने जहान में मचा रक्खा है !"

बूढ़ी राबिआ बोली, "शोर मैंने नहीं, शोर बरपा किया है तुमने कि चौदह बरस के लम्बे अर्से में खान-ए-काबा में आए हो।" इब्राहीम बोले, "मैं हर कदम पर नमाज़ अदा करता हुआ आया हूँ।" रहस्योद्घाटन-सा करती हुई राबिआ बोली, "तुमने नमाज़ पढ़कर रास्ता तय किया। मैंने बेखुदी और हलीमी से अपना रास्ता तय किया है।"

यह आध्यात्मिक इतिहास की एक बड़ी ही सुन्दर घटना है और एक स्वर्ण-संयोग था कि दोनों एक ही समय काबा पहुँचे। नमाज़ और इब्राहीम के तप से कर्म और घमंड का भाव प्रकट हुआ, जिसकी कलई काबा के ग़ायब होने से खुल गई। विनम्रता और दीनता से घमंड नष्ट होकर आत्म-समर्पिता खिल उठती है और इसी उच्चता को घोषित करने के लिए काबा द्वारा राबिआ का स्वागत हुआ।

पिसे हुए सुरमे को पीसने के लिए ही मानो लिखने वाले ने लिखा है कि हज करने के बाद राबिआ रो-रोकर प्रार्थना करने लगीं कि मेरा हज यदि स्वीकार न किया गया तो यह एक बड़ी मुसीबत होगी। फिर प्रेम भरी बेतकल्लुफ़ी से बोलीं, "मालिक ! तुमने हज पर भी नेक वादा फ़रमाया है और मुसीबत पर भी। नामंज़ूर हज मुसीबत है। यह कहो कि इस मुसीबत का सवाब (पुण्य) क्या है ?"

राबिआ बसरे वापस आकर आराधना में लीन हो गईं कि इतने में फिर हज का समय आया। उन्होंने सोचा, पिछली बार काबा ने मेरा सम्मान किया था, अबके मैं काबा का सम्मान करूँगी और पहलू के बल लुढ़कती हुई सात बरस में काबा तक पहुँची। कृषकाय, तपोनिष्ठ राबिआ के प्यार भरे हृदय में अपने प्यारे के दर्शनों की लालसा जागी, तो वहाँ से गहरी फटकार आई :

"ऐ दीदार की प्यासी राबिआ ! यह तेरे दिल में क्या खाहिश पैदा हुई है ? अगर तू यही चाहती है तो कह मैं अपनी तजल्ली (तेज) दिखाऊँ, और दम भर में तू जल कर खाक का ढेर हो जाय ?" राबिआ ने दीनता

से कहा, "मेरी यह ताकत कहाँ जो ऐसा कहूँ। हाँ, इतना ज़रूर कहूँगी कि दीदार की मर्ज़ी नहीं है तो मुझे मर्तबा-ए-फ़ुक्र (आत्म-तुष्टि) बख़्शा जाय।"

क्षण भर में सब-कुछ दे सकने की शक्ति वाले भगवान किसी कंजूस का दिल उधार लेकर बोले, "राबिआ, फ़ुक्र तो हमारे कहर (बलाओं) का ख़ुश्क साल है, और यह उन मर्दों (तेजस्वियों) के लिए है, जो हममें अपने-आपको खो देते हैं, बाल भर भी फ़ासला नहीं रहता और तब हम मामला पलट देते हैं, यानी उन्हें अपने से दूर कर देते हैं; फिर भी वे दिल पर मैल नहीं लाते हैं, नाउम्मीद नहीं होते; हमारी क़ुर्बत (सहवास) हासिल करने के सरूर में मस्त रहते हैं।"

और फिर पत्थर का दिल करके बोले, "तू ज़माने के अभी ७० पर्दों में है। जबतक इन पर्दों से निकल कर हमारी राह में सच्चे जी से कदम न रक्खे, तबतक तुझे फ़ुक्र का नाम लेना भी वाजिब नहीं।" फिर बोले, "ऊपर देख"; और राबिआ ने देखा तो लहू की एक नदी-सी आकाश में उमड़ती दिखाई पड़ी। ग़ैब (परोक्ष) से आवाज़ आई, "ये दरिया हमारे प्यारों की आँखों के खून का है, जिन्होंने हमारी राह में अपने को मिटा दिया।"

मालूम होता है, राबिआ के उस अहंकारी तप से भगवान सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सात वर्ष पहलू के बल चलने की उस क्रिया पर एक छींटा कसा। आखिर राबिआ बोलीं, "मगर तुम मुझे अपने घर में रहने की इजाज़त नहीं देते, और सच तो यह है कि मैं इस लायक हूँ ही नहीं, क्योंकि मैंने तुम्हारी मर्ज़ी के बिना तुम्हारे दीदार की तमन्ना की सो मुझे बसरे जाकर अपनी इबादत करने की मंज़ूरी अता करो।"

एक बार जब वे हज को गईं तो उस समय उनके पास एक बहुत ही दुर्बल गधा था। उसी पर वह अपना सामान लाद कर काफ़िले के साथ चलीं। मार्ग में गधा मर गया। लोग बोले, "आपका सामान हम ले चलेंगे।" उत्तर दिया, "तुम जाओ, मैं तुम्हारे भरोसे नहीं आई हूँ।" जब सब चले गए तो दर्द भरे प्यार से कहा, "तुम्हारे क्या ढंग हैं? क्या सातों आस्मानों के मालिक एक ग़रीब औरत के साथ ऐसा ही सलूक करते हैं? पहले तो अपने घर की ओर बुलाया और अब रास्ते में गधे को मार दिया!"

वह कह ही रही थीं कि इस बियाबान (जंगल) में निपट अकेली मैं भला क्या करूँ कि गधा ज़िन्दा हो उठा। ख़ुशी-ख़ुशी सामान रख कर वह आगे चलीं और लोगों ने लिखा है कि वह जानवर उसके बाद भी बहुत दिनों तक ज़िन्दा रहा। मक्का के निकट पहुँच कर वह एक जंगल में ठहरीं।

उनके मन में मन्थन हुआ—मैं एक मुट्ठी खाक हूँ और काबा पत्थर का मकान, मैं चाहती हूँ कि बिला वासिता (माध्यम) तू मिल जाय।

वह बोले, "ऐ राबिआ ! मेरे दीदार की यह कैसी तमन्ना तेरे दिल में पैदा हुई है? क्या तू नहीं जानती कि मूसा की दुआ पर मैंने अपनी तजल्ली (तेज) का एक ही कतरा कोहेतूर[1] पर भेजा था जिससे पहाड़ टुकड़े-टुकड़े हो गया? क्या तू चाहती है कि तेरे लिए मैं अपना जलाल ज़ाहिर करूँ और यह दुनिया नेस्तोनाबूद हो जाय! और सारे आलम का खून तेरे ऐमाल-नामे (कर्मलेखा) में लिखा जाय?"

अब राबिआ अपने वतन बसरे में आकर इबादत करने लगीं। किसी ने लिखा है कि जब वह हज को गई थीं और काबा को अपने स्वागत के लिए आते देखा तो कहा, "मैं खान-ए-काबा को क्या करूँगी, मुझ तो मालिके-काबा चाहिए।" उन्होंने विवाह नहीं किया था। किसी सन्त ने जब विवाह का जिक्र छेड़ा तो बोलीं, "यह सवाल तो तुम उससे करो कि जिसकी मैं मिल्कियत हूँ।!"

एक बार दो सन्त मिलने आए। भूखे थे। यह भी सोचा—राबिआ के यहाँ जो मिलेगा, हलाल यानी पाक होगा। उसके पास दो रोटियाँ थीं। वह उनके सामने रख दीं। अभी खाना शुरू नहीं किया था कि एक फ़कीर आया और राबिआ ने वे रोटियाँ उठा कर उसे दे दीं। कुछ देर में एक दासी एक तश्तरी में कुछ खाना लाई, गिना तो १८ रोटियाँ थीं। राबिआ ने यह कह कर कि यह मेरे लिए नहीं है, उन्हें वापस कर दिया। कुछ देर बाद दासी फिर आई। अबकी गिना तो २० थीं।

राबिआ ने अब सन्तों के सामने रख दीं। सन्त भोजन करते समय मन-ही-मन इस घटना पर आश्चर्य कर रहे थे। जब भोजन कर चुके तो राबिआ से पूछा कि क्या राज़ था। राबिआ ने कहा, "जब तुम आए तो मैं जानती थी कि तुम भूखे हो ी रोटियाँ नाकाफ़ी होंगी। इधर खुदा ने कुरान में कहा है कि मैं एक के बदले दस देता हूँ। इसीलिए जब वह फ़कीर आया तो मैंने वे खैरात में दे दीं। बदले में १८ बे-हिसाब थीं, बीस वादा के मुताबिक़ थीं। इसलिए ले लीं।"

इतना गहरा विश्वास था उनको अपने प्रियतम में और वह भी दोस्ती निभाने में कमी न करते। एक बार वे सोयी हुई थीं कि एक चोर आया। चादर उठाकर चला तो रास्ता न मिला। चादर रखदी तो रास्ता मिल गया। लोभ से फिर चादर ली तो फिर रास्ता गुम।

---

१. वह पर्वत, जिस पर हजरत मूसा ने ईश्वर का प्रकाश देखा था।

कई बार ऐसा हुआ। आखिर आवाज़ आई, "क्यों अपने को परेशानी में डाल रहा है, मुद्दत हुई इसने अपने को मेरे सिपुर्द कर दिया। एक दोस्त सोता है, तो एक जागता है। कैसे मुमकिन है कि कोई उसकी चीज़ चुरा ले जाय ?"

उनकी अहिंसा और सर्वात्मभावना से प्रसिद्ध धर्मोपदेशक और विद्वान सन्त हसन बसरी की आँख खुली। वे कहीं जंगल में थीं। जंगली जानवर और परिन्दे मित्रभाव से उन्हें घेरे खड़े थे। इतने में हसन उधर से कहीं आ निकले और उन्हें देखते ही पशु-पक्षी भयभीत होकर भागे। हसन के दिल को चोट लगी। पूछा, "यह क्यों ?" राबिआ ने कहा, "खाया क्या था ?" बोले, "गोश्त !" राबिआ बोलीं, "जब तुम उन्हें खाते हो तो वे क्यों न तुमसे भागें और डरें ?"

हसन बसरी भी बहुत ही ऊँचे दर्जे के सन्त थे। वह अक्सर रोते थे, और इतना, कि कहते हैं कि उनके आँसू पनाले मे बह निकलते। एक बार आँसू की बूँदें पनाले से किसी पर गिरीं तो उसने पूछा, "यह पानी कैसा है ?" हसन बोले, "भाई तू इन्हें धो डाल, ये नापाक की आँखों के आँसू हैं।" राबिआ पर भी एक बार आँसू की बूंदे गिरीं तो उसने हसन से कहा, "अगर रोने में मक्कारी है तो न रो ताकि अन्दर एक दरिया उमड़ उठे जिसमें तेरा दिल बह जाय और कहीं ढूंढ़े न मिले मासिवा अल्लाह के।"

हसन और राबिआ की आध्यात्मिक चुहल का एक ज़िक्र आया है। हसन ने दरिया पर मुसल्ला (नमाज़ की चटाई) बिछा कर कहा, "आओ हम दोनों नमाज़ पढ़ें !" राबिआ ने अपना मुसल्ला हवा में फला कर कहा, आओ यहाँ, ऊपर नमाज़ पढ़ें ताकि कोई देखे नहीं।" हसन का मुसल्ला पानी पर स्थिर था तो राबिआ का आकाश में। हसन का दिल छोटा होता देख राबिआ ने सांत्वना के स्वर में कहा, "देखो हसन, तुमने जो कुछ किया वह एक मछली कर सकती है और जो मैंने किया वह एक मक्खी कर सकती है। सच तो यह है कि जो असली काम है वह इन दोनों से कहीं ऊँचा है।"

पानी और हवा में चलने से भी अधिक महत्वपूर्ण एक बात का ज़िक्र खुद हसन बसरी ने किया है। वह कहते हैं, "एक बार दिन भर और रात भर में राबिआ के घर पर रहा। फ़ल्सफ़ाना और सूफ़ियाना चर्चाएँ होती रहीं, पर न तो मेरे दिल में यह खयाल आया कि मैं मर्द हूँ और एक औरत से बात कर रहा हूँ और न राबिआ को ही यह भान हुआ कि वह औरत है।"

एक बार हसन बसरी कुछ सन्तों के साथ राबिआ के घर आए। उनके यहाँ कोई चिराग़ न था। लोगों को चिराग़ की ज़रूरत हुई तो उन्होंने अपनी उँगलियों पर फूंक मारी और उँगलियाँ चिराग़ की तरह जलने लगीं। स्वयं अत्तार ने यहाँ पर आशंका व्यक्त की है कि लोगों को उस पर विश्वास न आयगा। सच्ची बात तो यह है कि जैसे भौतिक और वैज्ञानिक नियम हैं वैसे ही इनके भी। पहली और अन्तिम बात है, "ईश्वरेच्छा और ईश्वरार्पण।")

एक बार ईश्वर-प्रेम के बारे में कुछ लोगों के पूछने पर राबिआ ने कहा, "मुहब्बत अजल (अनादिकाल) से अबद (अनंतकाल) तक गुज़री; पर कोई ऐसा न मिला जो उसका एक घूंट भी पीता। आख़िर वासिलेहक़ (ईश्वर-मिलन) हुई", और वहाँ से आवाज आई, "हम उनको दोस्त रखते हैं और वह हमको दोस्त रखते हैं", (अर्थात्, जिनके दिल में ईश्वर की सच्ची भक्ति है वह ईश्वर के मित्र होते हैं और ईश्वर उनका मित्र।

राबिआ की एकनिष्ठ ईश्वर-भक्ति उनके एक मज़ेदार स्वप्न में प्रकट हुई। स्वप्न में हज़रत मुहम्मद ने राबिआ से पूछा, "क्या तू मुझे दोस्त रखती है?" राबिआ ने उत्तर दिया, "ऐ रसूल अल्लाह! ऐसा कौन है, जिसको आपकी मुहब्बत न हो; पर खुदा की मुहब्बत का मुझ पर ऐसा ग़ल्बा (प्रभुत्व) है कि उनके सिवा किसी की दोस्ती और दुश्मनी के लिए मेरे दिल में जगह ही नहीं है।" और भी एक बार कहा, "खुदा-परस्ती से मुझे फ़ुर्सत हो तो शैतान से दुश्मनी करूँ!"

मुरीदों ने पूछा कि "जिस खुदा की आप इबादत (उपासना) करती हैं, उसको देखती भी हैं या नहीं?" बोलीं, "अगर मैं उसको देखती नहीं तो उसकी परस्तिश (पूजा) क्यों करती?" राबिआ अक्सर रोया करती थीं। किसी ने कारण पूछा तो कहा, "मैं उसकी जुदाई से डरती हूँ इसलिए कि उसकी खूगर (अभ्यस्त) हो गई हूँ। ऐसा न हो कि मौत के वक़्त यह आवाज़ आय कि तू हमारी दरगाह के लायक नहीं है।"

किसी ने पूछा, "खुदा बन्दे से किस वक़्त राज़ी होता है?" राबिआ ने उत्तर दिया, "वह उस वक़्त राज़ी होता है जब बन्दा मेहनत पर इस तरह शुक्र(कृतज्ञता)करे जैसे न'मत(सुख-संपदा)पर करता है।" गुनाह-गार की तौबा (पश्चात्ताप) कबूल होती है कि नहीं? इस प्रश्न के उत्तर में कहा, "खुदा जबतक तौबा करने की ताक़त नहीं देता तबतक कोई गुनाहगार तौबा कर ही नहीं सकता! जब वह तौबा की ताक़त देता है तो तौबा कबूल भी करता है।"

राबिआ का कहना था कि अल्लाह् की राह पर हाथ-पैरों से नहीं चला जाता सिवा दिल के। जब दिल बेदार (जाग्रत) हो जाय तो शरीर के और अंगों की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। बेदार (जाग्रत) दिल वह है जो हक़ में गुम हो जाय। उसे फिर शरीर का भान हो कहाँ ! यही दर्जा फ़नाफिल्लाह् का है, अर्थात्, ईश्वर-प्रेम में आत्मविस्मृति। दिल को ऐसा रंगों कि सब उसी रंग में रंग जाय।

मोम, सुई और बाल भेज कर राबिआ ने एक सन्त को कहलाया, "मोम की तरह जल कर दूसरों को रोशनी दो। सुई खुद नंगी रहती है; मगर दूसरों को कपड़े सी कर पहनाती है, वैसे ही तुम भी खल्क (जनता) की बेग़रज़ खिदमत करो, तब तुम बाल की तरह् लचकीले, हलीम और बेखतर हो जाओगे।" हसन ने पूछा कि तुमने यह दर्जा कैसे पाया। बोलीं, "मैंने दुनिया की सारी चीज़ों को खुदा की याद में डुबा दिया और खुदा को पाया कोरी इबादत से।"

राबिआ की मान्यता थी कि वाचिक त्याग झूठों का काम है, और अहंकार पूर्वक त्याग करने से अहंकार-त्याग की आवश्यकता बनी रहती हैं। "सब्र अगर मर्द होता तो करीम होता" इससे उनका मतलब यह है कि अविचल सन्तोष ईश्वर की कृपा का कारण होता है। ईश्वरीय ज्ञान का एक ही अर्थ है कि मन ईश्वर की ओर चले। ज्ञानी का लक्षण यही है क़ि वह ईश्वर से शुद्ध और पवित्र अन्तःकरण माँगे और फिर उसे ईश्वर ही को सौंप दे ताकि वह सुरक्षित और दुनिया के नशे से दूर रहे।

सालेह् आमरी नाम के सन्त अक्सर कहते थे कि जब कोई किसी का दरवाज़ा खटखटाता है तो कभी-न-कभी दरवाज़ा खुल ही जाता है। एक बार राबिआ के सामने जब उन्होंने यह कहा तो वे बोलीं, "यह कब तक कहते रहोगे कि खुलेगा; पहले बताओ कि वह बन्द कब हुआ जो आइंदा कभी खुलेगा।" यह सुन कर सालेह् को होश आया। उनकी बड़ी प्रशंसा की। कोई आदमी 'हाय ग़म ! हाय ग़म !' कहता था। सुन-कर बोलीं "अरे हाय बेग़मी कह, क्योंकि ग़मवाले को तो साँस लेना भी दूभर है, बोलना तो दरकिनार !"

एक व्यक्ति ने सर पर पट्टी बाँध रक्खी थी। पूछने पर बताया कि सर में दर्द है। राबिआ ने पूछा, "तेरी उम्र क्या है ?" बोला, "३० बरस।" पूछा, "इन ३० बरसों में बीमार रहा या तन्दुरुस्त ?" बोला, "तन्दुरुस्त।" राबिआ ने कहा, "इतने दिन ठीक रहा इसके शुक्राने में तो तूने पट्टी कभी न बांधी और एक दिन की बीमारी में शिकायत की पट्टी बाँधी है।"

वह छुरी भी पास में न रखती थीं इस भय से कि वो महबूब (प्यारा) और उनमें जुदाई पैदा न कर दे।

एक बार सात दिन तक रात-दिन कुछ न खाया। आठवें दिन भूख लगी, प्याले में कोई रसा दे गया था। वह चिराग़ जलाने उठीं कि बिल्ली ने प्याला उलट दिया। पानी से रोज़ा खोलना चाहा तो चिराग़ बुझ गया और आबख़ोरा हाथ से गिर कर टूट गया। दुखी होकर चीख उठीं, "या अल्लाह ! ये क्या है जो तू मेरे साथ कर रहा है?" आवाज़ आई, "ऐ राबिआ, अगर तू चाहे तो दुनिया की ने'मत तुझे दे दूँ और अपना ग़म तेरे दिल से निकाल लूँ।"

वह बोले, "देखो राबिआ ! तुम्हारी भी एक मुराद है और हमारी भी एक मुराद है। ये दोनों मुरादें एक जगह नहीं रह सकतीं। हमारा ग़म और ने'मते-दुनिया (सांसारिक-सुख) दोनों का गुज़र एक दिल में मुमकिन नहीं।" ये आवाज सुन कर राबिआ ने अपना दिल दुनिया से उसी तरह हटा लिया जैसे कोई मरनेवाला संसार की सारी आशाएँ छोड़ देता है। एकदम विरक्त होकर नित्य प्रार्थना करतीं—मेरे दिल को अपनी ही ओर लगाए रख, ताकि दुनिया उसे अपनी ओर न खींच सके।

वह प्रायः रोया करतीं। लोगों ने कहा, "आपको कोई बीमारी तो है नहीं, फिर क्यों रोती हैं?" बोलीं, "मेरे सीने के अन्दर ऐसी बीमारी है जिसका इलाज कोई हकीम नहीं कर सकता (प्रभु-मिलन ही उसकी एक मात्र औषधि है), क़यामत के दिन मेरी इस दर्दमन्दी पर शायद उन्हें रहम आय।" कपड़े बहुत ही फटे-पुराने थे। एक वृद्ध सन्त ने कहा, "आपके बहुत मुरीद हैं जो एक इशारे पर सब सामान ला देंगे।" बोलीं, "दुनिया का जो मालिक है—वही सब को देता है। फिर मैं क्यों किसी से कुछ मांगूं?"

एक बार वह बीमार हुईं। लोगों ने कारण पूछा तो कहा, "मेरे दिल में जन्नत की ख़ाहिश हुई, वह ख़फ़ा हुए। उनकी नाराज़गी इस बीमारी का कारण है।" शायद इसी बीमारी के समय सन्त हसन जब उन्हें देखने गए तो बसरे के एक अमीर को थैली लिये द्वार पर रोता पाया। बोला, "राबिआ के लिए ये दीनार लाया हूँ पर जानता हूँ कि वे लेंगी नहीं। आप कहें तो शायद ले लें।" हसन ने जाकर कहा तो बोलीं, "ख़ुदा को जानने के बाद मख़लूक से लेना तर्क (त्याग) कर दिया है कि क्या मालूम हलाल है या हराम !"

सन्त सफ़ियान और अब्दुल वहीद आमरी भी एक दिन इयादत (रोगी का हाल-चाल पूछना) को गए तो राबिआ के आगे वे

बोले न सके। राबिआ के आदेश पर सफ़ियान बोले, "आप ऐसी दुआ करें कि आप पर जो तकलीफ़ आई है, दूर हो जाय।" बोलीं, 'ऐ सफ़ियान, ये तकलीफ़ ख़ुदा की ही दी हुई है। मैं उसकी दी हुई चीज़ को क्योंकर शिकायत करूँ? दोस्त को जेबा नहीं कि दोस्त की मर्ज़ी की मुख़ालिफ़त करे।" तब सफ़ियान ने पूछा, "क्या आपका दिल किसी चीज़ को चाहता है।" बोलीं, "साहबे-इल्म (ज्ञानी) होकर कैसी बात पूछते हो। मैं बान्दी हूँ (सेविका) हूँ, बान्दी की अपनी ख़ाहिशें ही क्या!"

फिर बोलीं, "बारह बरस से मेरा दिल ख़ुरमे खाने को कह रहा है और वह बसरे में हैं भी बहुत सस्ते, लेकिन अबतक मैंने नहीं खाए इसीलिए कि मैं बान्दी हूँ। मालिक की मर्ज़ी के बिना अपनी मर्ज़ी से कुछ करना कुफ़्र(नास्तिकता) है।" सफ़ियान बोले, "आपकी बातों में दख़ल देने की किसी की ताक़त नहीं।" फिर कुछ नसीहत चाही। राबिआ ने कहा, "अगर तुम्हें दुनिया की मुहब्बत न होती तो तुम नेक मर्द होते।" सफ़ियान चौंके, "ये आप क्या कहती हैं?" राबिआ ने कहा, "मैं सच कहती हूँ।"

राबिआ का मतलब था कि संसार का प्रेम तुम्हारे दिल में न होता तो संसारी बातों की तुम चर्चा न करते। संसार अनित्य है, इसलिए संसार की सभी चीज़ें नाशवान हैं। फिर भी तुम पूछते हो कि मेरा दिल क्या चाहता है? सफ़ियान के दिल को यह बात लग गई तो रो पड़े। ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि या अल्लाह, तू मुझ से राज़ी हो। राबिआ बोलीं, "ऐ सफ़ियान, तुम्हें लाज नहीं आती कि उसकी रज़ा ढूँढ़ते हो जब कि तुम ख़ुद उससे राज़ी नहीं हो!"

मालिक-बिन-दीनार नाम के सन्त मिलने आए तो देखा एक टूटी हुई बंधनी रखी है। उसीसे वे वुज़ू करतीं और पानी पीतीं। एक पुराने बोरिये पर बैठी थीं और सर रखने के लिए ईंट थी। बोले, "बहुत से अमीर दोस्त हैं, कहें तो आपके लिए कुछ माँगूँ।" वह बोलीं, "क्या मुझे, तुम्हें और अमीरों को देने वाला एक नहीं है?" सन्त बोले "एक ही है।" वह बोलीं, "क्या वह हमें भूल गया है, और दौलतमन्दों की उसे याद है? नहीं तो क्यों उसे याद दिलाएँ! हमें यह हाल पसन्द है, क्योंकि उसको पसन्द है।"

सफ़ियान ने देखा कि राबिआ शाम से नमाज़ के लिए खड़ी हुईं, और सुबह कर दी। फिर बोलीं—उनकी इस मेह्र के लिए उनका कैसे शुक्र करूँ। और कहा, "कल शुक्राने (कृतज्ञता) में रोज़ा रखूँगी।" कभी-कभी प्रार्थना के समय प्रेम-भीरुता से कहतीं, "या अल्लाह! अगर तू मुझे दोज़ख में भेजेगा तो मैं तेरा एक ऐसा राज़ ज़ाहिर कर दूँगी कि तू मुझ से दूर भाग

जायगा!" कहतीं, "दोजख तू अपने दुश्मनों को दे, इबादत अपने दोस्तों को, मेरे लिए तो तू ही है बस।"

बोलीं, "यदि मैं दोजख के डर से या जन्नत के लोभ से तेरी इबादत करती हूँ तो मेरी ये ख्वाहिशें पूरी न हों और अगर तेरे ही लिए ये मेरी इबादत हो, तो मुझे अपना दीदार दे", और कहा, "ऐ खुदा! अगर तू मुझे दोजख में भेजेगा तो मैं यह गिला करूँगी कि मैंने तुझे अपना दोस्त बनाया। दोस्त, दोस्त के साथ ऐसा सलूक नहीं करते।" आवाज आई, "ऐ राबिआ! तू दिल से ऐसी ख्वाहिशें न कर, हम तुझे अपने पास ही रखेंगे।"

राबिआ प्रार्थना में कहा करतीं कि मेरा काम और मेरी एक ही ख्वाहिश दुनिया में यह है कि तेरा नाम जपूँ और दिल में तेरी याद बनी रहे और अन्त काल में तेरे दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो। मेरी तो इच्छा यही है आगे तू मालिक है, जैसा चाहे कर। एक रोज बोलीं, "ऐ खुदा, या तो मेरे दिल को हाज़िर कर, यानी वश में ला दे और पूजा में लगा दे, या फिर मेरी इस बेदिली की इबादत को ही मंजूर कर।"

जब राबिआ का अन्त समय आया तो जो बहुत-से बड़े-बड़े सन्त और शेख पास थे उनसे कहा, "तुम लोग उ जाओ और फ़रिश्तों के लिए जगह खाली कर दो।" सब लोग बाहर चले आये और दरवाज़ा बन्द कर दिया। एक आवाज लोगों ने सुनी। एक आयत राबिआ ने पढ़ी और कहा, "ऐ रूहे मुत्मईन! (संतुष्ट आत्मन्) अब तू अपने खुदा की ओर चल।" फिर देर तक खामोशी रही। अन्दर जाकर लोगों ने देखा कि ब्रह्म-लीन हो गईं हैं।

उपस्थित सन्तों ने कहा, "राबिआ दुनिया में आई पर कभी प्रीतम—खुदा की किसी तरह की कोई अवज्ञा नहीं की और न कभी अपनी तरफ से यही कहा कि ऐ खुदा तू मुझे इस तरह रख या उस तरह। मालिक से ही जब उन्होंने कभी कुछ न माँगा तो फिर बन्दों से तो वह माँगतीं ही क्या! आज वह दुनिया से चली गईं। खुदा की उन पर मेह्र हो।"

किसी ने स्वप्न में देखा तो पूछा—मुन्करनकीर[1] से कैसी निभी? राबिआ ने जवाब दिया कि जब वे आये और उन्होंने मुझसे सवाल किया कि तेरा रब कौन है, तो मैंने कहा कि पलट आओ और उनसे कहो कि जब तूने एक नादान औरत को इतना मशगूल होते हुए भी कभी न भुलाया तो वह तुझे क्योंकर भूल जाती, हालांकि दुनिया में तेरे सिवा किसी से उसे वास्ता न था। फिर क्यों फरिश्तों के ज़रीआ उससे सवाल करता है?

---

१. मुन्कर और नकीर दो फ़रिश्ते हैं जो कब्र में मुर्दों से पूछताछ करते हैं।

: २ :

फ़ज़ील-बिन-अयाज़

फ़ज़ील की जीवनी बड़ी ही विचित्र है। इन्हें मुस्लिम जगत का बाल्मीकि कह सकते हैं, पर बाल्मीकि और फ़ज़ील में कुछ अंतर है। बाल्मीकि जब डाकू थे तब वह निरे डाकू ही थे, भक्त न थे, और जब वह डाकू-पन छोड़कर भक्त हुए तो संस्कृत साहित्य के सर्वमान्य आदि-कवि बने। फ़ज़ील डाकुओं के सरदार थे। वह लूट का माल अपने साथियों में बाँट देते और जो चीज़ पसन्द आती स्वयं ले लेते। किन्तु उनकी विशेषता यह थी कि डाकुओं की सरदारी करते हुए उनकी ईश्वर-भक्ति चल रही थी। वह नमाज़ पढ़ते और सबके साथ मिलकर नमाज़ पढ़ते। जो डाकू नमाज़ में शामिल न होता उसे वह अपने दल से निकाल देते। उनके रोज़े-नमाज़ बराबर चलते और बड़ी लगन के साथ।

एक बार उस तरफ एक बड़ा काफ़िला आ निकला। फ़ज़ील का नाम सुनकर लोग बहुत चिन्तित हुए। एक आदमी के पास बहुत-सी नक़दी थी। उसने सोचा, इस जंगल में इसे गाड़ दूँ तो लुटने से बच जायगी। वह लेकर चला तो देखा एक संत खेमे में मुसल्ला बिछाए माला फेर रहे हैं। उसके मन में कुछ ऐसा लगा कि संत इशारे से कह रहे हैं कि रुपया रख दो। वह रुपया रखकर आया तो काफ़िला लुट चुका था। उसने सोचा जो कुछ बचा है वह भी उन्हीं संत के पास रख आऊँ, मगर जब वह वहाँ पहुँचा तो देखा कि लुटेरे लूट का माल बांट रहे हैं। वह दिल में अफ़सोस कर ही रहा था कि फ़ज़ील की उस पर नज़र पड़ी।

पुकारा, "कौन है ?" सहमा हुआ-सा वह आगे आया। फ़ज़ील ने पूछा, "यहाँ क्यों आया ?" वह बोला, "अपनी अमानत लेने।" फ़ज़ील ने कहा, "जहाँ रखी है, ले ले।" वह रुपया लेकर जब चला तब डाकुओं ने फ़ज़ील से कहा, "यह आपने क्या किया ? इस लूट में नक़दी बिल्कुल न मिली और आपने घर से नक़दी वापिस कर दी।" फ़ज़ील ने उस समय जो उत्तर दिया वह एक बहुत ही ऊँचे संत के हृदय से निकला हुआ उद्गार कहा जा सकता है। वह बोले, "उसने मुझ पर नेक-गुमान (सद्-विचार) किया और मैं अल्लाह पर नेक-गुमान करता हूँ। मैंने उसके गुमान (भ्रम) को सच्चा किया ताकि खुदा मेरे गुमान को अपनी मेहरबानी से सच्चा करे।"

एक दूसरे काफ़िले को लूटकर जब डाकू कुछ दूर पर खाना खाने बैठे तो काफ़िले के एक आदमी ने आकर पूछा, "तुम्हारा सरदार कहाँ है ?" बोला, "दरिया किनारे नमाज़ पढ़ रहे हैं। वह खाना नहीं खाते। वह रोज़ा रखते हैं।" कहा, "न रमज़ान है और न वक्ते नमाज़ !" लुटेरे बोले, "वे नफ़्ल पढ़ते हैं।" यहाँ नफ़्ल पढ़ने का आशय यह है कि फ़ज़ील ईश्वर की प्रार्थना और प्रेम में मग्न होकर रमज़ान न होने पर भी रोज़े रखते और पंज-वक्ता नमाज़ के अलावा भी रात-दिन अक्सर नमाज़ें पढ़ा करते थे।

उस आदमी को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। पता पूछकर वह फ़ज़ील के पास आया और कहा, "चोरी और डाके के साथ नमाज़ और रोज़े का मेल कैसा ?" फ़ज़ील कुंठित न हुए। उन्होंने एक आयत पढ़कर सुनाई, जिसका आशय यह था कि लोगों ने अपने पापों को स्वीकार किया और साथ ही अपने पुण्यों को भी मिला दिया। फ़ज़ील में हिम्मत और मुरव्वत उस समय भी थी। उनका यह नियम था कि जिस काफ़िले में कोई औरत होती उसके पास जाते भी नहीं। जिसके पास थोड़ा माल होता उसे न लूटते और जिसे लूटते उसके पास छोड़ अवश्य देते। तब भी उनका ध्यान नेकी की ओर ज़्यादा रहता।

फ़ज़ील का एक स्त्री से प्रेम था। वह लूट का अपना हिस्सा उसी के पास भेज देते और कभी-कभी खुद भी उसके पास जाते ? ऐसे समय एक रात को एक काफ़िला आया और उस काफ़िले में किसी आदमी ने यह आयत पढ़ी "क्या नहीं आया ऐसा वक़्त ईमानवालों के लिए कि उनके दिल अल्लाह के खौफ़ से डरें ?" यह सुनकर वह बाणविध-व्यक्ति की भांति तड़प उ े। कहने लगे, "अफ़सोस है कि लूट-मार में अपनी उम्र ज़ाया कर रहा हूँ। वक़्त आ गया है कि मैं खुदा की राह पर चलूँ।" वह सब-कुछ छोड़कर इबादत में लग गए। फिर जिनको उन्होंने सताया था उनसे जाकर माफ़ी भी मांगी। औरों ने तो माफ़ कर दिया पर एक यहूदी ने उन्हें माफ़ करना मंज़ूर न किया।

जब उससे बहुत कहा गया तो उसने शर्त रखी कि मैं तब माफ़ करूँगा जब तुम यह सामने का टीला यहाँ से हटा दो। फ़ज़ील ने मिट्टी और रेत को ढोना शुरू किया। इतने में ज़ोर की आंधी आयी और वह ीला उड़ गया। यहूदी पर इस आकस्मिक घटना का बड़ा प्रभाव पड़ा और वह फ़ज़ील से बोला, "मैंने कसम खा ली है कि जबतक तुम मेरा लूटा हुआ माल वापिस न दोगे तबतक मैं तुम्हें माफ़ न करूँगा। मेरे सिरहाने अशर्फ़ियों की थैली रखी हुई है, तुम मुझे वह उठा कर दे दो ताकि मेरी

कसम पूरी हो जाय।" फ़ज़ील ने ऐसा ही किया। अब वह मुसलमान हुआ और बोला, "जानते हो मैं मुसलमान क्यों हुआ ? तौरेत में मैंने पढ़ा कि जिसकी तौबा सच्ची होती है उसके हाथ से मिट्टी भी सोना हो जाती है। उस थैली में थी मिट्टी, निकली अशर्फ़ियाँ।"

फ़ज़ील ने अपने एक मित्र से कहा कि मैंने बहुत से गुनाह किये हैं। उनकी सफाई के लिए तुम मुझे बादशाह के पास ले चलो। बादशाह ने उनकी इज्ज़त की और कहा, "तुम बहुत ही भले आदमी हो।" जब वह घर आए तो बीवी को आवाज़ दी, पर उनके स्वर में इतनी पीड़ा थी कि बीवी ने डर कर पूछा, "क्या कहीं चोट लगी है ?" बोले, "हाँ।" पूछा, "कहाँ, किस अंग पर ?" बोले, "दिल पर।" फ़िर हज का इरादा किया। बीवी ने भी चलने का आग्रह किया और साथ हो ली। मक्का पहुँच कर वहाँ गुजाविर (दरगाह के सेवादार) बन गए। बहुत से सिद्धों और संतों के दर्शन किये और इमाम अबु हनीफ़ा के सत्संग से खूब लाभ उठाया। रिश्तेदार मिलने आये तो द्वार न खोला। उनके बहुत हठ करने पर छत से कहा, "अल्लाह तुम्हें अक्ल दे। नेक काम में लगाए।"

उनके रिश्तेदारों पर इस बात का कुछ ऐसा असर हुआ कि वह बेहोश होकर गिर पड़े। जब होश में आये तो घर की ओर रवाना हुए ? फ़ज़ील तो बालाखाने पर खड़े होकर रोया किये; पर न उतर कर आये और न उन्हें ही आने दिया। दुनियादारों के प्रति उनकी इस बेएतिनाई (उपेक्षा) ने एक बार हारूँ रशीद को भी खूब रुलाया। फ़ज़ील बरमकी को साथ लेकर पहले सफ़ियान सूरी के पास पहुँचे। वहाँ खलीफ़ा के लिए अत्यधिक आदरभाव देख कर खिन्नता से बोले, "अजी तुम मुझे कहाँ ले आए हो ?" फिर इन्हीं एकांतवासी फ़ज़ील-बिन-अयाज़ के यहाँ आए कि जिनकी चर्चा यहाँ चल रही है। फ़ज़ील उस समय यह आयत पढ़ रहे थे, "क्यों वे लोग इस बात की उम्मीद करते हैं कि जिन्होंने बुरे काम किये हैं, हम उन्हें उन लोगों के बराबर कर दें जिन्होंने नेक काम किये हैं।"

खलीफ़ा हारूँ रशीद बड़े ही प्रभावित होकर बोले, "भला इस आयत से बढ़ कर और क्या नसीहत हो सकती है।" फिर दरवाजा खटखटाया। अन्दर से आवाज़ आयी, "तुम कौन हो ?" बरमकी ने कहा, "अमीर-उल्मोमनीन तशरीफ़ लाए हैं।" जवाब मिला, "मुझे उनसे क्या, और उन्हें मुझसे क्या मतलब ? जाओ मुझे मशगूल (प्रवृत्त) मत करो।" बरमकी ने रौब जमाया, "हाकिमे वक्त की इताअत वाजिब (आज्ञापालन उचित) है।" और सुना, "देखो, मुझे रंज मत दो।" बरमकी ने कहा, "आने की इजाज़त दो नहीं तो बिना इजाज़त ही अन्दर चले आयंगे।" बोले,

"इजाज़त तो है नहीं। वैसे तुम आज़ाद हो।" दोनों के अन्दर आते ही चिराग़ बुझा दिया ताकि खलीफ़ा की सूरत न दिखे। अंधेरे में खलीफ़ा का हाथ संत के हाथ से छू गया। बोले, "कितना मुलायम है यह हाथ अगर दोज़ख से बच सके।"

यह कह कर ध्यान-मग्न होकर नमाज़ पढ़ने लगे और हारूँ रशीद थे कि बैठे रो रहे थे। नमाज़ से निवृत्त होने पर हारूँ ने बड़ी नम्रता से कहा कि कुछ नसीहत कीजिए। बोले, "तुम्हारे पिता रसूल-अल्लाह के चाचा थे। उन्होंने कहा कि मुझे किसी कौम का सरदार बना दीजिए। रसूल ने जवाब दिया कि तुम्हें नफ़्स (इंद्रिय) का सरदार बनाया। (आत्म-शासन लोक-शासन से कहीं अच्छा है।) हुकूमत से क़यामत में नदामत (लाज-हया) हासिल होगी।" खलीफ़ा ने कहा, "कुछ और कहिए।" बोले, "हज़रत उमर जब खलीफ़ा हुए तो उन्होंने कुछ बुज़ुर्गों को बुलाकर सलाह माँगी। एक ने कहा—अगर नजात (मुक्ति) चाहते हो तो बूढ़ों को पिता, जवानों को भाई, छोटों को पुत्र और स्त्रियों को माँ-बहन समझो और उनसे ऐसा ही बर्ताव करो।"

हारूँ रशीद ने कहा, "कुछ और कहिए।" बोले, "मुस्लिम सल्तनत की अपने घर की तरह देख-रेख रख और खल्क को बेटे की तरह हिफ़ाज़त कर।" कहा, "कुछ और कहिए।" बोले, "बुज़ुर्गों के साथ मेहमानों और भाइयों के साथ और औलाद के साथ नेकी कर।" फिर कहा कि मुझे डर है कि तेरी यह सुन्दर सूरत कहीं दोज़ख में जलकर बुरी न हो जाय। आयत सुनाई, "बहुत अच्छी सूरतें क़यामत के दिन दोज़ख में बुरी हो जायंगी और बहुत अमीर वहाँ क़ैद हो जायंगे।" यह सुनकर हारूँ रशीद रोने लगा और कहा—कुछ और कहिए। बोले, "खुदा से डर और उसके जवाब के लिए तैयार रह क्योंकि तेरी सल्तनत के एक-एक मुसलमान के लिए तुझसे सवाल किया जायगा और खुदा हर बंदे की बात सुनकर तेरे और उसके साथ ठीक-ठीक इन्साफ़ करेगा।" इसके बाद हारूँ रशीद के दिल पर गहरी चोट करनेवाली बात फ़ुज़ैल ने कही। वह बोले, "याद रख कि सल्तनत के ज़माने में अगर कोई बुढ़िया ग़रीबी के कारण अपने घर में भूखी सो रही होगी तो वह क़यामत में तेरा दामन पकड़कर खुदा से इन्साफ़ की तालिब होगी।" कहते हैं यह बातें सुनकर हारूँ रशीद रोते-रोते बेहोश हो गया और फ़ुज़ैल से बरमकी ने कहा, "बस, कीजिए, आपने तो अमीर-उल-मोमनीन को मार डाला।" बोले, "चुप रह आ'मा (ज्ञान-रहित)! मैंने नहीं, तूने और तेरे जैसों ने इसे मारा है।"

इस आ'मा के खिताब में जो ध्वनि थी उसने तो हारूँ रशीद को और

भी बेक़रार कर दिया। रोकर बोले, "ऐसा लगता है कि वह मुझे फ़रऊन समझते हैं।" फ़रऊन मिस्र का एक बड़ा ही अनाचारी, घमंडी और नास्तिक राजा हो गया है। अंत में हारूँ रशीद ने पूछा, "आप पर किसी का क़र्ज़ तो नहीं है?" बोले, "है, मुझ पर ख़ुदा का कर्ज़ है, मैं उसे चुका नहीं पाता। जिस इताअत (सेवा-भाव) के लिए उन्होंने पैदा किया वह मुझसे बन नहीं पाती।" खलीफ़ा ने कहा, "किसी इंसान का कर्ज़ तो नहीं है?" बोले, "अल्लाह ने इतनी ने'मतें दी हैं कि इन्सान से कर्ज़ लेने की हाजत (आवश्यकता) नहीं।" नज़राने (भेंट) के तौर पर एक हज़ार दीनार की थैली भेंट कर खलीफ़ा ने कहा :

"यह माले हलाल है। मुझे अपनी माँ से विरासत में मिला था। आप इसे मंजूर कीजिए।" इस पर फ़ज़ील बोले, "अफ़सोस है कि मेरी नसीहतें बेकार गयीं। तूने उनसे फ़ायदा न उठाया।" मैंने तो कहा, "जिसका हक़ (अधिकार) है उसको दे और तू ग़ैर-हक़दार को दे रहा है। और देख तूने कैसा ज़ुल्म करना शुरू किया है। कितनी हैरत की बात है कि मैंने तो तुझे जन्नत की ओर माइल किया और तू है कि मुझे दोजख में डालने का खयाल कर रहा है।" यह कहकर हारूँ रशीद को विदा करके द्वार बंद कर लिया। हारूँ रशीद बरमकी से बोले, "दरअस्ल सच्चा ज़ाहिद (संत पुरुष) यही है।"

संत फ़ज़ील एक दिन अपने लड़के को गोदी में लिये प्यार कर रहे थे। उस छोटे बच्चे ने पूछा, "आप मुझे दोस्त रखते हैं?" फ़ज़ील ने कहा, "हाँ।" बच्चे ने फिर कहा, "और ख़ुदा को भी दोस्त रखते हैं। मगर दो की दोस्ती एक दिल में नहीं रह सकती।" फ़ज़ील समझ गए। यह चेतावनी ख़ुदा ही दे रहे हैं। तुरंत ही लड़के को गोदी से उतार कर आराधना में लीन हो गए। एक रोज़ इर्फ़ान (ब्रह्म-ज्ञान) में लोगों के दुःख-दर्द की बातें सुन रहे थे कि अचानक बोल उठे, "या अल्लाह! अगर किसी कंजूस से भी कोई इतनी आजिजी के साथ दौलत माँगता तो वह भी उन्हें नाउम्मीद न करता। तू तो बड़ा ही मेहरबान है, अपनी मेह्र से इनकी ख़ाहिश पूरी कर।"

लोगों ने पूछा, "क्या बात है कि ख़ुदा से डरने वाले कहीं दिखायी नहीं देते?" बोले, "तुम ख़ुद डरनेवाले नहीं हो इसीलिए वह तुमसे पोशीदा हैं। अगर यह बात तुम में पैदा हो जाए तो वे तुमसे छिपें नहीं।" क्योंकि यह क़ायदा है कि धर्म-भीरु को धर्म-भी और निर्भीक को निर्भीक दिखायी देता है। लोगों ने पूछा, "अस्ल यानी बुनियाद दीन की क्या है?" बोले, "अक़्ल!" पूछा, "अक़्ल की अस्ल क्या है?" बोले, "हिल्म यानी

सहनशीलता !" पूछा, "अस्ल हिल्म क्या है ?" बोले, "सब्र अथवा संतोष—आत्मतुष्टि ।" पूछा, "जुहद (मुनिवृत्ति) अच्छा है कि रज़ा (संतुष्ट) ।" बोले, "रज़ा, क्योंकि राज़ीदरज़ा (दूसरे के किये पर संतुष्ट) है, वह अपनी ओर से अच्छी चीज़ भी नहीं चाहता फिर बुरी क्यों चाहने लगा ।"

संत सफ़ियान सूरी एक रात को फ़ज़ील के पास आए और प्रेमपूर्वक आध्यात्म-चर्चा करते रहे। जब चलने को हुए तो संतुष्ट स्वर में बोले, "आज की रात सब रातों से अच्छी और आज का जल्सा सब जल्सों से अच्छा रहा।" प्रत्युत्तर में फ़ज़ीलने कहा, "आज की रात सब रातों से बुरी और आज का जल्सा सब जल्सों से बुरा है।" "यह कैसे", सफ़ियान ने पूछा। फ़ज़ील बोले, "तमाम रात तुम इस फ़िक्र में रहे कि ऐसी बात कहूँ जो मुझे पसंद आए और मैं इस फ़िक्र में था कि ऐसी बात कहूँ जो तुम्हें पसंद आए। हम दोनों अल्लाह से ग़ाफ़िल(लापर्वाह) रहे। बंदे के लिए तन्हाई (एकांत) ही अच्छी कि जहाँ उसका खुदा के साथ सीधा वास्ता रहे।" इसी विचार से अब्दुल्ला-बिन-मुबारक नामक संत को आता देखकर कहा, "पलट जाओ, नहीं तो मैं चला जाऊँगा। तुम इसीलिए आये हो न कि तुम मुझसे बातें करो और मैं तुमसे बातें करूँ।"

एक आदमी ने कहा कि मैं इसलिए आया हूँ कि आपके चरणोंमें बैठकर प्रेम और भक्ति की कुछ बातें सीखूं, कुछ आध्यात्मिक लाभ उठाऊँ। कसम खाकर फ़ज़ील ने कहा, "यह काम वहशत (त्रास)और खतरे से भरा हुआ है। तुम वहीं लौट जाओ जहाँ से आए हो; क्योंकि तुम इसलिए आए हो कि तुम मुझे झूठ और फ़रेब दो और मैं तुम्हें झूठ और फ़रेब दूं।" सत्संग उतना ही अच्छा, जितने में राही को राह बतायी जाय।

सच्चा सत्संग तो भक्त और भगवान का है। इसलिए वह चाहते कि बीमार हो जाऊँ ताकि जमात की नमाज़ में न जाना पड़े और न किसी को देखूं। वह कहते कि इंसान को ऐसी जगह अकेले में बैठना चाहिए जहाँ उसे कोई देखे नहीं। कहते—मैं बड़ा ही एहसानमंद हूँ उन लोगों का, जो आकर मुझे सलाम नहीं करते और न बीमार पड़ने पर मुझे देखने आते हैं; क्योंकि उनका खयाल था कि उसकी अच्छाई दूर हो जाती है कि जो तन्हाई में नहीं रहता और लोगों से मिलता है। कहते—अपने ऐमाल (कर्म) का ज़िक्र न करो जबतक कि ज़रूरत न हो। खुदा से डरनेवाले की जुबान गूंगी हो जाती है। जिस बंदे को अल्लाह दोस्त रखता है उसे ग़म देता है और जिसको दुश्मन रखता है उसे ऐशे-दुनिया (सांसारिक ऐश्वर्य) देता है। जिसको अल्लाह का खौफ़ होता है, बेकार बात नहीं करता और दुनिया की मुहब्बत उसको नहीं होती। जो अल्लाह से डरता है तमाम चीज़ें

उससे डरती हैं। जो अल्लाह से नहीं डरता खुद तमाम चीज़ों से डरता है।

कहते—तीन तरह के लोग दुनिया में मुश्किल से मिलेंगे। १. आलिमे बाअमल (कर्मवेत्ता), २. आमिल बाइख़्लास (निष्कपट जीवी) ३. बिरादर बेऐब (निर्दोष भाई)। जो शख्स अपने भाई का बज़ाहिर (प्रकट में) दोस्त और बातिन (पृष्ठ) में दुश्मन होता है उसपर अल्लाह लानत करता है और वह ख़तरे में है। दुनिया को दिखाने के लिए अमल को दोस्त रखना और दिखावे के लिए अमल करना शिर्क है। शिर्क के मानी है खुदा की जगह किसी और को पूजना और ऐसे आदमी खुदा को नहीं दुनिया को पूजते हैं। इख़्लास उसका नाम है जो इन दोनों बुराइयों से दूर हो। भगवान के लिए ही काम करना और भगवान के प्रेम में मस्त रहना ही इख़्लास अर्थात् निष्कपट जीवन है। कहते—बहुत से लोग ग़ुसलखाने से पाक (पवित्र) होकर आते हैं और बहुत से मन के मैले काबा से भी नापाक (अपवित्र) होकर आते हैं। कोई जानवर को गाली देता है तो जानवर कहता है—लानत है उस पर जो ज़्यादा गुनाहगार है।

एक बार कहा—अगर मुझे मालूम हो कि मेरी दुआ कबूल होगी तो मैं बादशाह के लिए दुआ-ए-खैर (शुभकामना) करूँ ताकि तमाम खल्क को फ़ायदा हो, अपने लिए दुआ माँगने से सिर्फ अपना फ़ायदा है। मालूम होता है फ़ज़ील की माली हालत अच्छी थी, क्योंकि प्रार्थना के समय वह कहते—या अल्लाह, तू अपने दोस्तों के बाल-बच्चों को भी भूखा-नंगा रखता है, इतनी ग़रीबी देता है उन्हें कि रात को उनके घर में चिराग़ भी नहीं जलता। फिर तूने यह दौलत क्यों दी है? क्या इसलिए कि तू मुझे अपने दोस्तों के मर्तबे का नहीं पाता। फिर रोते और कहते—अल्लाह, मेरे हाल पर रहम कर, मुझे अज़ाब (पीड़ा) से महफ़ूज़ (सुरक्षित) रख। तीस साल तक वह न हँसे, हँसे तो पुत्र की मृत्यु पर और वह भी इसलिए कि खुदा इस मौत से राज़ी था।

जब उनका अंत समय आया तो फ़ज़ील ने मार्के की बात कही। वह बोले—मुझे न तो पैग़म्बरों पर रश्क (ईर्षा) है, क्योंकि उन्हें भी कब्र और क़यामत, दोज़ख़ और पुलसरात के मरहले (मार्ग) तय करने पड़ते हैं और न फ़रिश्तों पर ही रश्क आता है, क्योंकि उन्हें इनसे भी अधिक ग़म रहता है। मुझे रश्क आता है उन लोगों पर जो माँ के पेट से पैदा ही न हुए और न होंगे। उनकी जो दो अविवाहित कन्याएं थीं उनके सम्बन्ध में बीवी को यह वसीयत की कि उन्हें जबल (पहाड़) पर ले जाकर अल्लाह से कहना

कि फ़ज़ील ने मरते वक्त कहा है, "ज़िन्दगी भर मैंने इनकी परवरिश (पालन) की, अब यह तेरे हवाले हैं।"

आज्ञानुसार उनकी बीवी रोरोकर पहाड़ पर दुआ कर ही रही थी कि शाहे यमन अपने ो बेटों के साथ आये और लड़कियों को माँ से माँगकर ले गए और अपने बेटों के साथ धूमधाम से उन्हें ब्याह दिया।

: ३ :

इब्राहीम-बिन-अदहम

इब्राहीम बलख के बादशाह थे। मगर फ़कीरी का रंग उन पर इतना गहरा और पक्का चढ़ा कि मक्का में लकड़हारा बन कर अपनी रोज़ी कमाते और दूसरों को खिलाते। शाही लकड़हारे के रूप में उनकी कहानी किसी भी देश और जाति के लिए अत्यन्त मनोरंजक प्रतीत होगी। मनोरंजक ही नहीं, उनके जीवन में तीव्र आध्यात्मिक संवेग, निस्सीम त्याग और बलिदान के साथ सद्भावनाओं और सद्-उपदेशों की धारा भी बहती दिखाई देती है।

उनकी कहानी की शुरुआत (आरंभ) उनके महल ही से होती है। एक रात जब वह सो रहे थे, उन्हें छत पर किसी की आहट मालूम हुई। पुकारा—ऊपर कौन है? आवाज़ आई—तेरा कोई वाकिफ़ ही हूँ। पूछा—वहाँ क्या कर रहा है? जवाब मिला—मेरा ऊँट खो गया है, उसे ढूंढ़ रहा हूँ। इब्राहीम ने स्वभावतः व्यंग किया—ऊँट क्या वहाँ छत पर तुझे मिलेगा? आवाज आई—यह बात तो तू ठीक कहता है; मगर क्या शाही लिबास पहन कर और तख्त पर बैठकर खुदा को पाना भी कुछ आसान है?

कहते हैं ये हज़रत खिज्र थे, और एक बार दिन-दहाड़े भरे दरबार में आकर उन्होंने इब्राहीम के दिल पर इससे भी गहरी चोट की। दरबार लगा हुआ था कि एक आदमी निहायत बेखौफ़ी (निडरता) और शान के साथ घुसता चला आया। किसी की हिम्मत न हुई कि उसे रोके। सिंहासन के पास वह बड़े ग़ौर से जब इधर-उधर देखने लगा तो इब्राहीम ने पूछा,

"क्या तलाश कर रहे हो ?" वह बोला, "मैं यहाँ ठहरना चाहता था पर देखता हूँ कि यह एक सराय है, इसलिए न ठहरूँगा।" इब्राहीम ने बड़ी शान से कहा, "यह सराय नहीं मेरा महल है !"

वह बोले, "अच्छा ! तो क्या तुमसे पहले भी यहाँ कोई रहता था ?" इब्राहीम ने कहा, "जी हाँ। मेरे पिता रहते थे !" वह बोला, "और उससे पहले !" इब्राहीम ने कहा, "उससे पहले मेरे दादा व परदादा रहते थे।" बड़ी ही बेनियाजी (उपेक्षा) से वह बोला, "अरे जिस घर में इतने लोग आये और रह-रह कर चले गए, वो सराय नहीं तो और क्या है !" यह कह कर वह चल दिया। इब्राहीम को जब होश आया तो वह उसे ढूंढ़ने निकले। बड़ी मुश्किल से वह मिला। इब्राहीम ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?" उसने बताया, "खिज्र !" यह नाम सुनकर इब्राहीम के दिल पर वहशत-सी तारी (त्रास छा गया) हो गई।

दिल बहलाने के लिए वह घोड़ा मंगा कर सैर व शिकार के लिए जंगल की ओर निकल गए। वियाबान (जंगल) में साथियों के छूट जाने से जब वह अकेले पड़ गए तो रह-रह कर उन्हें एक आवाज सुनाई देने लगी जो कह रही थी, "बेदार (सचेत) हो जा पेश्तर इसके कि मौत आकर तुझ बेदार करे।" यह सुना ही था कि कहीं से एक हिरन उधर आ निकला। इब्राहीम ने उसका शिकार करना चाहा; मगर हिरन बोला, "तू मेरा नहीं मैं तेरा शिकार करूँगा। तुझे शर्म नहीं आती, क्या खुदा ने तुझे इसी काम के लिए यह जिन्दगी दी कि जो तू कर रहा है।" हिरन से मुंह फेरा तो जीनपोश (घोड़े की काठी) भी यही बोला।

जो साधक हैं उन्हें अपने जीवन में ऐसे अनुभव हुए होंगे कि संसार की सभी चीजें जड़ और चेतन बोलती हुई-सी, उपदेश देती, राह दिखाती, मन में घुसे हुए चोर को जाहिर करती हुई-सी मालूम पड़ती हैं। उस समय ऐसा लगता है, प्रत्येक शब्द और स्वर का एक उपयुक्त अर्थ है, प्रत्येक कम्पन और प्रगति में कोई सार्थक संकेत है ! यह स्थिति निश्चय ही बड़ी आनन्दमय हो सकती है; पर अति हो जाने पर मन में परेशानी भी होने लगती है। इब्राहीम को इस स्थिति से, कि जो देखो वही उसे मौत की याद दिलाकर बेदार कर रहा है, पहले तो परेशानी हुई, मगर, फिर उनका दिल विद्रोह छोड़कर इसी भाव में बह गया और वह रोया इतना कि जामा (कपड़ा) भीग गया।

वह अकेला चला जा रहा था, क्या-क्या भाव-तरंगें उसके दिल में उठ रही थीं। आत्म-लोक के कितने ही दृश्य सामने आए, देवत्व के-से दर्शन उन्हें प्रत्यक्ष हो रहे थे। उसी समय उन्हें एक चरवाहा मिला।

अपना शाही-लिबास उसे देकर उसके कपड़े पहन लिये। इसी मस्ती की हालत में वे जंगलों में घूमते रहे—कभी अपने पापों को याद करके रोते तो कभी दिल के भावों से सिहर उठते। घूमते-फिरते वह नेशापुर पहुँचे जहाँ एक प्रसिद्ध गुफ़ा थी। इसी ग़ार में रह कर उन्होंने नौ वर्ष तक तप किया। हफ़्ते में एक बार नेशापुर लकड़ियाँ बेचने जाते और उसीसे दान-धर्म और गुज़र-बसर करते।

कहते हैं, उस ग़ार में रहते समय एक रात उन्हें बड़ी सरदी महसूस हुई। बर्फ़ गिरी थी। उसीको तोड़ कर उन्होंने स्नान किया और फिर नमाज़ में मशगूल (व्यस्त) हो गए। ठंढ लगने पर ख़याल आया कि आग होती तो अच्छा था। अचानक उन्हें मालूम हुआ कि उनकी पीठ के पास कोई गरम चीज़ किसी ने रख दी है। इसी हालत में वह सो गए। आँख खुली तो देखा कि वह अज़दहा था, जिसने उन्हें ठंढ से बचाया था। भयभीत होकर बोले, "मेह्र बनकर जो आया वही अब तकलीफ़देह हो रहा है!" अजगर ने सर ज़मीन पर रक्खा, और वह गुम हो गया। शोहरत हो जाने पर वह ग़ार छोड़ कर मक्का चले गए। शेख अबु सईद को उस ग़ार में तपोजनित सुरभित आनन्द की अनुभूति हुई।

बियाबान में घूमते हुए खिज्र के भाई इलियास ने इब्राहीम को नाम का जप करना सिखाया और फिर स्वयं देवदूत खिज्र से उन्होंने नियमित रूप से दीक्षा ली। उन्हीं की कृपा और ईश्वर के अनुग्रह से उन्हें इतना ऊँचा दरजा मिला; मगर कोई कहीं भी पहुँच जाय उसे अपने से ऊपर भी कुछ दिखाई देता है। इब्राहीम को भी एसा ही माजरा पेश आया। देखा कि खून से तर सत्तर गुदड़ीपोश दरवेश मरे पड़े हैं। उनमें से एक में अभी कुछ जान बाकी थी। इब्राहीम नें उससे पूछा, "यह क्या माजरा है?" वह बोला, "ऐ अदहम के बेटे! मुहब्बत की राह बड़ी मुश्किल है, ज़रा संभल कर कदम रखना।" इब्राहीम ने पूछा, "तुम कौन हो और यह क्या हादसा (दुर्घटना) पेश आया है?" वह बोला, "ऐसे दोस्त से डर, जो हाजियों को रोम के काफ़िरों की तरह हलाक करता है। दूर न जा कि महजूर (विरह-ग्रस्त) हो जायगा और नज़दीक भी न आ कि रंजूर (दुःखित) हो जायगा। गुस्ताखी हुई कि सलामती (खैर) नहीं। सुन कि हम सभी सूफ़ी थे। कस्द (संकल्प) था कि सिवा उसके हम किसी से वास्ता न रक्खेंगे—सब उसीके हैं और उसीके लिए वक़्फ़ (ईश्वरार्पण) होगा। जब हम काबा पहुँचे तो खिज्र हमारे इस्तिक़बाल को आये। हमने सलाम कहा और खुश हुए कि एक बुजुर्ग हमें मिले। इसी पर अतब (वध) नाज़िल हुआ और कहा कि ऐ

कौल से मुकरनेवालो ! क्या यही तुम्हारा अहद (निश्चय) था कि हमें भल कर दूसरों से वात करो।"

"ऐ इब्राहीम !" वह बोले, "ये सभी उसी के मारे हुए हैं कि जिन्हें तू यहां बेहिस्सोहिरकत (जड़वत्) पड़ा देखता है। होशियार होजा हमारी हालत देखकर, अगर इतना दम हो तो कदम आगे बढ़ा वरना यहीं से वापस होजा।" इब्राहीम हैरान थे, पर उन्होंने पूछा, "यह तो वताओ तुम किस तरह बच गए ।" वह बोला, "यह सब पुख्ता थे मैं कच्चा हूँ; पर चाहता हूँ कि मैं भी पुख्ता हो जाऊँ और इनका पैरौ (अनुसरण) बनूं।" और यह कहकर जान दे दी। देखने में यह एक बड़ा खतरा है पर ऐसा खेल वे उन्हीं के साथ करते हैं, जो पक्के हैं, ताकि कच्चे मारे डर के उधर आयें ही नहीं।

चालीस बरस वे इधर-उधर घूमकर मक्का आये ; मगर उनकी शोहरत यहाँ पहले ही पहुँच चुकी थी। इसलिए बहुत से लोग उनके स्वागत के लिए आये। उनमें से कुछ लोगों ने, जो आगे थे, खुद इब्राहीम से पूछा, "क्या हज़रत इब्राहीम को तुमने देखा है? कावे के बुज़ुर्ग उनके इस्तिक़बाल के लिए आ रहे हैं।" इब्राहीम ने कहा, "क्या मिलेगा तुम्हें उस ज़िन्दीक (नास्तिक) से ?" छूटते ही उनमें से एक ने तमाचा मार कर कहा "ज़िन्दीक तू है जो ऐसे बुज़ुर्ग को ज़िन्दीक कहता है।" इब्राहीम ने जवाब दिया, "मैं भी तो यही कहता था कि मैं ज़िन्दीक हूँ।"

आगे बढ़ कर उन्होंने अपने मन से कहा, "ऐ नफ़्स, तूने चाहा कि लोग तेरा स्वागत करें, चख लिया न मज़ा तूने इन ख़ाहिशों का !" लोगों ने जब उन्हें पहचाना तो लज्जित हो बड़ी इज़्ज़त से उन्हें ले गए ; मगर इब्राहीम, जो कभी राजा थे, अपनी रोज़ी लकड़ियाँ बेच कर या खेतों की रखवाली करके अपनी मेहनत से कमाते और उसमें से कुछ फ़क़ीरों को बाँट देते।

इब्राहीम जब घर छोड़कर निकले उस वक्त उनका एक दूध पीता बच्चा था। जब वह बड़ा हुआ तो उसने माँ से पूछा, "मेरे पिता कहाँ है?" और चार हज़ार हाजियों को साथ लेकर उनकी तलाश में वह मक्का आया। माँ भी साथ थी। जंगल में लकड़ियाँ बीनते देख वह बहुत रोया ; मगर बोला नहीं कि कहीं भाग न जायं। शहर में आकर इब्राहीम ने आवाज लगाई, "कौन है जो पाक (पवित्र) माल के एवज में पाक माल ले !" एक आदमी ने खाना देकर वह लकड़ियाँ ले लीं। इब्राहीम ने उसमें से कुछ हिस्सा फ़क़ीरों को दे दिया और मुकाम पर लौट आए। लड़का जो उनके पीछे हो लिया था, यह सब देखता रहा।

काबा की प्रदक्षिणा करते हुए खुद इब्राहीम की नज़र उस लड़के पर पड़ी और वह हैरत में आकर उसे देखते रहे। एक साथी दरवेश को इस पर आश्चर्य हुआ। उसके पूछने पर इब्राहीम ने कहा मुझे शक है कि यह लड़का वही न हो, जिसे मैं बलख में छोड़ आया था। साथी पता लगाते हुए उसके खीमे पर पहुँचा। वह कुरान पढ़ रहा था। उसने कहा, "मैं इब्राहीम का बेटा हूँ। कल उन्हें देखा, मगर पूछा नहीं।" दरवेश ने कहा, "आओ, मैं तुम्हें उनसे मिला दूं।" माँ और बेटा इब्राहीम से मिलकर बहुत रोए मगर यह मिलन संसार का एक हसरत भरा दुखान्त दृश्य है।

जब प्रेम से छलकते हुए हृदय यह सुन्दर दृश्य उन खुशकिस्मत काबा के हाजियों और दरवेशों के सामने उपस्थित कर रहे थे, तभी लोगों ने देखा कि इब्राहीम गंभीर हो, हाथ उठा कर कुछ दुआ कर रहे हैं, और उनकी दुआ खत्म होते ही वह भला-सा पितृ-भक्त किशोर बालक तड़प कर गिरा और जान दे दी। दुःख और आश्चर्य से स्तब्ध लोगों ने पूछा, "क्या माजरा है?" बोले, "लड़के को छाती से लगाने पर दिल में प्यार उमड़ आया, तो खुदा ने शिकायत की—'तू कहता तो है बड़ी-बड़ी बातें, मगर करता है कुछ और!"

लोगों से कहता है कि बेटे और नातेदारों की मुहब्बत में न फंसो और खुद बीवी और बेटे से बातें कर रहा है। कहता तो है कि मैं दुनिया में तेरे सिवा किसी को दोस्त नहीं रखता और अब बेटे के प्यार में मगन हो रहा है। उनकी शिकायत वाजिब थी। मुझे शर्म आई। मैंने दुआ की, "ऐ अल्लाह! तू हम दोनों में से, जिसे चाहे उठा ले ताकि शिर्क (अनेकता) पैदा न हो।" मेरी दुआ लड़के के हक़ में कबूल हुई। अत्तार का कहना है कि यह बात हज़रत इब्राहीम के लिए कुछ अजीब नहीं कि जिन्होंने राहे-हक़ (सन्मार्ग) में अपने प्यारे बेटे को भी कुर्बान कर दिया।

इब्राहीम ने लोगों से कहा, मैं ऐसा मौका तलाश करता था कि जब रात को खान-ए काबा खाली हो,; मगर ऐसा मौक़ा न मिलता था। एक रात को जब वर्षा हो रही थी तब वह मौक़ा मिल गया। मैंने दुआ कीऔर गुनाहों की माफ़ी चाही। आवाज़ आई, कि तू जो चाहता है वही तमाम मख़लूक (सृष्टि) चाहती है। अगर मैं सबको पाक कर दूं तो मेरी मेह्र, रहम, पर्वरदिगारी और मग़्फ़िरत (क्षमाशीलता की) जो नदियाँ बह रही हैं उनका क्या होगा? अच्छा हो कि कोई मुंहलगा मनचला सन्त मौका पाकर यह कह दे, "अच्छा, तो यह पाप ही अनुकम्पा की भूख है।" (इसका

आशय यह है कि कृपा, दया और अनुकंपा और क्षमाशीलता की विद्यमानता ही पाप का कारण तो नहीं है ?)

वह कहते, "ऐ खुदा ! तूने जो मेह्र मुझ पर की है, उसके मुक़ाबले में आठों बहिश्त कोई चीज़ नहीं और जो प्यार, जो मज़ा मुझे तेरी याद में मिलता है वह जन्नत को भी नसीब नहीं।" अक्सर दुआ में कहते, "मुझे मासियत यानी पापों की जिल्लत से बचाकर अतीयात (अनुदानों) की इज्ज़त अता (प्रदान) कीजिए", और कहते, "जो तुझे जानता है, नहीं जानता कि उसका हाल क्या होगा जो तुझे नहीं जानता।" एक बार कहा कि पन्द्रह साल कठिन तप करने पर सुना कि कोई कह रहा है, "अरे तू आराम में पड़ा है। ज़रा दिल लगा कर उसकी बन्दगी कर और उसका हुक्म बजा लाने के लिए जी-जान से हमेशा तैयार रह।"

लोगों ने पूछा, "तुम्हें क्या हुआ जो बादशाही छोड़ दी।" बोले कि एक दिन सिंहासन पर बैठा हुआ था। एक शीशा मेरे सामने था। मैंने ध्यान से देखा तो ज़िंदगी का अन्त कब्र में दीखा। आगे की यात्रा बड़ी लम्बी थी। न कोई दयार, यानी कोई देश है, न पास में तोशा (यात्रा में खाने-पीने का सामान); हाकिमे आदिल (न्यायवान्) और मुन्सिफ ! उसे समझाने और सन्तुष्ट करने के लिए मेरे पास कोई ज़रीआ भी नहीं। बस मुल्क मेरे दिल पर सर्द हो गया। लोगों ने पूछा, "आप खुरासान से क्यों चले आए ?" बोले, "लोग आकर पूछते, कल आपका मिज़ाज कैसा था और आज कैसा है !" कहते, "अल्लाह के साथ इख़्लास (निष्कपट प्रेम) यही है कि नीयत साफ़ हो। उसमें कुछ न हो मासिवा (केवल मात्र प्रभु) उनके।"

लोगों ने पूछा, "आप बीवी क्यों नहीं करते ?" इब्राहीम ने जवाब दिया, "क्या औरत इसलिए खाविन्द करती है कि वह पाँव से नंगी और भूखी रहे। मेरी हालत यह है कि अगर हो सके तो मैं खुद अपने को तलाक़ दे दूं। फिर दूसरे को अपने में बाँध कर क्यों किसी को धोखा दूं !" किसी दरवेश से पूछा गया कि क्या तेरे पास औरत है तो उसने जवाब दिया, नहीं। फिर पूछा, क्या कोई औलाद है ? दरवेश ने कहा, नहीं। लोगों ने कहा, तब तू नेक हालत में है। दरवेश ने कहा, यह सच है ; क्योंकि जिसने औरत की वह मानो किश्ती में बैठा और औलाद हुई तो समझो कि डूब गया।

किसी दरवेश को अपने साथी दरवेश की शिकायत करते हुए देखकर इब्राहीम ने कहा, "तूने बेकार दरवेशी अख़्तियार (धारण) की और मालूम होता है कि मुफ़्त खरीदी है।" वह बोला, "क्या कोई दरवेशी भी खरीद सकता है ?" इब्राहीम ने कहा, "मुझे देख कि दरवेशी मुल्क बलख के बदले में खरीदी है। तब भी इस सौदे में मुझे ही फ़ायदा है क्योंकि यह

बलख की बादशाहत के मुक़ाबिले कहीं ज़्यादा कीमती है।" इब्राहीम को जब कोई आध्यात्मिक चमत्कार दीखता तो वह कहते, "कहाँ हैं दुनिया के बादशाह, वे आयें और देखें कि क्या कारोबार है ताकि वह मुल्कगीरी (देशों को जीतना) से शर्म खायं।"

एक आदमी ने हज़ार दीनार पेश किये तो इब्राहीम ने कहा, "ग़रीबों से मैं कुछ नहीं लेता।" वह बोला, "मैं अमीर हूँ फ़क़ीर नहीं।" इब्राहीम ने कहा, "अच्छा यह बता, जितनी दौलत तेरे पास है उससे ज़्यादा तू चाहता है कि नहीं!" वह बोला, "चाहता हूँ।" इब्राहीम ने कहा, "तब तो तू भिखमंगों का सरदार है। तू यह जो-कुछ लाया है, वापस ले जा। ग़रीब की भूख तो मिट सकती है मगर अमीर की कोई हद नहीं!" वह कहते— आरिफ़ (ब्रह्मज्ञानी) वह है, जो आत्म-चिन्तन में मग्न रहे। स्तुति-प्रार्थना करे, जिसके सारे कर्म ईश्वरार्पित हों, हर चीज़ से शिक्षा लेकर मन को सुसंस्कृत करता रहे।

एक बार कहीं जा रहे थे कि रास्ते में एक पत्थर पड़ा हुआ मिला। उस पर लिखा था उलट कर पढ़ो। उसे उलटा तो यह लिखा पाया, "जब तू कर सकता है तो क्यों नहीं वह करता जो तुझे मालूम है। क्यों उस चीज़ की तलब में फिरता है जो तू नहीं जानता और कोई चीज़ किताबे जुदाई से सख्त नहीं है। इसलिए उससे बच।" अर्थात्, कोई ऐसा काम न कर, न किसी ऐसे विचार को ही अपने मन में जगह दे, जो तुझे भगवान से दूर करे; क्योंकि भक्त के लिए इससे अधिक दर्द भरी बात और कोई नहीं कि उसे भगवान के असन्तोष का पात्र बन कर विरहाग्नि में जलना पड़े।

वह कहते—तीन हिजाबों यानी पर्दों, आवरणों के हट जाने से दैवी सम्पदा की प्राप्ति होती है। एक यह कि त्रैलोक का राज मिलने पर भी खुश न हो, अर्थात्, केवल ईश्वर से प्रेम; और सभी छोटी-बड़ी, ऊँची-नीची चीजों से वैराग्य। दूसरा यह कि बन्धन में डाले तो दुःखी न हो, क्योंकि खुश होना लोभी होने का सबूत है, और दुखी होना गुस्से का निशान है और साथ ही कमीना होने की दलील है, और कमीनापन अज़ाब (पाप-कष्ट) के काबिल है। तीसरा यह कि किसी की तारीफ़ करने या बख़शिश (पुरस्कार) करने पर माइल (आसक्त) न हो क्योंकि जो बख़शिश पर खुश होता है वह पस्त हिम्मत है, और बुलन्द हिम्मती (साहसिकता) अच्छी चीज़ है।

इब्राहीम ने किसी से पूछा, "क्या तू औलिया (संतो) के गिरोह (दल) में शामिल होना चाहता है?" उसने कहा, "हाँ।" तब रास्ता बताया कि

लोक और परलोक की सभी वासनाएँ त्याग दे और अपने मन को ईश्वर-प्रेम के सिवा सभी चीजों से खाली कर दे। बस, ईश्वर से अपना वास्ता रख। व्रत और उपवास न हों तब भी भोजन शुद्ध—सात्विक और पवित्र-कर। रोज़ी हलाल है कि नहीं, इसका हमेशा ध्यान रख; क्योंकि किसी को भी मर्दों का दर्जा रोज़ा, नमाज़ और हज और जिहाद (धर्म-युद्ध) से नहीं मिलता; मगर उस शख्स को, जिसने यह जान लिया कि वह क्या खाता है। भोजन की अशुद्धता ही नैतिक और मानसिक पतन का कारण होती है।

रोज़ी हलाल (अर्वजित) हो यह उनके जीवन और उनकी शिक्षा का एक प्रमुख आधार था। एक जवान के तप और प्रेम की तड़प की लोगों ने बड़ी तारीफ़ की। जब वह उसे देखने गये तो जितना सुना था उससे भी ज़्यादा लौलीन और बेकरार पाया। यहाँ तक कि उन्हें लगा कि उनसे कहीं आगे निकल गया है; पर जब उन्होंने ध्यान से उसके जीवन का अध्ययन किया तो मालूम हुआ कि उसकी रोज़ी अच्छी नहीं। उसे अपने घर लाकर जब हलाल की रोज़ी खिलाई तो उसकी वह दर्द भरी तड़प, लगन और बेचैनी बहुत कम हो गई। उनका कहना था कि खाने के साथ शैतान उसके अन्दर जाता था।

सन्त सफ़ियान से इब्राहीम ने कहा, "अगरचे तू इल्म में ज़्यादा है, मगर थोड़े से यकीन का मुहताज (इच्छुक) है।" एक रोज़ शफ़ीक सन्त ने पूछा, "क्यों खल्क से भागते हो ?" तो बोले, "मैं अपने दीन को शैतान के हाथों से बचाकर मौत के दरवाजे से बाहर साबित हालत (सत्य स्थिति) में ले जाना चाहता हूँ।" रमज़ान के दिनों में जंगल से घास लाकर बेचते और जो-कुछ मिलता फ़कीरों को खैरात कर देते और खुद रातभर भगवान के ध्यान में मगन रहते। लोगों ने पूछा, "आप रात को सोते क्यों नहीं ?" बोले, "जिन आँखों से बराबर आँसू बहते हों, उनमें भला नींद कैसे ठहरे।" इब्राहीम अपनी ही मेहनत की पाक कमाई खाते। न मिलती तो भूखों रहते; न किसी से माँगते; और न बुरी रोज़ी लेते। एक बार सफ़र में थे। चालीस दिन तक मिट्टी खा कर गुज़र की और एक मौके पर पन्द्रह दिन रेत खाकर गुज़ार दिए। मगर एक बार मज़ेदार घटना हुई। सात दिन तक बराबर खाना न मिलने पर वह चार सौ रक्अत (नमाज़ विशेष) शुक्राने की रोज़ पढ़ा किये। आठवें दिन बहुत भूख लगी, तो एक आदमी ने आकर खाने को पूछा, और अपने साथ ले गया। वह उनका पुराना गुलाम निकला। पहचान कर बोला, "यह सब जायदाद आपकी ही है, इसे कबूल करें।"

इब्राहीम बिना खाए ही लौट पड़े और उस गुलाम से कहा, "मैंने तुझे आज़ाद किया और यह सब माल तुझे दे दिया।" फिर मन-ही-मन खुदा से कहा—"मैं वादा करता हूँ कि अब तेरे सिवा किसी से कुछ नहीं चाहूंगा। मैंने खाने का एक टुकड़ा माँगा, और तूने दुनिया ही मेरे सामने कर दी!" इसी खयाल से उन्होंने आबे ज़म-ज़म (मक्का के एक पवित्र कुएं का पानी) भी कभी इसलिए न पिया क्योंकि उसपर शाही डोल से ही पानी निकालना पड़ता था। इब्राहीम अपने साथियों का बड़ा खयाल रखते। एक पुरानी मस्जिद के दरवाजे पर, जिसमें कुछ लोगों के साथ वह रहते थे, एक बार रात भर खड़े रहे ताकि ठंडी हवा से दूसरे बचे रहें।

जब कोई उनके पास रहने को कहता तो वह उसके सामने कुछ शर्तें रखते—"सब की खिदमत करना, अज़ां देना, जो चीज़ मिले सबको बराबर बाँट देना।" एक ने कहा "मुझे इनका पाबन्द होने की ताक़त नहीं।" खुश होकर बोले, "मुझे तेरी सचाई पर हैरत है।" एक व्यक्ति बहुत दिनों तक साथ रहकर जब जाने लगा तो बोला, "आपने मुझ में जो ऐब देखे हों वह बता दें ताकि उन्हें दूर करने की कोशिश करूँ।" बोले, मुझे तुम्हारा कोई ऐब नज़र नहीं आया क्योंकि मैंने तुम्हें दोस्ती की नज़र से देखा। ऐब उसे दीखता है जो दुश्मनी की नज़र से देखे"

एक सन्त ने पूछा. "आपका पेशा क्या है?" बोले, "मैंने दुनिया और बहिश्त को उनके तालिबों (अभिलाषियों) के लिए छोड़ा और अपने लिए दुनियामें खुदाका नाम और अखीर में उसीका दीदार पसंद किया है।" इसी सवाल के जवाब में एक दूसरे संत ने कहा, "खुदा के कारकुनों (सेवकों) को पेशे की ज़रूरत नहीं।" एक दिन का ज़िक्र है कि एक आदमी को कोई काम न मिला। शाम को बाल-बच्चों की चिन्ता में परेशान जा रहा था। इब्राहीम को देखकर कहा, "तुम खुशहाल हो, मैं परेशान।" बोले, "तू मेरा सारा सवाब ले ले और आज की अपनी परेशानी मुझे दे दे।"

राजा होने का प्रायश्चित इब्राहीम को फ़ज़ील से भी अधिक करना पड़ा। फ़ज़ील का डाकू-जीवन भी एक साधक का जीवन था; पर इब्राहीम कभी बादशाह थे। इसके लिए वह अपने को शायद कभी क्षमा न कर सके और न दूसरों ही ने इस बात को भुलाया। उन्होंने अपने को ज़िन्दीक (नास्तिक) कहकर जो मार खाई और बार-बार निहायत बेरहमी से ज़लील होने पर जो उन्हें सच्ची खुशी होती थी, उसमें बादशाहत का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) होता है। शायद यही खयाल काम कर रहा था। उन्हें खुशी ऐसे मौकों पर हुई जब उनके बाल नोचे गए और घूंसे लगे; जब कान

पकड़ कर किश्ती में से दरिया में डालने की कोशिश हुई और सबसे ज़्यादा खुशी तब हुई जब मस्जिद के ज़ीने से ढकेले जाने पर उनका सर फट गया।

लकड़ी और घास बेचकर रोज़ी कमाना और बहुत ही फटे-पुराने कपड़े पहनना, जिनमें जुंएँ पड़ गई थीं और ज़मज़म के शाही डोल से पानी तक न पीना—यह सब एक अति से दूसरी अति तक जाकर समत्व प्राप्त करने की कोशिशें मालूम होती हैं। वह कहते हैं, "मस्जिद की हर सीढ़ी पर ज्यों ही लुढ़कता हुआ गिरता एक नयी रौशनी—एक नया चमत्कार दिल में ज़ाहिर होता!" यहाँ तक कि सर फटने की परवाह न होकर उन्हें अफ़सोस था इस बात का कि क्यों सीढ़ियाँ ज़्यादा न हुईं ताकि कुछ और भी हासिल होता। वह कहते, "ने'मत मिलने पर शुक्र (कृतज्ञता) को, बन्दगी की दशा में इख़्लास (निष्कपट प्रेम) को, और बुरा काम होने पर तौबा की सवारी पर बैठ कर उनके सामने जाता हूँ।"

अपने ही गुलाम से उन्होंने एक बड़ी ही गहरी नसीहत ली। एक गुलाम उनके पास आया तो उससे पूछा, "तेरा नाम क्या है?" बोला, "जिस नाम से आप पुकारें।" पूछा, "खाता क्या है?" बोला, "जो आप दें।" पूछा, "पहनता क्या है?" कहा, "जो पहनाएँ।" पूछा, "क्या काम करता है?" कहा, "जो आप बताएँ।" पूछा, "क्या चाहता है?" कहा, "जो आपकी मर्ज़ी हो। बन्दे को अपनी राय से क्या सरोकार!" इब्राहीम ने मन में सोचा—यदि मैं भी इसी तरह ख़ुदा की मर्ज़ी पर चलनेवाला होता तो कितना अच्छा होता! कहते, "कोई शख़्स मर्दों (तपस्वी) की सफ़ (चटाई) में नहीं बैठ सकता जबतक कि दुनिया की सब चीज़ें छोड़कर अपने को एकदम मिटा नहीं देता।"

एक बार लोगों ने इब्राहीम से पूछा, "आप किसके बन्दे हैं?" यह सुनकर वह काँपने लगे और गिर पड़े। देर तक बेक़रारी (व्याकुलता) के साथ ज़मीन पर लोटते रहे। फिर उठ कर एक आयत पढ़ी, जिसका अर्थ है—"वो सब चीज़ें जो आस्मान और ज़मीन से बन्दे को मिलती हैं, ख़ुदा की ही दी हुई हैं।" लोगों ने पूछा, "पहले ही यह आयत आपने क्यों न सुनाई!" बोले, "यह खौफ़ हुआ अगर मैं अपने को उसका बन्दा कहता हूँ तो वो अपना हक़ तलब (अधिकार की माँग) करेगा, और यह कह नहीं सकता कि उसका बन्दा नहीं हूँ।" किसी पहुंचे हुए संत से इब्राहीम ने पूछा, "खाते कहाँ से हो?" बोला, "उसी से पूछो। यह काम जिसका है, वही जाने।"

लोगों ने पूछा, "दिलों पर अल्लाह से क्यों पर्दा है?" बोले,

"इसलिए कि जिसे खुदा दुश्मन जानता है दिल उसको दोस्त रखता है। दुनिया की खातिर आखिरत (परलोक) को भूला हुआ है।" उपदेश माँगने पर एक आदमी से कहा, "खालिक (सृष्टिकर्त्ता) को दोस्त बना और मखलूक (सृष्टि) को छोड़ दे।" दूसरे से कहा, "बंधे को खोल दे और खुले को बन्द कर दे।" पूछने पर मतलब यह बताया, "दौलतमंदी को छोड़कर थैली का मुंह खोल दे और खैरात कर। और जुबान पर पावन्दी लगाकर उसे बुरी बातें कहने से रोक। कावा का तवाफ़ (प्रदक्षिणा) करते हुए जबतक तू ज़ोम (अहंकार) और इज्ज़त, नींद, और चाह को छोड़कर मेहनत और ज़िल्लत (अपमान), वेदारी (जागृतावस्था) और दरवेशी का दरवाजा न खोलेगा तबतक बाहर का ही रहेगा।"

लोगों ने पूछा, "हमारी दुआ कबूल क्यों नहीं होती?" बोले, "तुम खुदा है यह जानते तो हो; मगर बन्दगी नहीं करते; रसूल और क़ुरान को पहचानते हो, मगर इताअत (फ़र्मांवर्दारी) नहीं करते, उसकी ने'मत खाते हो; मगर शुक्र नहीं करते। वहिश्त (स्वर्ग) और दोज़ख (नरक) है यह मानते हो; पर एक के मिलने का और दूसरे से बचने का सामान नहीं करते। शैतान को दुश्मन समझते हो; मगर उससे दूर नहीं रहते। जानते हो कि मौत आयगी; पर उसकी तैयारी नहीं करते। माँ-बाप, भाई-बिरादर को क़ब्र में पहुँचा कर भी कुछ सीखते नहीं। जानते हो कि मुझमें ऐब है; फिर भी दूसरों के ऐब निकालते हो। भला ऐसे आदमी की दुआ कैसे कबूल हो। बेहतर है कि ज़ाहिर और बातिन (कर्म और मन) एक हो।"

हज के सफ़र में एक दिन खाने को कुछ मिला नहीं। भूखे ही रह गए। शैतान ने आकर कहा, "वलख की सल्तनत छोड़कर तुम्हें यह मिला कि भूखे-प्यासे हज कर रहे हो।" इब्राहीम ने दुआ की, "ऐ अल्लाह! तूने दुश्मन को दोस्त पर तैनात किया है।" अन्तर में आदेश आया, "तुम्हारी जेब में जो-कुछ है, उसे फेंक दो तो ग़ैव (परलोक) तुम पर ज़ाहिर (प्रकट) हो।" जेब में हाथ डाला। उसमें कुछ चांदी थी जो भूले से पड़ी रह गई थी। उसे फेंकते ही शैतान भाग गया और ग़ैवी ताकत (पारलौकिक शक्ति) मिल गई। किसी ने पूछा, "जो शख्स भूखा हो वह क्या करे?" कहा, "सब्र करे; यहाँ तक कि मर जाय और खूंवहा (प्राणों का मूल्य) क़ातिल (क़त्ल करने वाला) पर हो," अर्थात्, यदि संतोष की अति के फलस्वरूप प्राण निकलेंगे तो इसका प्रतिकार प्रभु करने वाला है। दाता की जिम्मेदारी कोई अपने सर क्यों ले!

एक बार इब्राहीम खुरमे चुनने गए। दामन (झोली) भरते ही लोग

उनसे छीन लेते, और पूरे चालीस वार ऐसा ही हुआ। इकतालीसवीं बार किसी ने खुरमें न छीनें। ग़ैव (परोक्ष) से आवाज़ आई, "ये ४० बार का खेल उन सोने की ढालों की वजह से हुआ, जो तुम्हारी वादशाहत के वक्त लोग तुम्हारे आगे लेकर चलते थे।" ये खुरमा छीनना तो खैर एक अच्छा-खासा मजाक ही था ; मगर इस सल्तनत के मामले ने एक बार कावा के बुज़ुर्गों की मजलिस (सभा) में उन्हें वेतरह रुसवा (अपमानित) किया। वयोवृद्ध सन्त कहीं वैठे ज्ञान-चर्चा में लीन थे। इब्राहीम ने भी शामिल होना चाहा। उन्हें मना किया गया। कहा, "तुममें अभी वादशाहत की बू आती है।"

कह नहीं सकते कि इनमें से कितने ऐसे थे, जो इब्राहीम को अपने पास बैठने देने से इन्कार कर देते अगर वह उस वक्त आते जब वह बलख के वादशाह थे। जीवनी-लेखक अत्तार ने लिखा है—कि जब इन लोगों ने हज़रत इब्राहीम को ऐसा कहा तो दूसरे लोगों के लिए न जाने क्या कहते ? और उनका अपना क्या दर्जा था यह तो अल्लाह ही जानता है। मगर इस अपमान को भी उसी शान्ति के साथ पी गए जैसे अन्य अनेक कष्टों को उन्होंने धीरता-पूर्वक ही नहीं, वल्कि प्रसन्नता पूर्वक सहन किया हालांकि जानकार का अपमान ज्यादा खलता है वनिस्वत उस अपमान के, जो अज्ञानियों द्वारा किया जाता है। मन्सूर हँसते थे जब नादान (मूर्ख) लोग पत्थर मारते और एक आलिम के एक कंकड़ी मारने पर ही उन्होंने आह की।

एक बार एक नदी के किनारे बैठे अपनी गुदड़ी सी रहे थे। एक आदमी ने आकर पूछा कि वलख की सल्तनत छोड़ कर आपको क्या मिला ? इब्राहीम ने सुई दरिया में डाल दी और इशारा किया—हजारों मछलियाँ मुंह में एक-एक सोने की सुई लिये सामने आईं। "मुझे यह सुइएँ नहीं चाहिएँ, अपनी सुई चाहता हूँ।" एक छोटी मछली साम आई। उसके मुंह में वही सुई थी, जो फेंकी थी। वह सुई लेकर पूछने वाले से कहा, "सल्तनत छोड़कर जो छोटी-सी एक वात मुझे हासिल हुई वह यह है कि एक बार कुएँ में डोल डाल कर खींचा तो उसमें सोना भरा निकला, फिर चांदी निकली, फिर मोती निकले।" बोले, "मुझे तो पानी चाहिए वही दे दे।"

एक मस्त आदमी कहीं पड़ा हुआ था। उसका मुंह मिट्टी में सना हुआ था। देखकर बोले कि जिस मुंह से खुदा का ज़िक्र होता है उसे इस हालत में नहीं रहना चाहिये और पानी लेकर उसका मुंह धो दिया। जब वह मस्त होश में आया तो लोगों ने उससे वह सब बातें कहीं। उस पर इसका अच्छा असर हुआ। उसने तौबा की और खुदापरस्ती में लग गया। इधर

इब्राहीम ने स्वप्न देखा कि फ़रिश्ते कह रहे हैं "तुमने अल्लाह के वास्ते उसका मुंह धोया। अल्लाह ने तुम्हारा दिल धो दिया।" एक बार पहाड़ पर थे। किसी ने पूछा, "कमाल (पूर्णता) की क्या पहचान है!" बोले, "पहाड़ से कहे चल, तो वह चल दे।" कहते हैं कि वह पहाड़ चल पड़ा और तब रुका जब वह बोले, "मैंने तो मिसाल दी थी हुक्म नहीं।"

एक बार जब यह किसी बाग की रखवाली कर रहे थे तो मालिक ने आकर कहा, "कुछ मीठे अनार ले आओ।" इब्राहीम कई पेड़ों से तोड़ कर अनार लाये; मगर सब खट्टे निकले। मालिक ने कहा, "इतने दिन तुम्हें बाग में रहते हो गए; मगर अभी तक मीठे अनारों का पता नहीं।" इब्राहीम बोले, "बिना खाए कैसे मालूम हो।" मालिक बोला, "तो क्या तुमने अभी तक अनार खाए ही नहीं?" इब्राहीम ने कहा, "आपने रखवाली के लिए मुझे यहाँ रखा है न कि अनार खाने के लिए।" उनकी ईमानदारी से चकित होकर मालिक बोला, "मालूम होता है तुम इब्राहीम हो!" इसके बाद वह वहाँ से चले गए।

एक बार मुहम्मद मुबारक सूफ़ी के साथ हज के सफ़र में थे। किसी जंगल में एक अनार के पेड़ के नीचे क़याम किया। उस पेड़ से कुछ आवाज़ आई। सूफ़ी ने कहा, "आपने कुछ सुना।" इब्राहीम ने कहा, "हां।" और फिर उसमें से दो अनार तोड़ कर एक सूफ़ी को दिया दूसरा खुद खाया। सूफ़ी का कहना है कि जब हज करके मक्का से वापस आए तो वह अनार का पेड़ बढ़ कर खूब बड़ा हो गया था और उसके अनार, जो पहले खट्टे थे, अब मीठे होने लगे और एक खास बात यह हुई कि वह साल में दो बार फल देने लगा। इस विचित्र परिवर्तन के कारण लोगों ने उसका नाम "रुमान-उल्-आबदीन" अर्थात् भक्तों का चमत्कार रख दिया और सन्त लोग आकर उसकी छाया में बैठते।

एक बार किश्ती पर सवार होने लगे तो मल्लाह ने पैसा माँगा। दुआ की, "या अल्लाह! मल्लाह पैसे माँगता है।" तमाम रेत सोने की हो गई। उसमें से एक मुट्ठी रेत उसे दे दी। एक बार हज करते समय लोगों ने कहा, "खाने के लिए कुछ नहीं है।" बोले, "ख़ुदा पर यक़ीन रखो और अगर दौलत की चाह है तो इस पेड़ को देखो।" वह सारा पेड़ सोने का हो गया था। एक बार किश्ती में जा रहे थे कि बड़े ज़ोर का तूफ़ान आया। लोग डरे मगर आवाज़ आई कि डरो मत, इब्राहीम तुम्हारे साथ है और वह तूफ़ान रुक गया।

वह लोगों से सदा दूर ही रहना पसन्द करते। इसी कारण जीवनी-लेखक को इसका ठीक पता नहीं कि वह अपने अन्त समय में कहाँ पर

थे। कहते हैं कि जब उन्होंने अपनी भौतिक लीला सम्वरण की तो लोगों को आकाशवाणी सुनाई दी "आज अमां ने वफ़ात पाई", अर्थात शान्ति-रक्षा के देवदूत का आज स्वर्गवास हो गया। ईश्वर की सृष्टि में जिन्होंने सिंहासन छोड़कर अपने को मिट्टी में मिलाया, अपनी अहंता को सुरमे की तरह बारीक पीसा, उनमें इब्राहीम का दर्जा बहुत ऊँचा है।

: ४ :

ज़ू-उल-नून मिस्री

ज़ू-उल-नून मिस्र के रहनेवाले थे। मगर वहाँ के लोग उन्हें ज़िन्दीक यानी (नास्तिक) समझते थे। उनको लोग ज़ू-उल-नून इसलिए कहने लगे थे कि एक बार उन्होंने चमत्कारिक ढंग पर मोती निकालकर दिया था। बात यह हुई कि एक बार किश्ती में सफ़र करते हुए एक व्यापारी का मोती खो गया। सबने इन्हीं को चोर समझ कर मारना शुरू किया। इन्होंने दुआ की कि ऐ खुदा, तू जानता है कि मैं चोर नहीं हूँ। तभी लोगों ने देखा, बहुत-सी मछलियाँ एक-एक मोती लिये हुए निकलीं। एक मछली से मोती लेकर उन्होंने उस व्यापारी को दे दिया। सबने लज्जित होकर उनसे माफ़ी माँगी और तबसे उनका नाम ज़ू-उल-नून पड़ गया।

किसी ने उन्हें एक तपस्वी भक्त के विषय में सूचना दी तो वे उसे देखने गये। उन्होंने देखा कि वह एक पेड़ पर उल्टा लटका हुआ कह रहा है, "ऐ जिस्म, जबतक तू खुदापरस्ती में मेरा साथ न देगा तबतक मैं तुझे इसी तरह तकलीफ़ दूंगा।" उसकी बात सुनकर ज़ू-उल-नून रोने लगे। वह तपस्वी बोला, "कौन है, जो एक बेशर्म गुनाहगार की हालत पर रोता है?" ज़ू-उल-नून उसके पास गये और सलाम करके बोले कि मैंने समझा था कि आपने कोई बड़ा गुनाह किया, जिसके कुफ़्फ़ारा के लिए आप अपने जिस्म को इतनी तकलीफ़ दे रहे हैं। वह बोला, "दुनिया वालों से वास्ता रखने से ज्यादा और कोई गुनाह नहीं है।"

ज़ू बोले, "आप बड़े ज़ाहिद हैं।" तपस्वी ने कहा, "बड़े परहेज़गार (इन्द्रिय-निग्रही) को देखना हो तो उस पहाड़ पर देख। वहाँ उन्होंने एक

जवान को देखा जिसका पैर कटा हुआ था। पूछा, "यह क्या माजरा है ?" उसने जवाब दिया, "एक दिन मेरा मन एक औरत को देखकर विचलित हो गया। जैसे ही मैं उसकी ओर चला अंदर से आवाज आई, "ऐ ख़ुदा की इबादत करनेवाले, आज तू शैतान की इबादत करने चला है।' मुझे होश आया और वह पैर, जो बुरी राह में पहले उठा था, काट डाला।" ज़ू बोले, "सचमुच आप बड़े ज़ाहिद (त्यागी) हैं।" वह जवान बोला, "ज़ाहिद देखना हो तो और ऊपर पहाड़ की चोटी पर जाओ। वहाँ एक बुजुर्ग हैं, जो नेक कमाई न होने की वजह किसी आदमी से कुछ नहीं लेते। मधु-मक्खियाँ उन्हें शहद दे जाती हैं।

ज़ू-उल-नून के दिल पर इसका बहुत अच्छा असर पड़ा पर पहाड़ से उतरते समय एक दृश्य जो उन्होंने देखा, उससे ईश्वर की अनन्त कृपा का उनके हृदय में दृढ़ विश्वास जम गया। उन्होंने देखा कि एक पेड़ से एक अन्धा पक्षी उतरा। ज़ू-उल-नून सोच ही रहे थे कि यह बेचारा किस तरह अपनी रोज़ी पायगा कि उस पक्षी ने चोंच से ज़मीन को ख़ोदना शुरू किया। एक सोने की प्याली निकली, जिसमें तिल थे और फिर एक चांदी की प्याली निकली, जिसमें गुलाब जल था। उसने तिल खाकर गुलाब-जल पिया और उड़कर वृक्ष पर आ बैठा। वे प्यालियाँ वहीं ग़ायब हो गईं। इस घटना ने उनके मन में ईश्वर-विश्वास को दृढ़ कर दिया। सोचा कि जिसे ईश्वर का भरोसा है उसे कोई चिन्ता नहीं।

वहाँ से वह जंगल में घूमने निकल गए, जहाँ उनके कुछ पुराने दोस्त अचानक मिल गए। घूमते हुए इन लोगों को एक खजाना मिला, जिसके ऊपर एक तख्ता लगा था। उस तख्ते के ऊपर अल्लाह का नाम लिखा था। और दोस्तों ने तो खज़ाने का माल आपस में बाँट लिया मगर ज़ू ने उस तख्ते को, जिसपर खुदा का नाम लिखा था, चूमा, सर और आँखों से बड़ी इज़्ज़त से लगाया। उसी रात को ज़ू ने स्वप्न देखा कि कोई कह रहा है, "ऐ ज़ू-उल-नून, तूने हमारे नाम की इज्ज़त की। माल के बजाय हमारे नाम को पसन्द किया। इसके बदले में हमने इल्म और हिकमत (यानी ज्ञान और विज्ञान) के दरवाजे तेरे लिए खोल दिए।"

एक बार वह किसी नहर पर वुज़ू करने गये। पास ही एक आलीशान महल था, जिसके मीनार पर एक सुंदर औरत खड़ी उनकी ओर ग़ौर से देख रही थी। कहा, "यदि कुछ कहना हो तो कहिए।" वह औरत बोली, "ऐ ज़ू-उल-नून, जब मैंने तुम्हें दूर से देखा तो समझा कि कोई दीवाना है; जब नज़दीक से देखा तो समझा कि कोई आलिम (विद्वान) है, जब और

नज़दीक से देखा तो समझा कि कोई आरिफ़ (ब्रह्मज्ञानी) है, मगर अब समझ में आया कि न तुम दीवाने हो, न आलिम हो और न आरिफ़।" ज़ू ने पूछा, "तुम्हारे ऐसा समझने का क्या सबब है?" वह बोली, "तुम अगर दीवाने होते तो वुज़ू न करते, आलिम होते तो परायी औरत को न देखते, और आरिफ़ यानी ब्रह्मज्ञानी होते तो अल्लाह के सिवा किसी की ओर ध्यान न देते।" ज़ू ने समझा यह ग़ैबी चेतावनी है।

एक बार एक पहाड़ पर गये तो देखा कि हज़ारों मरीज़ बैठे हैं। कुछ देर बाद एक बहुत ही बूढ़ा साधु गुफ़ा में से निकला। आस्मान की तरफ़ देखकर उसने दुआ की और फिर फूंक मारी तो सब अच्छे हो गए। जब वह साधु जाने लगा तो ज़ू ने दामन पकड़ कर कहा, "आपने बाहरी बीमारों को अच्छा किया है। मेरी बातिनी (आन्तरिक) बीमारी को भी दूर कर दीजिए।" वे बोले, "ऐ ज़ू-उल-नून, शर्म कर कि तू अल्लाह के सिवा दूसरे का दामन (पल्ला) पकड़े है। वह देखता है, कहीं ऐसा न हो कि तुझे मेरे और मुझे तेरे हवाले कर दे।" यह कहकर और दामन छुड़ाकर वह गुफ़ा में चले गए। वह सुन्दर स्त्री और यह वृद्ध सन्त दोनों एक ही बात ज़ू के मन पर अंकित करने को प्रकट हुए—'अल्लाह के सिवा किसी दूसरे से वास्ता न रखो।'

एक दिन ज़ू-उल-नून को लोगों ने रोते देखा। कारण पूछा तो बोले, "कल रात में मेरी आँख झपक गई। सपने में देखा कि खुदा ऐसा कह रहे हैं—जब मखलूक़ (मनुष्य जगत्) को पैदा किया तो मैंने उनके सामने दुनिया पेश की। नौ हिस्से तो दुनिया पर माइल (आकर्षित) हुए मगर उनका एक हिस्सा नहीं। फिर उन लोगों के सामने जो दुनिया पर माइल नहीं हुए, मैंने बहिश्त (स्वर्ग) को पेश किया तो उनमें भी नौ हिस्से लोग माइल हुए, एक हिस्सा नहीं। फिर उस एक हिस्से वालों के सामन मैंने दोज़ख (नरक) को पेश किया तो नौ हिस्से लोग भाग गए मगर उनका एक हिस्सा नहीं भागा। मैंने उनसे पूछा, तुम न दुनिया पर माइल हुए, न बहिश्त पर, और न इन लोगों की तरह दोज़ख से डरे। फिर बताओ तुम चाहते क्या हो? उन्होंने सर झुकाकर कहा, हम जो चाहते हैं वह तू जानता है।"

ऊपर की घटनाओं के द्वारा ज़ू-उल-नून को बनाने वाली ईश्वरीय-प्रतिभा ने ईश्वर के सिवा और किसी की कामना अपने मनमें न रखने का दिव्य-सन्देश उनकी आत्मा को और उनके द्वारा संसार के अन्य भक्तों को दिया। उनका एक शिष्य था, जिसे एक लाख दीनार विरासत में मिले थे। उसने चाहा कि उनकी सेवा में वह उन्हें खर्च करे; पर उन्होंने कहा कि जबतक बालिग़ न हो जाय, इन्हें खर्च करना जायज़ (उचित) नहीं बड़ा।

होने पर उसने वे दीनार फ़क़ीरों में बांट दिए। एक दिन ज़ू को कुछ जरूरत हुई तो उसे ख़ैरात कर देने का अफ़सोस हुआ। ज़ू ने तीन गोलियाँ बनाकर उन पर फूंक मारी तो वे याकूत (एक रत्न) हो गईं। कीमत सौ दीनार लगी। मगर ज़ू ने पिसवाकर पानी में उन्हें फिकवा दिया और कहा, "फ़क़ीर माल के भूखे नहीं होते।" शिष्य के दिल को यह बात लग गई। और वह पूर्णतः विरक्त हो गया।

ज़ू-उल-नून ने कहा, "तीस वर्ष से मैं लोगों को नसीहत करता आ रहा हूँ. मगर सिर्फ़ एक शख्स उसकी वजह से खुदा तक पहुँचा और वह एक शाहज़ादा था। वह मेरी मस्जिद के पास से जा रहा था जब मैं कह रहा था, "उस कमजोर आदमी से ज़्यादा बेवक़ूफ़ कोई नहीं जो ज़बर्दस्त से लड़ता है।" उसने रुककर कहा, "ज़रा साफ़-साफ़ कहिए ताकि मैं भी समझ सकूं।" मैंने कहा, "उससे ज़्यादा बेवकूफ़ कोई नहीं जो खुदा से लड़ता है।" उस वक़्त तो वह यह सुनकर चला गया मगर दूसरे रोज़ आकर उसने पूछा, "खुदा से मिलने का कौन-सा रास्ता है ?" मैंने कहा, "दो रास्ते हैं : (१) छोटा (२) बड़ा। दुनिया, गुनाह और ख़ाहिश को छोड़ना छोटा रास्ता है, और अल्लाह के सिवा सबसे अलग हो जाना बड़ा रास्ता है।" वह बोला, "मैंने बड़ा रास्ता पकड़ा।" और आगे चलकर वह बहुत ऊँचा उठा।

लोग ज़ू-उल-नून को धर्म-भ्रष्ट समझते थे। उन्होंने खलीफ़ा से जाकर उनके बारे में कहा भी। खलीफ़ा ने उन्हें बुलाया तो लोग उनके पैरों में बेड़ियाँ डालकर दरबार में ले गए। रास्ते में एक बुढ़िया मिली। उसने कहा, "ऐ ज़ू-उल-नून, तू खलीफ़ा से मत डर क्योंकि वह भी तेरी ही तरह खुदा का बन्दा है।" फिर एक भिश्ती मिला, जिसने उन्हें ठण्डा पानी पिलाया। ज़ू ने अपने साथी से उसे एक दीनार देने को कहा; मगर भिश्ती ने लेने से इन्कार कर दिया। कहा, "कैदी से लेना जवाँमर्दी के खिलाफ़ है।" खलीफ़ा ने उन्हें चालीस दिन कैद में रखा। उनकी बहन रोज एक रोटी उन्हें दे आती थी; मगर जब वह जेल से निकले तो वे रोटियां वैसी ही रखी हुई मिलीं।

बहन ने कहा, "वे रोटियां हलाल कमाई की थीं, क्यों नहीं खाईं ?" बोले, "दारोगा बत्तीन्नत (बुरे स्वभाव) था। उसके हाथ से छूकर आती थीं इसलिए नहीं खाईं।" जब खलीफ़ा के पास गये तो उसने कई सवाल किये। उनके वाजिब जवाब सुनकर खलीफ़ा बहुत खुश हुआ और उनके हाथ को बोसा देकर बड़ी इज़्ज़त के साथ मिस्र वापस भेज दिया। उन्हें लोग ज़िन्दीक क्यों कहते थे इसका कुछ अंदाज़ अपने एक मुरीद को ही

दी हुई नसीहत से मिलता है। ४० साल तक मिहनत करने पर भी जब इस शिष्य को दीदारे-इलाही और इल्मे तसव्वुफ (वेदान्त का ज्ञान) का लाभ न मिला तो दुखी होकर ज़ू से ज़िक्र किया। उन्होंने उसे एक अजीब सलाह दी। कहा, "ख़ूब खा, मज़े से सो, और नमाज़ न पढ़।" उनकी दो बातें तो उसने मान लीं मगर नमाज़ न छोड़ी।

रात को उसने मुहम्मद को स्वप्न में देखा कि उससे कह रहे हैं, "अल्लाह ने बाद सलाम के फ़र्माया है कि हमारी राह में जल्दी थककर बैठनेवाला नापसन्द है। तुम्हारी चालीस साल की मिहनत का बदला तुम्हें मिलेगा और ज़ू-उल-नून से कहना कि अल्लाह कहता है कि मैं तुम्हें शहर में रुसवा (अपमानित) करूँगा ताकि फिर कभी तू मेरे मुरीदों को मक्कारी न सिखाए।" इस शिष्य ने ज़ू-उल-नून से जब यह सब हाल जाकर कहा, तो वे मारे ख़ुशी के रोने लगे। उन्होंने ऐसे मौक़े पर सलाह तो बड़े मार्के की दी और वह काम भी कर गई पर लोग ऐसी उल्टी-सीधी बातों के लिए उन्हें भला कब माफ़ कर सकते थे। नमाज़ न पढ़ना, पेटभर खाना, नींद भर सोना यह भी क्या किसी सन्त को शोभा देने वाली सलाह है!

जीवनी-लेखक अत्तार ने स्वयं इस प्रश्न को उठाया है और लिखा है कि जैसे हकीम ज़हर से इलाज करते हैं वैसे ही सन्त आवश्यकता पड़ने पर आत्मलाभ की दृष्टि से ऐसी सलाह देने से भी नहीं झिझकते, जो देखने में ख़िलाफ़े शरीअत (धर्म-शास्त्र विरुद्ध) मालूम हो। एक बेहद दुबले आदमी को प्रदक्षिणा करते हुए देखकर ज़ू ने पूछा, "तू ख़ुदा को दोस्त रखता है?" उसने कहा, "हाँ।" पूछा, "तेरा दोस्त नज़दीक है या दूर।" बोला, "नज़दीक।" पूछा, "वह तेरे मुख़ालिफ़ (प्रतिकूल) है या मुआफ़िक़ (अनुकूल)?" बोला, "मुआफ़िक़।" ज़ू ने कहा, "जब तू ख़ुदा का दोस्त है, वह तेरे नज़दीक है और मुआफ़िक़ भी, फिर तू इतना कमज़ोर क्यों है?" वह बोला, "उनके नज़दीक रहना कुछ दिल्लगी नहीं है। जो उनके नज़दीक रहने वाले हैं, वे जानते हैं कि दूरी से नज़दीकी कितनी ज़्यादा सख़्त है।"

मुहब्बत यानी ईश्वर-प्रेम के विषय में सन्तों की जीवनी में भी चर्चा हुई है। मिसाल के लिए राबिआ ने कहा, "मुहब्बत अज़ल से आई और अबद से गुज़री, मगर कोई ऐसा न मिला जो उसका एक घूंट पिये," आख़िर वह वासिले हक़ हुईं। सन्त यहिया ने प्रसिद्ध सन्त बायज़ीद बस्तामी को लिखा कि उस शख़्स के बारे में आप क्या कहते हैं जो अज़ल (अनादिकाल) के एक प्याले से ऐसा मस्त हुआ कि अबद (अनंतकाल) तक उसकी मस्ती दूर न हुई। उत्तर में बायज़ीद ने लिखा, "यहाँ एक ऐसा इंसान

है कि रात-दिन में दरिया-ए अज़ल और अबद पीकर भी कहता है—क्या कुछ और है ?" ज़ू-उल-नून ने फिर किसी औरत से मुहव्वत की चर्चा करते हुए पूछा, "मुहव्वत की इन्तिहा यानी हद क्या है ?" वह बोली, "मुहव्वत इन्तिहा नहीं क्योंकि दोस्ती की कोई इन्तिहा नहीं।" (अर्थात् ईश्वर अनन्त है इसलिए प्रेम भी अनन्त है।)

हज़रत अबु-ज़ाफ़र का कहना है कि एक दिन ज़-उल-नून इस बात की चर्चा कर रहे थे कि बेजान चीजें भी पहुँचे हुए सन्तों की आज्ञा का पालन करती हैं। यहाँ तक कि अगर वह इस तख्त से कहें कि इस मकान के गिर्द घूम तो वह घूमने लगेगा। ज़ू का यह कहना था कि तख्त मकान के गिर्द घूमा और फिर वापस आ गया। एक कर्ज़दार आदमी को एक पत्थर उठाकर दे दिया, वह जमुर्रत्त का हो गया। उसे चार सौ दीनार में बेंचकर उसने अपना कर्ज़ चुका दिया। एक आदमी संतों को मूर्ख समझता था। उसे अपनी अंगूठी देकर कहा, "नानबाई के पास ले जाकर एक दीनार में बेंच आ।" नानबाई ने कहा, "कीमत ज्यादा है।" तब ज़ू ने कहा, "अब इसे सर्राफ़ के पास ले जा।" सर्राफ़ ने उसकी कीमत एक हज़ार दीनार लगाई। ज़ू ने कहा, "उस नानबाई की तरह तू भी सन्तों की बड़ाई को नहीं जानता।" उस दिन से सन्तों की अवमानना करना उसने छोड़ दिया।

एक बार वह एक ऐसे व्यक्ति से मिलने गये, जो अपने को ईश्वर का प्रेमी समझता था। वह बीमार था। ज़ू को देख कर बोला, "वह शख्स हर्गिज़ ख़ुदा का दोस्त नहीं जो उसके दिये हुए दर्द से रंज माने।" ज़ू ने कहा, "जो शख़्स अपने को ख़ुदा का दोस्त मशहूर करता है वह हर्गिज़ ख़ुदा का दोस्त नहीं।" यह सुनकर वह बहुत लज्जित हुआ और कहा, "अब मैं ऐसा न करूँगा।" इसी तरह जब एक व्यक्ति बीमार होने पर उन्हें देखने आया और बोला, "दोस्त का दर्द भी प्यारा होता है" तो वह नाराज़ होकर कहने लगे कि अगर तुम उन्हें जानते होते तो ऐसी बेअदबी (अशिष्टता) से उनका नाम न लेते। अपने एक दोस्त को उन्होंने ख़त में लिखा कि अल्लाह मुझको और तुझको दुनिया की बातों से बेख़बर रखे, अपनी मर्ज़ी से काम कराये और राज़ी रहे।

मगर एक बार उन्होंने अपने अल्लाह के काम में दखल दिया और परिणाम में फटकार पायी। बरफ के दिनों में उन्होंने एक यहूदी यानी ग़ैरमुस्लिम को चारों ओर बरफ के ऊपर दाना छिड़कते हुए देखा तो पूछा कि क्या कर रहे हो ? बोला, "आज बरफ की वजह से चिड़ियों ने दाना नहीं पाया; उनके लिए दाना छिड़क रहा हूँ। शायद अल्लाह मुझे इसका सवाब दे।" मुसलमानियत के अभिमान में ज़ू बोले, "ग़ैर का दाना वहाँ

पसन्द नहीं।" यहूदी ने कहा, "न सही। मेरा काम अल्लाह देखता है, मेरे लिए यही काफ़ी है।" इसके बाद हज्ज के दिनों में उसी यहूदी को बड़े उत्साह से काबा की प्रदक्षिणा करते हुए उन्होंने देखा। वह बोला, "देखिये, कितना अच्छा नतीजा मुझे उस काम का मिला।" ज़ू ने खुदा से कहा "नाअहल (अयोग्य) के लिए आपने इस चीज़ को इतना सस्ता क्यों कर दिया?" जवाब मिला, "मेरी मर्ज़ी जिसे चाहूँ जो दूं!"

उनकी कुछ प्रसिद्ध आध्यात्मिक सूक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं ताकि भक्त लोग उन पर मनन और आचरण करके लाभ उठावें:—

उससे अधिक कोई खुशहाल (आनदमय) नहीं जो पर्हेज़गारी (संयम-नियम) का लिबास (वेश) पहने हो।

कम खानेवाले का जिस्म तन्दुरुस्त रहता है और कम गुनाह करनेवालों की रूह (आत्मा) तन्दुरुस्त (स्वस्थ) रहती है।

जो शख्स बला (दैवी कोप) पर सब्र (संतोष) करे उससे ताज्जुब नहीं बल्कि ताज्जुब उससे है जो बला पर खुश हो।

खुदा से डरनेवाले सीधी राह पाते हैं और उससे न डरनेवाले गुमराह होते हैं। इस सम्बन्ध में एक दूसरे सन्त का कथन है—जो खुदा से डरता है उससे दुनिया की सब चीज़ें डरती हैं। जो खुदा से नहीं डरता वह खुद सब चीजों से डरता है। अल्लाह का ग़ज़ब (कोप) उस पर होता है जो दरवेशी यानी सीधी-सच्ची बन्दगी की ज़िन्दगी से दूर रहता है। इन्सान पर ६ चीज़ों से खराबी आती है: नेक ऐमाल (सत्कर्म) में कोताही (उपेक्षा) करना; शैतान की इताअत (आज्ञापालन) करना; मौत को भूल जाना; खुदा की रज़ामन्दी छोड़कर मखलूक की रज़ामन्दी अख्तियार (ग्रहण) करना; मन की मौज में आकर सही रास्ते को छोड़ देना; नेक मर्दों की भूलों को सबूत मानकर उनपर चलना और उनकी अच्छाइयों पर ध्यान न देना और इस बुराई से जब तकलीफ़ हो तो उनपर इल्ज़ाम लगाना।

साहबे हिम्मत (साहसी व्यक्ति) सलामती से नज़दीक होता है और साहबे इरादत मुनाफ़िक़ होता है, अर्थात्, धर्मानुकूल आचरण करने का जिसमें साहस है उसका कल्याण होता है और जो ऐषणाओं की प्रेरणा पर चलता है वह ईश्वर-विमुख हो जाता है। यह कि हिम्मत-वाला किसी से सवाल नहीं करता और इरादत (श्रद्धा) वाला थोड़ी-चीज़ पर फ़िसल पड़ता है।

पर्हेज़गारों की सोहबत (संगति) में ज़िन्दगानी (जीवन) का लुत्फ़ (सुख) मिलता है।

ऐसे शख्स से दोस्ती पैदा करनी चाहिए जो तेरे नाराज़ होने से राज़ी न हो, अर्थात्, जो तुम्हारे क्रोध की पर्वाह न करके सच्ची सलाह दे। मुहब्बते इलाही (प्रभु-प्रेम) की अलामत (पहचान) यह है कि उसके हबीब (प्यारे) को किसी बात में मुखालफ़त (विरोध) न करे—सदाचार से रहे।

ख़ुदा की मुआफ़क़त (मित्रता), खल्क को नसीहत (उपदेश), नफ़्स (कामवासना) की मुखालिफ़त (विरोध) और दुश्मन यानी शैतान से अदावत (वैर) करे। उससे ज्यादा कोई बेवकूफ़ हकीम नहीं जो मस्तों का इलाज मस्ती की हालत में करता है। यानी उन लोगों को नसीहत करना बेकार है जो दुनिया के नशे में चूर हों। होशियार होने पर ही मस्त से तौबा कराना ठीक होगा।

नेक वह है जो बुरी तरफ़ नज़र न करे और न कोई बुरी बात सुने।

गोशानशीनी से ज्यादा इखलास (निष्कपट प्रेम) की राह दिखानेवाली मैंने कोई चीज़ नहीं देखी। जो एकान्त में रहता है वह सच्चे प्रेम और भक्ति के स्तम्भ को पकड़कर खड़ा होता है।

पहले कदम पर तू अल्लाह को नहीं पा सकता।

जब कोई सच्चे दिल से तौबा करता है तो उसके सब गुनाह माफ़ हो जाते हैं।

अच्छा होता कि अल्लाह अपने प्यारे को उस वक़्त मुहब्बत अता (प्रदान) करता जब उसके दिल से खौफ़े फ़िराक़ (वियोग का भय) दूर कर देता।

हर चीज़ की सज़ा मुक़र्रर (नियत) है और याद से ग़ाफ़िल (प्रभु-स्मरण को भूलना) होना मोहब्बत की सज़ा है।

सूफ़ी वह है जो ऐसी नसीहत करे, जिसपर खुद अमल कर चुका हो।

ख़ुदा से डरनेवाले को आरिफ़ (ज्ञानी) कहते हैं। जो ख़ुदा के जितना ही करीब होता है उसे ख़ुदा का खौफ़ भी उतना ही ज्यादा होता है। आरिफ़ का हाल हमेशा एक-सा नहीं रहता क्योंकि हर वक्त ग़ैब (परोक्ष) से उस पर इस्रार (रहस्य) ज़ाहिर (प्रकट) होते हैं, जिनके मुताबिक उसकी हालत बदलती रहती है।

आरिफ़ उसे कहते हैं, जो बग़ैर इल्म के अल्लाह को जान ले, बग़ैर आँख के देखे, बग़ैर कान के सुने, वाक़िफ़ हो, बग़ैर सिफ़्त

(तारीफ़) के उसे पहचान ले, बग़ैर कश्फ़ (प्रकट होना) और हिजाब(संकोच)के उससे मुलाक़ात करें। इसलिए कि आरिफ फ़ना-फ़िल्लाह (ब्रह्मलीन) हो जाता है। अल्लाह ने कहा है कि जिसे मैं दोस्त रखता हूँ उसके लिए कान हो जाता हूँ ताकि मुझसे सुने; आँख हो जाता हूँ ताकि मुझसे देखे; ज़ुबान हो जाता हूँ ताकि मुझसे बात करे ; हाथ हो जाता हूँ ताकि मुझसे पकड़े।

आखिरत (परलोक) के बादशाह ज़ाहिद (विरक्त) हैं और ज़ाहिदों (विरक्तों) के बादशाह आरिफ़ हैं।

सोहबते-इलाही (प्रभु-संगति) के मानी हैं कि जितनी चीज़ें उससे दूर करने वाली हैं उन सबसे दूर रहे।

बीमार दिल की चार निशानियाँ हैं :— इबादत (उपासना) में मज़ा न पाना ; खुदा का खौफ़ न करना ; दुनिया की चीज़ों से इबरत (शिक्षा) हासिल न करना; इल्म (ज्ञान) की बात सुनकर उसपर अमल न करना।

खिलवत वह अच्छी नहीं जिससे खुदबीनी—ग़रूर पैदा हो।

मेरी जान की ग़िज़ा (खुराक) जिक्रे इलाही (प्रभु-चर्चा) है।

तक़्वा यानी (संयम) उसे कहते हैं जो ज़ाहिर को गुनाह (पाप) और नाफ़र्मानी (अवज्ञा) से नापाक (अपवित्र) न करे और बातिन को बेहूदा बातों से बचाये और हर वक्त अल्लाह का तसव्वुर (खयाल) करे।

जो शख्स ऐसे काम में तकलीफ़ उठाता है जो उसके काम न आये तो वह उस चीज़ को बर्बाद करता है जो उसके काम की है। इसी तरह जो शख्स उस चीज़ की तलाश करता है जिससे उसे लाभ नहीं हो सकता तो वह ऐसी चीज़ को खो देता है जो उसे फ़ायदा पहुँचा सकती है।

जिसके ज़ाहिर (प्रत्यक्ष)से उसके बातिन(अंतस्) का हाल मालूम न हो उसकी सोहबत न करनी चाहिए।

जो दिल से खुदा को याद्र करता है वह और सबको भूल जाता है।

किसी ने पूछा—आपने अल्लाह को कैसे पहचाना तो जवाब दिया कि मैंने उसे उसी की वजह से पहचाना।

किसी ने पूछा—खल्क के बारे में आपका क्या विचार है? तो बोले—खल्क ग़ैर की वहशत (त्रास) है।

बहिश्त (स्वर्ग) का हक़दार (अधिकारी) होने के लिए ५

बातों की ज़रूरत है :— मज़बूती से सच्चाई पर डटा रहना; बुराइयों से डर कर जूझना ; अन्दर और बाहर ख़ुदा को ही देखें; मौत का इन्तज़ार और आख़िरत की तैयारी रखें; क़यामत से पहले अपना हिसाब ख़ुद करे।

किसी ने पूछा—तवक्क़ुल यानी प्रभु-निर्भरता क्या है तो कहा—ख़ल्क से किसी तरह की उम्मीद या ख़ाहिश न रखना। गोशानशीनी और सभी दुनियाबी चीज़ों को छोड़कर दिल को ख़ुदा में लगाना है।

किसी ने पूछा—दुनिया किसे कहते हैं ? तो बोले—जो चीज़ अल्लाह से ग़ाफ़िल कर दे, वही दुनिया है। जो अल्लाह की राह न जानता हो और दूसरे से पूछे भी नहीं, वही कमीना है।

हज़रत यूसुफ़-बिन-हुसैन के पूछने पर कहा—सोहबत ऐसे लोगों की करनी चाहिए जिनके आगे मैं और तू का झगड़ा न हो। फिर कहा—नफ़्स की मुख़ालिफ़त करके अल्लाह के मुआफ़िक बन नकि नफ़्स का साथ देकर अल्लाह से मुख़ालिफ़त पैदा कर और किसी को हक़ीर (घृणास्पद) न समझ, चाहे वह मुशरिक यानी ईश्वर के बजाय किसी और को ही पूजने वाला क्यों न हो, क्योंकि मुमकिन है, वह राह पर आकर ख़ुदा का प्यारा हो जाय।

सूफी वह है, जो सबसे हटकर सिर्फ़ अल्लाह से वास्ता रखे।

किसी ने उपदेश के लिए प्रार्थना की तो कहा—अपने ज़ाहिर को ख़ल्क (सृष्टि) के, और बातिन को ख़ालिक (सृष्टि कर्त्ता) के हवाले कर दे और अल्लाह की मुहब्बत पैदा कर ताकि अल्लाह तुझे ख़ल्क से बेनियाज़ (बेपर्वाह) कर दे। शक (संदेह) को यक़ीन (विश्वास) पर हावी न होने दे और जब कोई मुसीबत आये तो सब्र कर और ख़ुदा की बन्दगी में ज़िन्दगी बसर कर।

भावी और भूत के झगड़े में अपने मन को मत डाल, अर्थात् जो हो गया है और जो होने वाला है उसको भूल कर इस समय जो तेरा फ़र्ज़ है बस उसी पर ध्यान दे।

किसी ने मारिफ़त (विरक्ति) की हद पूछी तो कहा—जिसको मारिफ़त की हद मालूम हो जाती है वह ख़ुद गुम हो जाता है। कहा—आरिफ़ को हर हाल में अल्लाह की याद और यक़ीन हासिल रहता है।

ज़ू-उल-नून का अन्त समय आया तो उन्होंने यह फ़िकरा पढ़ा—ख़ौफ़ ने मुझे बीमार कर डाला और शौक़ ने मुझे बचाया। मुहब्बत ने मुझे मारा और अल्लाह ने मुझे जिलाया। बेहोश हो जाने के बाद जब फिर होश में आये और हज़रत यसुफ़ ने वसीयत चाही तो बोले, "इस वक्त मुझे बातों में न

लगाओ। मैं उनकी अनगिनत मेहरबानियों की याद करके हैरान हो रहा हूँ।" कहते हैं उनकी मृत्यु हो जाने पर उनकी पेशानी (छाती) पर लोगों ने यह लिखा देखा, "यह अल्लाह का प्यारा है। उसीकी मुहब्बत में इसे मौत आई। यह अल्लाह का मारा हुआ है, उसीकी तलवार ने इसे क़त्ल किया है।" जब किसी ने यह आयत पढ़ी "अशहदम इलिल्लाह" तो जनाज़े (अर्थी) में से उनकी एक उंगली उठी और उठी ही रही।

उस ख़ुदा के सिवा दूसरा और कोई ख़ुदा नहीं है। जब मस्जिद में से अज़ान की यह आवाज आई तो इस महान सत्य की पुष्टि में ज़ू-उल-नून की उंगली उठी। लोगों ने समझा अभी वह ज़िन्दा हैं। जनाज़ा उतार कर देखा तो जान न थी मगर वह उंगली कोशिश करने पर भी बराबर न हुई, उठी ही रही। मिस्रवालों को जब यह सब हाल मालूम हुआ तो उन्हें अपने किये पर बड़ा अफ़सोस हुआ; क्योंकि ज़िन्दगी भर वे उनसे अदावत (शत्रुता) ही करते रहे। उनकी वह अन्तिम उठी हुई उंगली इस बात का प्रमाण है कि प्रियतम के सिवा उन्हें किसी से कुछ वास्ता न था और उनके उपदेशों में भी दुनिया के प्रति हद से बढ़ी हुई लापर्वाही दिखाई देती है, जिसके भीतर से उनका ईश्वर-प्रेम और भी अधिक तेज़ी से चमकता हुआ दीखता है।

: ५ :

दाऊद ताई

जब पकड़ने वाला किसी को किसी छोटी-सी बात से पकड़ कर अपनी ओर खींचता है तो दुनिया की एक मज़ेदार कहानी बन जाती है। नानक नाज तोल रहे थे। जब तेरह पर आये तो तेरा कहते-कहते बिलकुल उसीके हो गए। दाऊद ताई के जीवन में भी क्रांति कुछ अचानक आई। किसी गानेवाले ने अरबी का एक पद गाया, जिसका भाव यह था—"कौनसे तेरे चेहरे खाक में न मिले और कौनसी तेरी आँख जमीन पर न बही।" बस तीर लग गया, बेख़ुद और बेकरार हो गए। इसी हालत में इमाम अबु हनीफ़ा के पास पहुँचे और उनकी सलाह से गोशानशीनी (एकांत सेवन) इख़्तियार की।

जब उनकी बेचैनी कुछ कम हुई तो इमाम अबू हनीफ़ा ने उन्हें अपने समकालीन साधुओं और संतों के सत्संग का आदेश दिया और कहा, उनकी बातें सुनो और मनन करो। एक बरस तक उन्होंने यही किया। चुपचाप लोगों की बातें सुनते और खुद कुछ न बोलते। इसी बीच हबीब राई नाम के संत से इनका परिचय हुआ और उनसे प्रभावित होकर यह उनके शिष्य हो गए। भगवत-भक्ति और तप के द्वारा इनके अंतर-पट खुल गए और धीरे-धीरे आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त करके ऊँची श्रेणी के संत हो गए।

इनको पैतृक सम्पत्ति में बीस दीनार मिले थे। उन्हीं से २० बरस तक इन्होंने अपना खर्च चलाया और न किसी से कुछ लिया और न माँगा। मगर कहने वाले चूकते कब हैं! संतों ने आक्षेप किया कि दीनारों का संग्रह त्यागवृत्ति के प्रतिकूल है। किन्तु दाऊद ने उन्हें यह कहकर चुप कर दिया कि यह दीनार जीवन भर के लिए पर्याप्त हैं और बाधक होने के बजाय निर्विघ्नता पूर्वक भगवत्-भक्ति करने में सहायता दे रहे हैं। ईश्वर-भक्ति के अतिरिक्त उनकी अन्य किसी ओर रुचि न थी। दिन रात ईश्वर-स्मरण में ही लीन रहते थे।

उनकी तल्लीनता का यह हाल था कि भोजन करना भी उन्हें भार-सा प्रतीत होता था। इसीलिए वह उसे पानी में घोल कर पी जाते। कोई पूछता तो कहते कि ग्रास बनाकर खाने में जितना समय जाता है उतने समय में तो पचास आयतों का पाठ कर सकता हूँ। इधर हलाल रोजी (धर्मानुकूल कमाई) का भी बड़ा खयाल रहता। एक रोज़ संत अबु बकर मिलने आये तो देखा कि रोटी का एक टुकड़ा हाथ में लिये हैं। पूछा, "यह क्या माजरा है?" कहा, "मैं इसे खाना चाहता हूँ, मगर मालूम नहीं कि यह हलाल कमाई का है या नहीं।" पानी का घड़ा धूप में रखा था। किसी ने छाया में रखने को कहा तो बोले, "इसके लिए उसका नाम छोड़ूँ? ऐसा करते शर्माता हूँ।"

जिस मकान में वह रहते थे, बहुत बड़ा और पुराना था। उसका एक हिस्सा गिर गया तो वह दूसरे हिस्से में रहने लगे। जब वह भी गिर गया तो दरवाज़े में रहना शुरू किया। उसकी छत भी मुद्दत से बे-मरम्मत और पुरानी थी। किसी ने कहा, 'मकान बनवा लीजिए, दरवाज़े में न रहिये क्योंकि इसकी छत भी टूटी हुई है।" बोले, "मैं खुदा से ऐसा वादा कर चुका हूँ कि नया मकान तामीर न करूँगा। खुदा की इबादत में लगे रहने की वजह से मैंने कभी छत की ओर देखा भी नहीं। मुमकिन है, तुम्हारा कहना सच हो कि छत गिरनेवाली है।" और कहते हैं, उनकी मृत्यु के बाद वह छत गिर गई।

किसी ने पूछा, "आप निक़ाह (विवाह) क्यों नहीं करते ?" बोले, "निक़ाह में औरत के लिए खाना और कपड़ा देने का वादा करना होगा और देने वाला सच पूछो तो अल्लाह के सिवा और कोई नहीं हो सकता। इसलिए मैं किसी को धोखा देना नहीं चाहता।" किसी ने पूछा, "दाढ़ी में कंघी क्यों नहीं करते ?" बोले, "खुदा से फ़ुर्सत मिले तब न !"

एक दिन का ज़िक्र है कि रोज़ा था और गरमी के दिन थे, धूप में बैठे इबादत कर रहे थे। माता ने प्यार से कहा, "धूप से छाया में चले आओ।" तब उसे भी वही उत्तर दिया जो घड़े वाली घटना के समय दिया था। कहा, "जब यहाँ बैठा था तब छाया थी; अब मुझे शर्म आती है कि नफ़्स की खातिर क़दम उठाऊँ और दम भरके लिए उन्हें भूलूं।" कहा, "बग़दाद में लोगों ने जब परेशान किया तो मैंने खुदा से दुआ की तुम मेरा खिर्क़ा (फटा-पुराना लिबास) ले लो, ताकि ज़माने की नमाज़ में मुझे न जाना पड़े, और दुनिया मुझ से न लिपटे। खुदा ने वह गुदड़ी ले ली और अब मुझे गोशानशीनी और खुदा के नाम के सिवा कुछ अच्छा नहीं लगता।"

एक बार चांदनी रात को सैर के लिए छत पर चढ़े। उस सुंदर कुदरती नज़ारे से ऐसे प्रभावित हुए कि बरबस बेखुद होकर गिर पड़े। आवाज़ सुनकर पड़ोसी ने समझा, कोई चोर है और तलवार लेकर ऊपर दौड़ा हुआ आया। दाऊद को देखकर हैरत से पूछा, "आप यहाँ कैसे पड़े हैं ?" बोले, "मुझे कुछ होश नहीं, मालूम नहीं किसने मुझे यहाँ फेंक दिया।" लिखा है कहीं—वह बड़े ज़ालिम है। छत देखने की जिसे फ़ुर्सत न थी वह चांदनी देखने क्यों आवे ? राबिआ रात को बैठी याद में लीन थी। उसकी सखी ने तारों-भरा आसमान देख कर पुकारा, "अरी, बाहर आकर उसकी (खुदाकी) सन्अत (कारीगरी) तो देख।" राबिआ बोली, "सन्अत का क्या देखना सानिए (कलाकार यानी प्रभु) को देख।" कलाकार को भूलकर कला देखने के कारण ही दाऊद शायद फेंके गए।

दाऊद का रोना प्रसिद्ध है। उनसे कोई गुनाह हो गया था। उसके लिए वह बहुत रोए और पछताए। यों तो रोना, जागना, भूखे रहना, पैर न फैलाना, संतों के मानो आभूषण हैं। फिर भी दाऊद रोने में बाज़ी ले गए। ग़मग़ीन तो हमेशा रहते और कहते जिसको हर वक्त मुसीबतों का सामना हो वह भला खुश कैसे हो सकता है ? लेकिन एक दिन आदत के खिलाफ़ उन्हें हँसता हुआ देखकर लोगों ने आश्चर्य से पूछा, "आज हँसने की क्या

वजह है ?" बोले: "आज मुहब्बत की शराब उन्हों ने मुझे पिलाई है। इस-लिए मैं खुश हूँ और हँस रहा हूँ।" हज़रत अबु वास्ती ने जब नसीहत चाही तो एक आयत सुना कर दाऊद ने कहा, "दुनिया से रोज़ा रक्खो और आख़िरत (परलोक) से अफ़्तार करो।" शायद इसका मतलब यह भी हो कि दुनिया की बातों से तो दूर रहो ही, मगर आखिरत से भी उतना ही वास्ता रक्खो जितना कि रोज़े वाला कुछ थोड़ा-सा खाकर अपना रोज़ा खोलता है। किसी और संत ने कहा है, "या अल्लाह, दोज़ख अपने दुश्मनों को दे, जन्नत दे अपने दोस्तों को, मेरे लिए तो तू ही बस है।" दाऊद ने किसी दूसरे के नसीहत माँगने पर कहा, "ज़बान को बुरी बातों से बचाओ, लोगों से दूर रहो, हो सके तो उनका खयाल एकदम दिल से निकाल दो और दुनिया की अच्छी चीज़ों से दीन की अच्छाई को ज़्यादा अच्छा समझो।"

किसी ने उपदेश माँगा तो कहा, "तू दुनिया के लिए जितनी कोशिश करता है उतनी ही दीन के लिए करे तो बेहतर।" मगर एक दूसरे व्यक्ति से कहा कि दीन और दुनिया दोनों को तर्क करने से आदमी आरिफ़ हो जाता है। फ़ज़ील, जो पहले डाकू थे, और जिनका ज़िक्र पहले आ चुका है, इनसे परिचित थे और इन्हें इस बात का फ़ख्र हासिल था कि वह दो बार इनसे मिले। एक बार तो उसी टूटी छत के नीचे बैठे देखकर फ़ज़ील ने कहा, "अलग हट जाइये कहीं छत के गिरने से चोट न लगे।" दाऊद बोले, "मैंने आज तक छत को देखा ही नहीं।" दूसरी बार मिलने पर संत फ़ज़ील ने जब कुछ नसीहत चाही तो दाऊद बोले, "दुनिया में लोगों से मिलना छोड़ दो।"

मारूफ़ करखी नाम के संत का कहना है कि मैंने हज़रत दाऊद से ज़्यादा दुनिया से नफ़रत करनेवाला किसी को न देखा। विरक्त और और उदासीन होने के अलावा उनकी एक याद रखनेवाली बात यह थी कि जब वह कपड़े धोते तो कहा करते कि अगर मैं इसी तरह मलमल कर अपना दिल धोता तो बहुत अच्छा होता।

इमाम मुहम्मद और इमाम अबु यूसुफ़ दोनों ही संत दाऊद के परिचितों में थे और जब इन दोनों में किसी विषय पर मतभेद पैदा हो जाता तो उसका फ़ैसला दाऊद ही अक्सर करते और जो यह कहते उस पर दोनों अमल करते। लेकिन वह इमाम मुहम्मद का अदब अबु यूसुफ़ की निस्बत ज़्यादा करते। लोगों ने इसका सबब पूछा तो कहा, "इमाम मुहम्मद ने दीन के लिए इल्म हासिल किया है और इमाम अबु यूसुफ़ ने इल्म को ज़्रत का ज़रीआ बनाया है और क़ाज़ी का दर्जा मंजूर करके वह अपने उस्ताद इमाम अबु हनीफ़ा के मार्ग से हट गए।

हारूं रशीद इमाम अबु यूसुफ़ के साथ एक बार जब इनसे मिलने आये तो इन्होंने मिलने से इन्कार कर दिया और कहा, "मैं दुनियादार और ज़ालिमों से मिलना नहीं चाहता।" फिर मां के ख़ास इसरार करने पर उन्हें आने दिया। कुछ देर बैठकर चलते समय हारूं रशीद ने एक अशर्फी भेंट की पर उन्होंने उसे वापिस कर दिया और कहा, "मैंने अपना मकान हलाल रुपए के एवज़ बेच दिया है और उसीसे मैं अपना खर्च चला रहा हूँ। और मैंने यह दुआ की है कि वह जब खर्च हो जाय तो अल्लाह दुनिया से उठा ले।"

वे दोनों लाचार उनके पास से चले आये मगर अबु यूसुफ़ ने उनके नौकर से पूछा कि अब हज़रत दाऊद के पास खर्च के लिए कितनी दौलत बाकी है? नौकर ने बताया, दस दिरम चांदी बाकी है। अबु यूसुफ़ ने हिसाब लगा कर समझ लिया कि इतने दिन वह और ज़िंदा रहेंगे और उतने दिन गुज़रने पर लोगों से कह दिया कि अब वह दुनिया से उठ गए। लोगों ने जाकर उनकी वालिदा से पूछा। मालूम हुआ कि रात भर उन्होंने मस्जिद में इबादत की और सिज्दे (नमाज़ पढ़ते हुए) की हालत में दम छोड़ा। ख़ुदा ने अपने मुरीद की यह दुआ भी कबूल की।

एक आदमी ने स्वप्न में हज़रत दाऊद को हवा में उड़ते और यह कहते देखा कि आज मैंने कैदखाने से रिहाई पाई। सबेरा होते ही वह आदमी दाऊद से ताबीर (स्वप्न फल) पूछने आया और वहाँ आपके इन्तिक़ाल का हाल सुनकर खुद ही समझ गया कि उसके स्वप्न का क्या फल था। आस्मान से, कहते हैं, आवाज़ आई, "ख़ुदा अपने मुरीद दाऊद से राज़ी है।"

: ६ :

अबु मुहम्मद जरेरी

उनकी कुछ सूक्तियाँ नीचे दी जाती हैं :—

इख़्लास (सच्चा प्रेम) शजरे यक़ीन (विश्वास रूपी वृक्ष) का फल है और रिया (आडंबर) शक़ का समर (नतीजा) है।

दिल का असली काम क़ुर्बते-हक़ (सत्य से संपर्क करना) और मुशाहिद-ए-सन्अत (प्रभु की कारीगरी को पहचानना) है।

नफ़्स (विषय) की पैरवी करनेवाला क़ैदी है।

नफ़्स की राहत (चैन) के लिए मेहनत और ने'मत में फ़र्क़ न करना, यह सब्र है।

सब्र बला पर सकून (विपद् में धैर्य) को कहते हैं।

बड़ा शुक्रिया यह है कि बन्दा शुक्र (कृतज्ञता प्रकाशन) करने से अपने को आजिज़ (विनम्र) जाने।

ईमान की सलामती (सुरक्षा), दीन और तन की दुरुस्ती तीन चीज़ों में है—किफ़ायत करने में,; मुनहियात से परहेज़ करने में, और ग़िज़ा (खराक) कम खाने में।

किफ़ायत करने वाले का बातिन दुरुस्त होता है और पर्हेज़गारी से रहनेवाले का बातिन रोशन होता है और ग़िज़ा कम खाने वाले का नफ़्स मेहनतकश (श्रमशील) हो जाता है।

जिस बन्दे को अल्लाह अपने अनवार (प्रकाश पुंज) से ज़िन्दा करता है वह कभी नहीं मरता।

आरिफ़ (ज्ञानी) इब्तिदा (प्रारंभ) में ही अल्लाह को याद करते हैं और अवाम (जनसाधारण) तकलीफ़ में।

उपरोक्त विचार अबु मुहम्मद जरेरी के हैं। कहते हैं इनको तमाम उलूम (ज्ञान) ज़ाहिरी और बातिनी में आला दर्जे का कमाल हासिल था। अदब से बेहद वाक़िफ़ थे। खुद इनका ही कहना है कि अल्लाह के अदब की वजह से बीस साल तक कभी खिल्वत में भी पैर नहीं फैलाए।

एक साल मक्का में इस तरह से रहे कि अदब के लिहाज़ से न सोए, न बात की, न दीवार का तकिया लगाया और न पैर फैलाए। अबु बकर ने पूछा, "इतने बर्दाश्त की ताक़त आपमें कैसे आई?" कहा, "मेरे सिद्क़ बातिन (अंतस्) ने मेरे ज़ाहिर को बर्दाश्त (सहन) की क़ुव्वत (शक्ति) दी।" कहते हैं, जुनैद के बाद यही उनके क़ायम-मुक़ाम (उत्तराधिकारी) हुए।

एक फ़क़ीर नंगे पैर बाल खोले हुए आया, वुज़ू किया और नमाज़े अस्र पढ़कर मग़रिब तक सिर झुकाए बैठा रहा। इनके साथ मग़रिब की नमाज़ पढ़कर फिर सिर झुकाकर बैठ गया। उस दिन खलीफ़ा के यहाँ सूफ़ियों की दावत थी। इन्होंने साथ चलने को कहा तो वह बोला, "मुझे खलीफ़ा से क्या मतलब? हाँ, तुम चाहो तो थोड़ा-सा हलुवा ला दो।"

अबु मुहम्मद ने समझा यह कोई नौ-मुस्लिम है और उसकी बात पर

कुछ ध्यान न दिया। वह दावत से वापिस आये तो देखा कि वह शख्स उसी तरह सिर झुकाए बैठा है। जाकर सो रहे। ख्वाब में देखा कि मुहम्मद की दाईं जानिब इब्राहीम और बाईं जानिब मूसा हैं, साथ में २०१०० नबी हैं।

अबु मुहम्मद सामने गये तो रसूल ने मुंह फेर लिया। सबब पूछा तो बोले, "हमारे एक दोस्त ने तुझसे हलुवा माँगा और तूने उसकी बात पर ध्यान न दिया—टाल गया।" अबु मुहम्मद जागे और उसके पास गये। वह जा रहा था। रोकने से भी न रुका। यह कहकर चला गया—अब २०१०० नबियों की सिफ़ारिश पर हलुवे को कहता है, पहले कहाँ था!

अपनी जीवनी की एक घटना उन्होंने यों बताई है। जामा मस्जिद बग़दाद में एक बुजुर्ग रहते थे। वे हमेशा एक ही लिबास पहने रहते।

मैंने सबब पूछा तो उन्होंने कहा, "मैंने एक बार ख्वाब देखा कि जन्नत में कुछ लोग अच्छे कपड़े पहने दस्तरख्वान पर बैठे हैं। मैं भी बैठ गया मगर मुझे उठा दिया और कहा तू यहाँ बैठने लायक नहीं।"

वह बुजुर्ग बोले, "हाथ पकड़ कर उठानेवाले फ़रिश्ते ने कहा कि ये वह लोग हैं, जिन्होंने तमाम उम्र एक ही लिबास पहना है। उसी दिन से मैंने इरादा कर लिया कि अब मैं भी आइन्दा सिवा एक लिबास के दूसरा न पहनूंगा। उस दिन से आज तक मैंने अपना लिबास नहीं बदला।"

: ७ :

हज़रत अबु हमज़ा ख़ुरासानी

अबु हमज़ा खुरासान के बहुत बड़े संतों में हुए हैं। इबादत (उपासना) और रियाज़त (तपस्या) तो और संतों की तरह इन्होंने भी खूब की मगर तवक्कुल (ईश्वर-भरोसा) इनके जीवन की सबसे बड़ी चीज़ है। अबु तराब और जुनैद से इनका मिलना हुआ था।

* जुनैद को शैतान को देखने की इच्छा थी और वह उन्हें मिला भी। मगर शैतान पर जुनैद की इतनी हैबत तारी (आतंक छाया हुआ) थी कि उसने जुनैद के कहने पर यह वचन दिया था कि वह बग़दाद में कभी क़दम न रखेगा।

इस शैतान को एक बार जुनैद ने देखा कि लोगों के सिर पर नंगा सवार हो रहा है। जुनैद बोले, "अबे ओ नालायक़, तुझे शर्म नहीं आती?" शैतान बोला, "यह आदमी नहीं जिनसे मैं शर्म करूँ, आदमी है जो वह मस्ज़िद शौनीज़ा में बैठा है।"

जुनैद उसकी बात सुनकर मस्ज़िद शौनीज़ा पहुँचे और वहाँ उन्होंने इन्हीं संत अबु हमज़ा को बैठे पाया। उन्हें देखते ही अबु हमज़ा बोले, "वह झूठा है, क्योंकि ख़ुदा के नज़दीक औलिया (संत) का मर्तबा (दर्जा) उससे अधिक है, जिससे शैतान वाक़िफ़ हो?"

एक बार अल्लाह पर तवक्कुल (मात्र प्रभु का भरोसा) करके सफ़र को निकले और यह प्रण किया कि किसी से कुछ न मांगेंगे। चलते समय तहन न कुछ दीनार गुदड़ी में रख दिए थे कि समय पर काम आवें; मगर उन्हें जब याद आई तो दीनार निकाल कर फेंक दिए।

उनमें ईश्वर का विश्वास कितना गहरा है यह प्रमाणित करने के लिए एक अघटनीय घटना घटित हुई—वह कुएँ में जा गिरे।

गिरे तो सही; पर चोट न आई। ईश्वर-विश्वासी थे इसलिए न चीखे, न चिल्लाए, न किसी ग़ैर से मदद लेने की इच्छा ही अपने मन में की। नफ़्स ने, यानी अन्तःकरण का वह भाग, जो अपने को शरीर से सम्बद्ध समझता है, बहुत द्वन्द्व मचाया।

नफ़्स तो अन्तर में अपनी शक्ति पर उखाड़-पछाड़ मचाए ही रहा; मगर अबु हमज़ा उसकी परवाह न करके भगवान के भजन में अपनी सात्विक वृत्तियों को लेकर लीन हो गए। विवशतः, नफ़्स को चुप हो जाना पड़ा।

इतने में कोई मुसाफ़िर उधर से गुज़रा तो उसने सोचा यह कुआँ रास्ते में है, कहीं अन्धेरे-उजालेगें कोई गिर न पड़े इसलिए उसने जहाँ-तहाँ से इकट्ठे करके कुएँ की जगत पर कांटे बिछा दिए।

कुएँ के अन्दर पड़े हुए अबु हमज़ा की आँखों ने यह देखा और नफ़्स ने इस बार और भी बावेला मचाया; मगर उसकी परवाह न करके अपने परम-हितैषी परमात्मा के विश्वास पर ही निश्चल पड़े रहे।

कहते हैं, थोड़ी देर में एक शेर आया और उसने कुएँ पर से काँटे हटाकर अपने दोनों पंजे मज़बूती के साथ जगत पर जमाये और अपने पैर कुएँ में लटका दिए। निश्चय ही यह एक विचित्र प्रसंग था।

अबु हमज़ा ने यह सब देखा; मगर मन में कहा, मैं बिल्ली का अहसान न लूंगा। तब इल्हाम हुआ, "इसे हमने भेजा है। इसके पाँव

पकड़ कर ऊपर चढ़ आओ।" ईश्वर की ऐसी आज्ञा है, ऐसा समझ कर उन्होंने पैर पकड़ लिये और शेर के साथ ऊपर आ गए।

तब सुना, कोई कहता है, "तूने हम पर तवक्क़ुल किया तो हमने तेरे क़ातिल (खूनी) के ज़रीआ तुझे निजात (मुक्ति) दी।" इतना ही नहीं; कहते हैं शेर ने अबू हमज़ा के पैर चूमे और फिर धीरे-धीरे वहां से चलकर आँखों से ओझल हो गया।

अबू हमज़ा हर साल एहराम (हांजियों का वस्त्र) बाँधते और दूसरे साल तक न खोलते, वह कहते थे उन्स अर्थात् ईश्वर-प्रेम यह है कि खल्क़ के साथ रहना-सहना, बातचीत करना बुरा मालूम हो। सच भी है। ईश्वर-प्रेम से जिसका मन भरा हो उसे अन्य से सम्बन्ध रखना भार मालूम होता है।

वह कहते हैं, ग़रीब वह है जिसे अपने सगे-संबंधियों और प्रेमी-मित्रों से विरक्ति हो, जिसकी लगन अपने मालिक से लगी हो। कहते, मौत को जाननेवाला सिवा ईश्वर के और किसी को अपना दोस्त नहीं समझता।

तवक्क़ुल—ईश्वर-विश्वास, जो उनके जीवन का खास अंग था, उनकी दृष्टि में यह है कि मनुष्य सुबह का शाम को और शाम का सुबह को खयाल न करे। वह इस पर ज़ोर देते—तोश-ए-आक़िबत मुहैया करो, अर्थात्, अच्छे कर्म करो, जो परलोक में काम आवें।

: ८ :

अबुल हसन खिरक़ानी

खिरक़ान के रहनेवाले अबुल हसन एक बहुत ही ऊँचे दर्जे के सन्त हुए हैं। इतने ऊँचे कि एक बात को निहायत ही बेतकल्लुफ़ी (निःसंकोच) से कह गए हैं। उसकी कहानी यों है : यात्रियों का एक दल हज को जा रहा था। रास्ता खतरनाक था। सबने आकर खिरकानी से कहा कि कोई ऐसी दुआ बता दीजिए कि जिसकी वजह से हमारे ऊपर सफ़र में कोई मुसीबत न आये। उन्होंने इसके उत्तर में इतना ही कहा कि जब कोई मुसीबत आये तो तुम अबुल हसन को याद करना।

उस ज़माने में भी सभी विश्वासी रहे हों ऐसी बात तो न थी। लोग

मन-ही-मन मुस्कराए और यात्रा पर चल पड़े। राह में डाकुओं ने घेर लिया। एक व्यक्ति को, जो अधिक धनवान था और जिसे लूटने के लिए डाक भी विशेष आतुर थे, अबुल हसन् का वचन स्मरण हो आया। उसने सच्चे जी से उन्हें याद किया। तत्काल वह ओझल हो गया। डाकू बड़े चकित थे। औरों को लूटकर जब डाकू चले गए तब वह नज़र आया। अपने माल-असबाब के साथ सही-सलामत वह जहाँ था, वहीं खड़ा दीखा।

स्वभावतः ही लोगों ने पूछा, "तुम कहाँ ग़ायब हो गए थे?" उसने जवाब दिया, "मैंने शेख अबुल हसन को याद किया था। खुदा की क़ुदरत से मैं सबकी नज़रों से ग़ायब हो गया।" जब यह दल लौटा तो अबुल हसन से पूछा, "शेख! यह क्या माजरा है कि हम खुदा को याद करते रहे और लूटे गए और इस शख्स ने आपको याद किया और बच गया?"

वह बोले, "तुम लोग अल्लाह को ज़ुबान से याद करते हो और अबुल हसन दिल से। बस तुम अबुल हसन को यानी ईश्वर को सच्चे जी से याद करनेवाले उसके किसी भी पहुंचे हुए मुरीद को याद करो ताकि वह तुम्हारे लिए खुदा को याद करे और तुम महफ़ूज़ हो। और सिर्फ़ ज़ुबान से हज़ार बार भी याद करोगे तो कुछ फ़ायदा न होगा।"

सन्तों में परस्पर खासी चुहल होती है और यहाँ ऐसी दो घटनाएँ दी जाती हैं। शेखों के शेख हज़रत अबु-उल-उमर-अबु-अब्बास ने एक दिन इनसे कहा कि आओ हम और तुम इस दरख्त पर चढ़कर फांदे और वह इतना बड़ा था कि हज़ार जानवर उसकी छाया में आराम से बैठते थे। अबुल हसन ने जवाब दिया, "आओ हम लोग अल्लाह के लुत्फ़ का हाथ पाकर दोनों जहान से फांदे। न बहिश्त की ओर देखें न दोज़ख की जानिब!"

अबकी बार इन्हीं शेख ने कुछ व्यावहारिक विनोद किया। अबुल हसन के सामने जो पानी भरा रखा था उसमें हाथ डालकर शेख ने एक ज़िन्दा मछली निकालकर उनके सामने रख दी। अबुल हसन ने जलती हुई आग में हाथ डालकर एक ज़िन्दा मछली निकालकर उनके सामने रखते हुए कहा, "पानी से मछली निकालने की बनिस्बत आग से मछली निकालना कम सहल है।" शेख बोले, "आओ इस आग में कूदें, देखें-कौन ज़िन्दा निकलता है?" हसन बोले, "नहीं, हम अपनी नेस्ती में गोता लगावें (अपना अस्तित्व नष्ट कर लें) और देखें कौन अल्लाह की हस्ती (सामर्थ्य) से ज़िन्दा होकर आता है।"

इन्हीं शेख ने कहा कि मैं अबुल हसन खिरक़ानी के कारण बीस साल से नहीं सोया हूँ। और जिस मर्तबे में (दर्जे) मैं कदम रखता हूं इन्हें दो-चार क़दम अपने से आगे ही पाता हूँ। मैंने दस साल यह कोशिश की कि

बायज़ीद बस्तामी के मज़ार (क़ब्र) की ज़ियारत (दर्शन) को इनसे पहले पहुँचं मगर ऐसा न हो सका। अल्लाह ने इन्हें यह कुदरत दी है कि तीन फ़र्सँग[1] की मंजिल को दमभर में तय करके बस्ताम में जा पहुँचते हैं।

एक बार एक शिष्य ने लेबनान पर्वत पर जाकर क़ुत्ब आलम की ज़ियारत करने की इज़ाजत चाही तो उसे मिल गयी। जब वह वहाँ पहुँचा तो मालूम हुआ कि क़ुत्ब आलम नमाज़ के लिए आनेवाले हैं। शिष्य ने देखा कि इस नमाज़ के इमाम क़ुत्ब आलम[2] और कोई नहीं खुद अबुल-हसन ही हैं। उस पर कुछ ऐसी दहशत (आतंक) तारी हुई कि वह बेहोश हो गया। जब होश में आया तो पूछा—सच कहो वे इमाम कौन हैं? मालूम हुआ कि हसन ही हैं और पाँचों वक्त नमाज़ के लिए यहाँ आते हैं।

ख़िरक़ान में वह रहते हैं, यह वह जानता ही था और पाँचों वक़्त की नमाज़ के लिए वह रोज़ लेबनान पर्वत पर आते हैं। यह सुनकर शिष्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस बात की तस्दीक़ (पुष्टि) के लिए दूसरी नमाज़ तक वहाँ ठहरा रहा। वह आये। नमाज़ के इमाम बने और जब वह जाने लगे तो शिष्य ने उनका दामन पकड़ लिया। अबुल हसन चुपचाप उस शिष्य को एक ओर ले गए और उससे कहा कि किसी पर वह इस बात को ज़ाहिर न करे।

उनका जीवन आश्चर्यजनक घटनाओं से परिपूर्ण है। एक चमत्कार, जो उनके जीवन से सम्बन्धित है, इस प्रकार है: कुछ मेहमान आये; मगर बीवी ने कहा, "सिवा चन्द रोटियों के घर में कुछ नहीं है।" बोले, "रोटियों पर एक कपड़ा डाल दो और फिर जितनी ज़रूरत हो उसमें से निकाल-निकाल कर मेहमानों के सामने रखती जाओ।" अतिथियों ने ख़ूब तृप्त होकर भोजन किया। तब नौकर ने कपड़ा उठाकर देखा—कुछ न था। बोले, "ग़लती की, वरना कभी कमी न पड़ती।"

एक अत्यन्त रोचक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख उनकी जीवनी में आता है। ग़ज़नी का बादशाह सुल्तान महमूद एक बार उनके दर्शनों को आया। उसने दूत के द्वारा यह कहला भेजा कि बादशाह सलामत ग़ज़नी से सिर्फ़ आपकी ज़ियारत के लिए यहाँ तक आये हैं। बड़ी कृपा होगी यदि आप खीमे पर चलकर उन्हें दर्शन दें। यह भी कह दिया कि आने पर राज़ी न हों, तो यह आयत सुना देना—इताअत (आज्ञा-पालन) करो अल्लाह की और उनकी, जो क़ौमी हाक़िम हैं।

१. एक फर्सँग—लगभग चार हज़ार गज या क़रीब सवा दो मील।
२. ऐसे मुसलमान ऋषि, जिनके सिपुर्द कोई बड़ा इलाक़ा होता है।

दूत के आने पर अबुल हसन ने क्षमा चाही। जब उसने वह आयत सुनाई तो हसन बोले, "महमूद से कह देना कि मैं अल्लाह की इताअत (सेवा) में इतना मसरूफ़ हूँ कि रसूल की इताअत के लिए भी कोई वक्त नहीं। फिर दुनियावी (सांसारिक) हाक़िमों का तो ज़िक्र ही क्या?" उनका यह उत्तर सुनकर महमूद प्रसन्न हुआ और कहा, "मैं उनको जितना ऊँचा सूफ़ी समझता था उससे भी वह ऊँचे हैं।"

महमूद ने अबुल हसन के इम्तिहान की ठानी। अयाज़ नाम का उसका एक मुंह-लगा गुलाम था। किसी दिन तरंग में आकर उसने यह वचन दिया था कि एक रोज़ वह अपना शाही लिबास उसे पहनाएगा। उसका वेष धारण करके वह गुलाम की तरह उसके पास खड़ा होगा। आज उसने वही खेल खेला। अपने कपड़े अयाज़ को पहनाकर उसे अपनी जगह बैठाया और दस दासियों को मर्दाना लिबास पहनाकर खुद गुलाम बनकर उन दासियों में शामिल होकर सन्त के दर्शनों को चला।

खानक़ाह में पहुँचकर महमूद ने सन्त को प्रणाम किया। अबुल हसन ने प्रणाम का उत्तर तो दिया पर उसके सम्मान में वह उठे नहीं, और महमूद की ओर, जो ग़ुलामों के लिबास में था, अपनी नज़र फेरी; पर अयाज़ की तरफ़ कि जो शाही लिबास में था, उन्होंने अपना रुख़ भी न किया। महमूद बोला, "आपने बादशाह की ताज़ीम (सम्मान) क्यों नहीं की?" हसन बोले, "यह तो सब रचा-रचाया जाल है।" महमूद ने कहा, "हां, पर ऐसा नहीं जिसमें आप फँसे।"

हसन ने आगे बात करने से पहले महमूद से कहा कि इन अनावश्यक लोगों को बाहर कर दो। महमूद का इशारा पाकर जब सब चले गए तो उसने कहा, "हज़रत बायज़ीद बस्तामी की कोई बात सुनाइए।" हसन बोले, "बायज़ीद ने कहा है कि जिसने मुझे देखा बदबख़्ती (दुर्भाग्य) से बरी हो गया।" महमूद बोला, "क्या इनका मर्तबा रसूल से भी ज़्यादा है, क्योंकि बहुतों ने उन्हें देखा, मगर बदबख़्त (अभागे) के बदबख़्त ही बने रहे!"

बोले, "अय महमूद! ज़रा अदब (शिष्टाचार) का लिहाज़ रख और अपनी सल्तनत को ख़तरे में न डाल। सच्ची बात तो यह है कि सिवा चार ख़लीफ़ाओं और असहाब (व्यक्तियों) के किसी ने उन्हें नहीं देखा। और इसका सबूत यह आयत है—'अय मुहम्मद, तू उनको देखता है जो तेरी तरफ़ नज़र करते हैं। हालांकि वह तुझे नहीं देख सकते।" सुल्तान महमूद इस आयत को सुनकर बहुत खुश हुआ और फिर सन्त हसन से नसीहत चाही।

अबुल हसन बोले, "जो चीज़ें हराम हैं उनसे दूर रहो। जमाअत (समूह) के साथ नमाज़ अदा करो। सखावत (उदारता) इख्तियार करो। और खुदा की बनायी हुई खल्क से प्यार रखो।" महमूद बोला, "मेरे लिए दुआ कीजिए।" बोले, "मैं हर वक्त अल्लाह से दुआ करता हूँ—अल्लाहहुम, अग्रफरउल मोमनीन व अलमोमनात, अर्थात्, ऐ खुदा, तू मुसलमान औरत-मर्दों को बख्श दे।" महमूद बोला, "कोई खास दुआ मेरे लिए कीजिए।" हसन ने कहा, "ऐ महमूद, तेरी आक़बत (परलोक) महमूद (श्रेष्ठ) हो।

अब सन्त और शाह में कुछ चोटें हुईं। महमूद ने अशर्फियों का एक तोड़ा सन्त हसन को भेंट किया। सन्त ने एक सूखी जौ की टिकिया सुल्तान के सामने रखी और कहा, "इसे खाओ।" महमूद ने एक टुकड़ा तोड़कर मुंह में रखा और देर तक चबाया किया ; मगर वह हलक़ (गले) से नीचे न उतरा। बोले, "शायद यह निवाला (ग्रास) तेरे गले में अटकता है।" बोला, "हाँ"। हसन ने कहा, "क्या तू चाहता है इसी तरह अशर्फियों का तोड़ा मेरे हलक़ में अटके ?"

तोड़ा उठा ले जाने का आदेश जब हसन ने दिया तो महमूद ने प्रार्थना की कि इसमें से कुछ तो कृपा करके स्वीकार कर लें। हसन बोले, "बिला ज़रूरत कोई चीज़ लेना ठीक नहीं।" महमूद बोला, "अच्छा तो बतौर तोहफ़ा कोई चीज़ देकर मश्कूर कीजिए। हसन ने अपने पहनने का एक वस्त्र दे दिया। वस्त्र लेकर जब महमूद चलने लगा तो सन्त को खुश करने की आन्तरिक इच्छा से बोला, "हज़रत, आपकी खानक़ाह बहुत उम्दा है।"

सन्त ने यह सुनकर शाह के दिल पर एक निहायत नफ़ीस चोट की। बोले, "ऐ महमद, अल्लाह ने तुझे इतनी बड़ी सल्तनत दी है फिर भी तेरे दिल से लालच नहीं गया। इस झोंपड़े का भी तालिब (इच्छुक) है!" महमूद बहुत ही लज्जित हुआ। यह मीठा तीर ठीक निशाने पर लगा। जब वह चलने लगा तो सन्त हसन उसकी ताज़ीम (सम्मान) में खड़े हुए। इतनी चोटें खाया हुआ महमूद का दिल इस सम्मान से और भी चकित हुआ। बोला, "जब मैं आया तब आपने ताज़ीम न की अब क्यों ताज़ीम फ़रमा रहे हैं ?"

सीधी-सच्ची बात हसन ने कह दी, "जब तुम यहाँ आये तब तुम्हारे दिल में शाही रौब भरा हुआ था और तुम मेरा इम्तिहान लेने आये थे और अब यहाँ से अदब का खयाल लेकर जा रहे हो और फ़क़ीरी का नूर तुम्हारे चेहरे पर चमक रहा है। यही वजह है कि आते वक्त मैंने तुम्हारी ताज़ीम नहीं की और अब तुम्हारी ताज़ीम कर रहा हूँ।"

मन्सूर ने ठीक ही कहा था कि अपनी हक़ीक़त हम खुद ही ख़ूब जानते हैं। नीचे की घटना से पता चलता है कि बड़े बड़े चमत्कारी पुरुष भी खिलौने ही होते हैं किसी के हाथ में। कोई खेल करनेवाला चुपचाप अपना खेल करता है और इसका श्रेय किसी के मत्थे मढ़कर ग़ायब हो जाता है।

हसन ने एक रात लोगों से कहा कि उस बियाबान (जंगल) में डाकू एक क़ाफ़ले को लूट रहे हैं। और बहुतों को जख्मी किया है और यह बात दरियाफ़्त करने पर सच निकली। मगर हैरत यह कि उसी रात में डाकू उनके प्यारे बेटे का सर काटकर दरवाज़े पर रखकर चले गए और इसका उन्हें कुछ पता न चला। सुबह उठकर बीबी ने जब देखा तो चीख कर रो उठी और बोली, "वह भी क्या आदमी जो दूर की बात जाने और घर का पता नहीं।"

एक बड़ी ही अच्छी और याद रखने योग्य घटना का उल्लेख उनके जीवन में आता है। हसन दो भाई थे और उन्होंने अपना काम इस तरह बाँट रखा था कि बारी-बारी से एक भाई रात को इबादत (उपासना) करता और दूसरा बीमार माँ की खिदमत। हसन के भाई की बारी माँ की खिदमत करने की थी मगर उसने हसन से कहा, "आज आप खिदमत कर और मैं इबादत करूँगा।" हसन राज़ी हो गए। हसन माँ की ख़िदमत में लग गए और भाई इबादत-खाने में चला गया।

इबादत शुरू करते ही हसन के भाई को एक आवाज़ सुनाई दी। जगत को बहुत ही ऊँची, अच्छी और आवश्यक शिक्षा देने के विचार से किसी ने कहा, "हमने तेरे भाई को बख्श (मोक्ष) दिया और उसके तुफ़ैल में (द्वारा) तुझे भी बख्शा।" भाई को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह तो ख़िदमत (सेवा) से इबादत को अच्छा समझता था तभी तो काम की बदली की थी। बोला, "या अल्लाह, मैं तेरी इबादत में हूँ; चाहिए तो यह था कि वह मेरे तुफ़ैल में बख्शा जाता।" आवाज़ आई, "तू हमारी इबादत करता है और हमें इसकी ज़रूरत नहीं। वह माँ की ख़िदमत में है जिसकी वह मोहताज (ज़रूरतमंद) है।"

हसन की रियाज़त (तपस्या-उपासना) का ज़िक्र इस तरह आया है। चालीस साल तक उन्होंने तकिये पर सर न रखा, अर्थात् सोये नहीं और अशा के वुज़ू से फ़जर की नमाज़ अदा करते रहे। इतनी मुद्दत के बाद एक दिन उन्होंने तकिया माँगा तो शिष्यों को आश्चर्य हुआ। बोले, "आज मुझे अल्लाह की बेनियाज़ी (निस्पृहता) और रहमत का दीदार हुआ है। तीस साल से सिवा अल्लाह के कोई ख़तरा मेरे दिल में नहीं गुज़रा।"

एक बार सात रोज़ तक हसन अपने शिष्यों के साथ बिना कुछ खाये

भूखे बैठे रहे। सात दिन के बाद एक आदमी आया और उसने दरवाज़े पर आवाज़ दी कि सूफ़ियों के लिए मैं खाने का सामान लाया हूँ। हसन बोले, "मैं तो सूफ़ी होने की लियाक़त अपने में देखता नहीं, तुममें से जो सूफ़ी हो जाकर सामान ले ले।" किसी में इतनी हिम्मत न हुई कि सूफ़ी होने का दावा करे। कोई सामान न लाया। सब भूखे बैठे रहे।

कहाँ तो उनकी यह विनम्रता और कहाँ उनका जलाली (तेजस्वी) रूप, जो एक पहुँचे हुए किन्तु अहंमन्य सूफ़ी की आकस्मिक भेंट पर प्रकट हुआ। कहते हैं, हवा के रास्ते एक सूफ़ी हसन के सामने आया और ज़मीन पर पैर पटक कर कहने लगा, "मैं जुनैद-ए-वक्त हूँ, मैं शिब्लि-ए-वक़्त हूँ।" उसकी बात सुनकर हसन भी ज़मीन पर पैर मारकर बोले, "मैं ख़ुदा-ए-वक्त हूँ, मैं मुस्तफ़ा[1]-ए-वक्त हूँ।"

ग्रन्थकार अत्तार मानते हैं कि ख़ुदा ही हसन की ज़ुबान से बोला। एक रात को हसन नमाज़ पढ़ रहे थे कि एक ग़ैबी आवाज़ सुनी, "ऐ अबुल हसन, क्या तू चाहता है कि जो कुछ हम तेरी निस्बत जानते हैं दुनिया पर ज़ाहिर कर दें ताकि वह तुझे संगसार[2] करे?" हसन ने जवाब दिया, "ऐ अल्लाह, क्या तू चाहता है कि जो कुछ मैं तेरी रहमत (दयालुता) के बारे में जानता हूँ और तेरे करम से देखता हूँ, ख़ल्क पर आशकारा (प्रकट) कर दूँ ताकि वह तेरी परस्तिश (पूजा) तर्क (त्याग) कर दे।" तब आवाज़ आई, "ऐ हसन, न हम कहें न तू कह।"

अबुल हसन प्रार्थना में कहा करते थे कि, "ऐ अल्लाह, मुझे अपनी इबादत और ज़ुहद (पवित्र—पर्हेज़गार) और इल्म और तसव्वुफ़ (आध्यात्मिकता) पर भरोसा नहीं है इसलिए न मैं अपने को आबिद (तपस्वी) समझता हूँ, न ज़ाहिद (संयमी) तसव्वुर करता हूँ, न आलिम ख़याल करता हूँ, न सूफ़ी जानता हूँ। ऐ अल्लाह, तू यक़ता (अद्वितीय) है और मैं तुझ जैसे यक़ता की मख़लूक़ में से एक नाचीज़ शय (महत्वहीन-वस्तु) हूँ।" कहते, "जो अल्लाह के सामने पहाड़ की तरह बेहिस (चेतना-शून्य) खड़ा नहीं हो सकता वह मर्द नहीं, बल्कि मर्द वह है जो अपने को नेस्त (मिटाकर) करके उसकी हस्ती (सत्ता) को याद करता है।"

कहते, जो साहिबे-करामत (चमत्कारी) होना चाहते हैं, वे एक दिन खाना खाकर तीन दिन भूखे रहें। फिर खाना खाकर चौदह दिन तक न खाएँ, फिर खाना खाकर तीस दिन तक फ़ाक़ाकशी (निराहार) की

---

१. हज़रत मुहम्मद साहब का ख़िताब।
२. पत्थरों से मार डालना।

तकलीफ़ बर्दाश्त करें। फिर खाना खाकर चालीस दिन तक बिन खाए रहें। फिर खाना खाकर चार महीने का फ़ाक़ा करें। फिर खाना खाकर पूरा एक साल फ़ाक़े पर गुज़ार दें। जब एक साल के फ़ाक़े बर्दाश्त करने लगेंगे, उस वक्त एक चीज़ ज़ाहिर होगी, और उसके मुंह में साँप जैसी चीज़ होगी, जो मुंह में दी जायगी और फिर कभी खाने की इच्छा न होगी।

बोले, जिन दिनों में इस फ़ाक़ाकशी की रियाज़त (अभ्यास) करता था और भूख की गरमी से मेरा पेट सूख गया था, उस वक्त वह सांप ज़ाहिर हुआ। मैंने कहा, "ऐ अल्लाह, मैं वास्ते और ज़रीआ से हरगिज़ किसी चीज़ का तालिब (इच्छुक) नहीं; पर जो कुछ देना चाहे वह बिला वास्ता, बिना किसी ज़रीआ के सीधे अपनी ओर से दे।" तब एक तरह की मिठास मेरे मेदे में ख़ुद ही पैदा हो गई जो मुश्क (कस्तूरी) से भी ज्यादा ख़ुशबूदार और शहद से भी ज़्यादा शीरीं (मीठी) थी। पर वह राज़ (रहस्य) मेरे हलक़ (कंठ) से ज़ाहिर न हुआ।"

फिर नदाए ग़ैबी (आकाश वाणी) आई कि अबुल हसन हम तेरे लिए खाली मेदे से खाना लायंगे और प्यासे जिगर से पानी देंगे। और अगर उनका हुक्म न हुआ होता तो मैं ऐसी जगह से खाना खाता और पानी पीता कि किसी तरह दुनिया को उसका हाल मालूम न होता।

हसन की जीवनी सबसे अधिक लम्बी है और उनके उपदेश भी बहुत हैं। इसलिए उनमें से कुछ का सारांश ही यहाँ दिया जा सकता है। अपने सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ अभिव्यक्त किया है उससे उनकी निर्भीक-ऊंची उड़ानों का आनन्दमय आभास मिलता है। उदाहरणार्थ, एक जगह कहते हैं कि उल्माए नेशापुर के सामने एक बात कह दूं तो सब वाज़ कहना छोड़ दें, मिम्बर पर न चढ़ें।

उन्होंने कहा है कि जब तक मैं सिवा अल्लाह के दूसरों को भी देखता रहा हर्गिज़ मैंने अपने अमल (कर्तृत्व) में इख़्लास (निश्छलता) नहीं पाया। लेकिन जब मैंने ख़ल्क़ को तर्क (त्याग) करके सिर्फ अल्लाह की ओर देखना शुरू किया तो मेरे अमल में इख़्लास बग़ैर मेरी कोशिश के पैदा हो गया।

उनका कहना था कि दिन-रात में चौबीस घड़ियां होती हैं और वह मेरे नज़दीक एक दम के बराबर है और यह दम जो चौबीस घड़ियों के बराबर होता है, वह रोज़ है। जब मैं हक़ (सत्य) के साथ होता हूँ, मेरा संबंध ख़ल्क़ के साथ नहीं होता। अल्लाह ने मुझे ऐसी हिम्मत अता की है कि अगर मैं एक कदम अपनी हिम्मत से रखूं तो उस मुकाम (स्थान) पर पहुँचूं जहाँ फ़रिश्तों की भी गुज़र नहीं।

बोले—हर सुबह को आलिमं (ज्ञानी) इल्म (ज्ञान) की, ज़ाहिद (त्यागी संत) ज़ुहद (संयम) की ज़्यादती (अधिकता) अल्लाह से तलब (माँग) करते हैं लेकिन मैं हर सुबह ऐसी बात तलब करता हूँ जिससे किसी मुसलमान (ईमानदार) भाई को खुशी और मुसरंत (सुख-चैन) हासिल हो। उन्होंने यह आवाज़ सुनी, "ऐ अबुल हसन, मेरे हुक्म को मान कि मैं वह ज़िन्दा हूँ कि जिसे कभी मौत नहीं और अगर तू मेरे हुक्म को मानेगा तो मैं तुझे वह हयात (जीवन) दूंगा जिसको कभी मौत न हो।"

बोले, "अल्लाह की तरफ जाने के रास्ते बहुत हैं, जितनी मखलूक़ अल्लाह ने पैदा की है बस समझो उतने ही रास्ते हैं। हर मखलूक अपनी कुव्वत और कुदरत की हद तक उसकी तरफ जाता है और मैं हर रास्ते से गया लेकिन किसी रास्ते को मैंने खाली न पाया बल्कि हर रास्ते में एक मखलूक को चलते देखा। मैंने दुआ की कि मुझे वह रास्ता बता जिसमें सिवा तेरे और मेरे दूसरे की गुज़र न हो। ग़म और अन्दोह (कष्ट—शोक) का रास्ता बताया कि जहाँ कोई जा नहीं पाता।

ग़म और अन्दोह में शुक्र करने वाला अल्लाह का क़ुर्ब (समीपता) बनिस्वत (अपेक्षाकृत) औरों के बहुत जल्द हासिल कर सकता है। बोले, "मुझे तन्हाई (एकांत) से आफियत (सुख चैन) और खामोशी (मौन) से सलामती (सुरक्षा) हासिल हुई। अल्लाह के नज़दीक मर्द वह है जिसे खल्क नामर्द खयाल करता हो और जो शख्स खल्क के नज़दीक मर्द है अल्लाह के नज़दीक नामर्द है। जन्नत और दोज़ख न हो तो पता चले कि अल्लाह के प्यारे कितने हैं।"

अल्लाह के साथ हर अमर में रास्ती अख्तियार (सच्चाई धारण करना) करना जवांमर्दी है। बोले—जिसने हर आलम में मुझे ज़िंदा देखा वह बायज़ीद थे। दूसरी जगह कहा—जहां बायज़ीद का अंदेशा यानी चिंतन पहुँचा है वहाँ मेरा कदम पहुँचा है। बोले—मेरे पास मल्कुल मौत (यमदूत) को न भेजना, मैं अपनी जान उसे न दूंगा जान मैंने उससे नहीं तुझसे पाई है। तेरी दी हुई जान मैं और किसी को नहीं दे सकता।

बोले—मैंने तमाम पीरों की खिदमत की लेकिन किसी को अपना उस्ताद नहीं बनाया क्योंकि मेरा उस्ताद अल्लाहताला है। जो शख्स दुनिया का तालिब होता है दुनिया उस पर हाकिम होती है। फ़क़ीर वह है जो दुनिया और आखिरत (परलोक) सें सरोकार न रखे। जो नफ़्स (प्राण) बन्दे से निकल कर अल्लाह तक जाता है वह नफ़्स आसायिश (समृद्धि) देता है। जिस क़ौम में से खुदा किसी को सरफ़राज़

(वलिदान) करता है उसके तुफ़ल में अल्लाह तमाम क़ौम को वख्श देता है।

बोले—सूफ़ी मिस्ल उनके होता है मगर सूफ़ी को आफ़ताव की ज़रूरत नहीं होती इसलिए कि अल्लाह खुद चाँद-सितारों से ज़्यादा रोशन और खुद उसने सूफ़ी को आफ़ताव की तरह रोशन वनाया है। और कहा—जिसे अल्लाह राह दिखाना चाहता है उस पर राह की दराज़ी (दूरी) कोताह (कम) कर देता है। अल्लाह के दोस्तों का खाना और पीना अल्लाह का ज़िक्र है। अल्लाह औलियों (त्यागी संतों) के दिल को नूर की बीनाई (दृष्टि) देता है और होते-होते वह खुद ही उनकी बीनाई बन जाता है।

बोले—बन्दे से अल्लाह तक हज़ार मंज़िलें हैं। इन मंजिलों में अव्वल मंज़िल करामत है। जो वन्दे कम हिम्मत होते हैं वह वहीं रह जाते हैं आगे बढ़ नहीं पाते। आ के मुक़ामात (स्थानों) से महरूम (वंचित) रह जाते हैं। कहा कि आलमे ग़ैब (अदृश्य लोक) से ज़र्रे के वरावर इश्क़ आया और तमाम प्रमियों के सीने को सूंघा, किसी शख्स को मह्रम (मर्मज्ञ) नहीं पाया और वापिस चला गया।

कहा—हर सैकड़े में एक कामिल पैदा होता है। अल्लाह के ऐसे वन्दे भी हैं जिनके सीने के गोश में इतनी वसअत (विस्तार) है कि उसके सामने ज़मीन-आस्मान की वसअत भी वेक़द्र है। जिसे सिवा अल्लाह के दूसरे की मुहव्वत है वह कितनी ही इवादत करे, क़वूल नहीं होती। और कहा—चालीस साल से तुम मुझमें और मेरे दिल में जुदाई है। तीन चीजें मुश्किल हैं; हिफ़ाज़त अल्लाह के भेद की, हिफ़ाज़त ज़ुवान की वदी (वुराई) से और हिफाज़त पाकीज़ा (पवित्र) अमल (कर्म) की।

कहा—वन्दे और अल्लाह के दरम्यान नफ़्स से ज़्यादा कोई हिजाव (पर्दा) नहीं। सभी अच्छे लोग उसके (नफ़्स के) शाकी (शिकायत करने वाला) रहे हैं हालांकि खुद रसूल ने अल्लाह से उसकी शिकायत की है। कहा—शैतान दीन को इस क़द्र खराब नहीं कर सकता जैसा आलिमो हरीस (ज्ञानी किंतु लोभी) ज़ाहिदे वेअमल (अकर्मण्य त्यागी) ख़राव करता है। कहा—सवसे वड़ा काम अल्लाह का ज़िक्र है। कहा—मोमिन की ज़ियारत (दर्शन) का सवाव (पुण्य) हज़ार हज से और हज़ार दीनार का दान देने से भी ज्यादा है।

बोले—जव तक अल्लाह तुझे ढूंढ़ने की तौफ़ीक (सामर्थ्य—शक्ति) न दे तू उसे न ढूंढ़; क्योंकि जिसको वह तौफ़ीक़ नहीं देता वह तमाम जिन्दगी ढूंढ़ा करे, कभी नहीं पाता। जो वन्दे अपनी इज्ज़त अल्लाह की राह से मिटा देते हैं वह अल्लाह की इज्ज़त से और भी अज़ीज़ होते हैं। कोई

अल्लाह को दिल के नूर से, दोस्त यक़ीन के नूर से और जवाँमर्द मानी (अर्थ) के नूर से देखते हैं। कहा—जहाँ मैं अपने को न देखा, वहाँ अल्लाह को देखा।

हर वक्त और हर मुक़ाम पर इस तरह अल्लाह को मौजूद जान कि तेरी खुदी बाकी न रहे और जबतक तेरी खुदी बाकी रहेगी, हर्गिज़ तुझे उसकी हस्ती मालूम न होगी। अमल वही अच्छा है जो तेरे पर्दे में कोई और करे। आबिदों की इबादत तीन किस्म की हैं—ताअते तन, (धर्मोपासना), ताअतेजुबां (रागोपासना), ताअते फ़िक्र (मनोपासना)। मार्फ़ते इलाही ज़ाहिरी (दिखावे की) इबादत या लिबास से हासिल नहीं होती जो ऐसा दावा करता है, वह झूठा है।

एक बार अल्लाह को याद करना हज़ार तलवार मुंह पर खाने से ज्यादा सख्त है। दीदार (दर्शन) उसका नाम है कि सिवा खुदा के किसी को न देखे। कम हँसो, ज्यादा रोया करो और कम सोया करो। जब तू अपनी हस्ती अल्लाह को देकर फ़ानी होता है तो अल्लाह तुझे अपनी हस्ती से ऐसी हस्ती अता करता है जिसकी फ़ना (क्षय) नहीं। अपने अल्लाह का दोस्त बन ताकि क़यामत में तुझे खुशी हो मिस्ल उस मुसाफ़िर के, जो मंज़िल पर पहुंच कर अपने दोस्त को देखता है।

जिस दम में बन्दा अल्लाह से शाद (आनंदित) हो, बरसों के रोज़े-नमाज़ से कहीं ज़्यादा अच्छा है। जो मोमिन किसी को हानि नहीं पहुँचाता वह गोया उतनी देर रसूल की संगत में रहा और जिस दिन वह कष्ट पहुँचाता हैं उस दिन की उसकी पूजा को अल्लाह स्वीकार नहीं करता। सच्चे मोमिन को खुदा पाक दिल और सच्ची ज़ुबान देता है। सूफ़ी वह नहीं जो टाट पहनता है और जौ खाता है क्योंकि तब तो ऊनवाले और जौ खाने वाले जानवर सूफ़ी होते। सूफ़ी वह है, जिसके दिल में सच्चाई और अमल में इख़्लास है।

चालीस साल से बैंगन खाने और एक घूंट ठंडा पानी पीने की उनकी इच्छा थी। मगर न यह खाया न वह पिया। एक बार अपनी मां के ज़ोर देने पर बैंगन खा लिया और यह वही दिन था कि जिस रात को उनके लड़के का सिर काट कर कोई उनके दरवाज़े पर रख गया था। जब सुना तो बुलन्द आवाज़ से कहा—बेशक वह हांड़ी कि हमने चढ़ाई उसमें इससे कमतर चीज़ न चढ़नी चाहिये।[१] फिर मां से कहा—देखो, मैंने पहले ही

---

१. उनके कथन का आशय यह है कि खुदा की अवज्ञा करके जो हांड़ी चढ़ाकर बैंगन खाया, उसके बदले लड़के का सिर कटने से कम जुर्माना क्या हो सकता था!

कहा था कि मेरा मामला उसके साथ ऐसा आसान नहीं मगर तुमने ज़िद करके बैंगन खिला ही दिया।

लगता है, यह बैंगन की नाफ़र्मानी ही उनके लिए हिज़ाब (पर्दा) बन गई। क्योंकि हसन की बीवी ने जब कहा कि 'दूर की बात तो जाने और घर का जिसे पता न हो, ऐसे आदमी को मैं वली नहीं मानती' तो उन्होंने समझाया कि जंगल की घटना के वक़्त अल्लाह ने मेरा हिज़ाब उठा लिया था और पुत्र की हत्या के वक़्त मैं हिज़ाब में था। इससे बीवी की शांति न हुई और उसने अपनी एक लट काटकर पुत्र के सर पर डाल दी। तब हसन ने अपनी दाढ़ी के कुछ बाल सिर पर डाल कर कहा, "यह बीज हमने और तुमने मिलकर बोया था, अब हम बराबर हुए।"

उनकी बहुत-सी सूक्तियाँ उनकी आध्यात्मिक उच्चता का दिग्दर्शन कराने वाली हैं। उन्होंने अपनी मौत के बाद भी अपने मित्र मुहम्मद बिन हसैन को उनकी जानकनी (प्राण निकलने) के समय सहायता दी। उनके मित्र मरणासन्न अवस्था में अचानक उठ खड़े हुए और अदब से कहा—"सलामालेकुम !" लड़के ने पूछा, "आप किसको देखते हैं ?" मुहम्मद-बिन-हुसैन बोले, "मैं अबुल हसन को देखता हूँ। उनके साथ बहुत से बुज़ुर्ग हैं और मुझसे कह रहे हैं मौत से न डरो। मौत के वक्त आने का जो वादा उन्होंने अपनी ज़िन्दगी में किया था, वह पूरा किया।"

एक व्यक्ति ने आकर कहा कि मैं हदीस पढ़ने ईराक जा रहा हूँ। अबुल हसन ने कहा, "क्या यहाँ हदीस पढ़ाने वाला कोई नहीं, जो ईराक जाते हो ?" वह बोला, "यहां हदीस जाननेवाला कोई नहीं है और वहां कोई मशहूर हदीस जाननेवाले हैं।" हसन ने कहा, "एक तो मैं ही हूँ, अगरचे मैं बेपढ़ा हूँ। मगर अल्लाह ने सब इल्म मुझ पर ज़ाहिर कर दिये हैं और हदीस तो मैंने खुद रसूल से पढ़ी है।"

उसको हसन की बात का विश्वास न हुआ। रात को उसने स्वप्न में देखा कि रसूल कह रहे हैं कि जवाँमर्द सच्ची ही बात कहते हैं। सुबह को वह उनके पास आया और हदीस पढ़ना शरू किया। पढ़ाते-पढ़ाते हसन कभी-कभी कह बैठते कि यह हदीस रसूल ने नहीं फ़र्मा ई है। वह पूछता, "आपको यह कैसे मालूम हुआ ?" कहते, "जब तुम पढ़ते हो तो मैं रसूल को देखता हूँ। सही हदीस पर वह खुश होते हैं और जो सही नहीं होती उस पर उनके चेहरे पर शिकन (सिलवट) पड़ जाती हैं।"

हसन और अबु सईद ने एक दिन अपने खिरके बदले। उनकी हालत बदल कर एक दूसरे की-सी हो गई। हसन तो नारे लगाते रहे और अबुल सईद रात भर रोते रहे। सुबह अबु सईद ने खिरका वापिस मांगा। बोले,

"मैं इतना ग़म बरदाश्त नहीं कर सकता।" हसन ने खिरका देते हुए कहा, "ऐ अबु सईद, तुम मैदाने क़यामत (प्रलयकाल) में न आना जबतक मैं आकर क़यामत का शोर बन्द न कर दूं। क्योंकि तुम उसे बर्दाश्त न कर सकोगे।"

अबुल हसन के जीवन की एक और घटना का उल्लेख कर देना ठीक होगा। उनकी बीवी मालूम देता है बहुत तेज़ मिज़ाज थीं। शेख अबुल अली सीना जब उनके दर्शनों को आये और पूछा कि शेख अबुल हसन कहाँ हैं तो बीवी ने बहुत झुंझलाकर कहा, "तू ऐसे ज़िन्दीक़ और बुरे आदमी को शेख कहता है? मैं शेख को नहीं जानती। हाँ, मेरा शौहर लकड़ियां लेने जंगल में गया है।" हज़रत सीना जंगल में गये तो देखा कि शेर पर लकड़ियों का बोझ रखे चले आ रहे हैं। बोले, "यह क्या माज़रा है? बीवी तो यह कहती है और आप ऐसे हैं!"

सारी दास्तान सुनकर अबुल हसन ने कहा, "अगर मैं अपनी बीवी की तुनक-मिज़ाजी का बोझ न खींचूं तो यह खूंख्वार शेर मेरा बोझ क्यों ढोने लगा!" फिर उनको मकान पर लाकर देर तक बातें कीं। इसके बाद बोले, "अब मुझे मोहलत दीजिए क्योंकि दीवार बनानी है और मिट्टी भिगो चुका हूँ।" वह दीवार पर जाकर बैठे ही थे कि बसूली हाथ से छूट कर गिर गई। सईद ने चाहा कि उठा कर दे मगर वह उठे इससे पहले ही बसूली खुद-ब-खुद उठकर हसन के हाथ में जा पहुँची।

कहा, "बाज़ ऐसे हैं कि ७० साल में हक़ीक़त से वाकिफ़ होते हैं और बाज़ ऐसे हैं जो अपने फ़ज़ल से दम भर में तमाम इसरार से वाक़िफ़ होकर दुनिया से बेखबर हो जाते हैं। कुछ लोग काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करते हैं मगर जवाँमर्द वह है कि जो अल्लाह की एगानगी में तवाफ़ करे। बोले, "मुसलमान नमाज़ पढ़ते हैं और रोज़े रखते हैं मगर मर्द वह है जो साठ साल तक इस तरह रहे कि फरिश्ते कुछ न लिखें और इस दर्जे तक पहुँचने पर भी अल्लाह से शर्माए और उसके सामने आजिज़ी करे।'

बोले—ऐसे भी बन्दे हैं कि जो अन्धेरी रात में लिहाफ़ ओढ़कर लेटते हैं तो आसमान के चांद और सितारों की रफ़्तार उन्हें दिखाई देती है। दुनिया की नेकी और बदी, रोज़ी का उतरना और फरिश्तों का आना-जाना वग़ैरा सब उन्हें मालूम रहता है। कहा—थोड़ी ताज़ीम (शिष्टता) बहुत इल्म, बहुत इबादत, और बहुत जुहद से अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है। राहे तलब में कदम रखने वाला बिना अल्लाह की मदद के कामयाब नहीं हो सकता। (संगत उसकी करनी चाहिये जो दोस्त हो और ईश्वर से बड़ा कोई दोस्त नहीं।)

मोमिन के लिए हर मख़लूक़ एक हिजाब और दाम (फंदा) है। मालूम नहीं मोमिन किस हिजाब और दाम में रह जाय। हन्तहाई मर्तबा, जो अल्लाह बन्दों को देता है, तीन हैं (१) दीदार से मुशर्रफ़ (सम्मानित) होकर अल्लाह कहे, (२) बेख़ुदी में अल्लाह कहे, (३) बन्दा अल्लाह से अल्लाह को अल्लाह कहे। अल्लाह को जानकर नफ्स की आफ़त (कष्ट) और शैतान के फ़रेब से बेख़बर न हो, और जब तक शैतान के फ़रेब हैं, अल्लाह चुप है, और जब शैतान हार जाता है, अल्लाह करामत (चमत्कार) और उन्स (स्नेह) में डालता है मगर जवाँमर्द वह है जो किसी पर नहीं रीझे।

बोले—न मेरे दिल है न ज़ुबान, न जिस्म, और इन तीनों के ऐवज़ अल्लाह ही अल्लाह है। आशिक़ ख़ुदा को पाता है। और उसको पाने वाला सब कुछ भूलकर ख़ुद भी गुम हो जाता है। कुछ लोग कुरान की तफ़्सीर (भाष्य) में मशग़ूल होते हैं। मगर जवाँमर्द अपनी तफ़सीर में मशग़ूल रहते हैं। किसी ने पूछा, "मक्र क्या है?" बोले, "मक्र अल्लाह का लुत्फ़ है लेकिन अल्लाह अपने वलियों के साथ मक्र (छल) नहीं करता।" पूछा, "मौत का ख़ौफ़ है?" बोले, "मुर्दे को मौत से ख़ौफ़ नहीं होता।"

बोले—जहाँ तक हो सके मेहमानदारी में ख़र्च करो। क्योंकि मेहमान को तमाम आलम की ने'मतों का एक निवाला बनाकर भी खिला दो तो भी मेहमानदारी का हक़ अदा नहीं हो सकता। अल्लाह को स्वप्न में देखा तो कहा, "मैं साठ साल से तेरी मुहब्बत में मशग़ूल हूँ।" जवाब मिला, "तुम साठ साल के ही हो। मगर हम अबद (अनादि काल) से तुझको दोस्त रखते हैं।" बोले—एक बार मैंने इबादत की कि मुझे मेरी हालत दिखला दो। देखा तो टाट पहने हैं। पूछा—क्या यही? कहा—हां। पूछा—मेरी वह मुहब्बत और शौक़ कहां? जवाब आया—वह! वह तो हमारा है!

स्वप्न में अल्लाह ने पूछा—ऐ अबुल हसन, क्या तू चाहता है कि मैं तेरा हो जाऊँ। हसन ने कहा—नहीं। फिर पूछा—क्या तू चाहता है कि तू मेरा हो जाय? कहा—नहीं। अल्लाह ने कहा—जितने भी लोग हैं, सब यही चाहते हैं कि मैं उनका हो जाऊँ। फिर तेरी यह तमन्ना क्यों नहीं? स्वप्न में ही हसन माक़ूल मगर निहायत दिलेराना जवाब दे गए। बोले—ऐ अल्लाह, जो अख़्त्यार (अधिकार) तू मुझे देना चाहता है, वह तेरा फ़रेब है। क्योंकि तू दूसरे की मर्ज़ी के काम नहीं करता।

किसी ने पूछा—बन्दग़ी किसे कहते हैं? बोले—अपनी उम्र को नामुरादी (निराशा) में बसर करने का नाम बन्दग़ी है। पूछा—बेदारी कैसे हासिल हो? बोले—तमाम उम्र को एक सांस से ज़्यादा तसव्वुर

(कल्पना) न करे। पूछा—फ़ुक्र (साधुता) का क्या निशान है? बोले, दिल का ऐसा रंग जाना कि उसपर कोई रंग अपना असर न जमा सके। और कहा—तवक्क़ुल (ईश्वर-इच्छा) इसका नाम है कि शेर, सांप, दरिया और आग सब तेरे लिए एक से हो जायं क्योंकि आलमे-तौहीद (ईश्वर को एक मानना) में सब एक ही हैं। और कहा, मैं तमाम दिन अल्लाह से इशारे करता हूँ और उसके सिवा और कोई खयाल दिल में आन नहीं देता।

मौत के वक़्त कहा—अच्छा होता कि मेरा दिल चीर कर खल्क़ को दिखाते तो मालूम होता कि अल्लाह के साथ ख़ुदपरस्ती अच्छी नहीं। किसी ने इन्हें स्वप्न में देखा तो पूछा—आपके साथ क्या सलक़ किया? जवाब दिया—अल्लाह ने मेरा ऐमालनामा हाथ में दिया तो मैंने कहा, "तू मुझे इसमें मशग़ूल करना चाहता है हालांकि मुझसे जो काम हुए उससे पहले ही तू जानता था कि मुझसे क्या काम सरज़द (घटित) होंगे। यह फरिश्तों को दे कि वह पढ़ा करें और मुझे छुट्टी दे कि सदा तुझ से ही बातें करूँ।"

: ९ :

शिबली

आस्मान के रास्ते एक सूफ़ी आकर अबुल हसन के सामने ज़मीन पर पैर पटककर कहता है, "मैं जुनैद-ए-वक़्त हूँ, मैं शिबली-ए-वक़्त हूं"। ऐसा चमत्कारी सूफ़ी जिसका नाम लेकर उसकी तरह होने का दावा करे उसे कम-से-कम असाधारण सन्त तो मानना ही होगा। शिबली असाधारण तो थे ही पर जीवनी-लेखक अत्तार ने उन्हें मन्सूर की-सी विचारधारा-वाला कहकर उनकी असाधारण श्रेष्ठता को कुछ और भी अधिक आकर्षक बना दिया है।

मन्सूर की शानदार जीवनी पढ़ते हुए एक खयाल आया कि करनेवाला कोई और नहीं वही एक है, और वही, जिसे संसार में ऊँचा उठाना चाहता है, जिसके द्वारा दूसरों को प्रेरणा देने की उसकी इच्छा होती है, जिसके नाम

को यशस्वी बनाकर लोगों के हृदय-सिंहासन पर समारूढ़ करके युगों-युगों तक सम्मानित बनाए रखने के लिए उत्सुक होता है; उन्हें ही वह ऐसी परीक्षाओं में समुत्तीर्ण होने के लिए प्रेरित करता है।

शिबली की क़िस्मत में वह न था जो मन्सूर की क़िस्मत में बदा था। वह जेल में तो भेजे गए मगर शहीदों की मौत से बच गए और खुद शिबली ने ही इस बात का इक़रार इस तरह किया है कि मुझे नादान (मूर्ख) समझकर लोगों ने छोड़ दिया मगर मन्सूर को दाना (बुद्धिमान) समझकर सूली दे दी। निश्चय ही, इनके विचार अत्यन्त ऊँचे हैं, सीधे ईश्वर तक पहुँचने की उनकी तड़प स्तुत्य है। मगर ज्ञानावेश में उनकी कुछ बातें ऐसी हैं, जो साधारण रूढ़िवादियों को कष्ट दिये बिना नहीं रह सकतीं।

एक बार का ज़िक्र है कि शिबली एक जलता हुआ अंगारा हाथ में लिये बड़ी शान से घूम रहे थे। लोगों ने पूछा, "यह अंगारा हाथ में क्यों ले रखा है?" बोले, "मैं इस अंगारे से खान-ए-क़ाबा को जलाने जाता हूँ।" स्वभावत: ही लोग यह सुनकर स्तम्भित रह गए। क़ाबा—खुदा का घर—मुसलमानों का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर, जहाँ दुनिया भर के लोग बड़ी श्रद्धा से ज़ियारत (तीर्थ) को आयं, उसे एक मुसलमान जलाने की बात कहे—किसी भी मुसलमान के लिए इससे अधिक रोषप्रद बात और क्या होगी?

लेकिन अपने इस विचित्र विचार का जो कारण उन्होंने बताया, उससे किसी भी ज्ञानी-भक्त का हृदय उल्लसित हुए बिना न रहेगा। लोगों के पूछने पर वह बोले, "मैं क़ाबा को इसलिए जला देना चाहता हूँ कि लोग वासिता और ज़रीआ को छोड़कर सीधे खुदा की ओर चलें। क़ाबा के बजाय लोग साहबे-क़ाबा (क़ाबा के स्वामी यानी प्रभु) की ओर मुत्तवज्जह (आकृष्ट) हों।" इसी विचार को लेकर उन्होंने एक दिन ऐसी ही एक बात और भी की—दो जलती हुई लकड़ियां लिये घूम रहे थे।

देखनेवालों ने पूछा, "ये जलती हुई लकड़ियां आप क्यों लिये हुए हैं?" बोले, "मैं इन लकड़ियों से जन्नत (स्वर्ग) और दोज़ख (नरक) दोनों को जला दूंगा, ताकि लोग बिला किसी सबब के अल्लाह की इबादत करें।" बात निहायत माक़ूल थी और अभिव्यक्त भी बड़ी ही नाटकीय शैली में की गई। निष्काम, निर्भय और निर्लोभ भक्ति ही सच्ची भक्ति है मगर अक्सर लोग इबादत की जानिब राग़िब (आकर्षित) होते हैं या तो दोज़ख के डर से या जन्नत के लोभ से और ये दोनों ही विचार ठीक नहीं।

शिबली, कहते हैं, अपने प्रारम्भिक जीवन में निहाबन्द के अमीर थे और उनके मन में संसारी जीवन से विरक्ति खलीफ़ा के दरबार में एक घटना को देखकर अनायास ही उत्पन्न हुई। खलीफ़ा ने सब दरबारी अमीरों

को एक-एक खिलअत[1] अता (भेंट) की। जब लोग जाने लगे तो दैवयोग से एक अमीर को छींक आयी और उसने खलीफ़ा की दी हुई खिलअत की आस्तीन से नाक साफ़ कर ली। खलीफ़ा ने यह देखकर उसे बुलाया, खिलअत छीन ली और उसे गद्दी से उतार दिया।

खलीफ़ा की दी हुई खिलअत पहने शिवली ने यह सब माजरा देखा तो उनकी आत्मा जाग उठी। वह खलीफ़ा के पास जाकर बोले, "तू मखलूक़ है और नहीं पसन्द करता कि कोई तेरी दी हुई खिलअत की बेअदवी (अपमान) करे। तब वह, जो दोनों जहान का मालिक है, कब यह पसन्द करेगा कि उसकी दी हुई दोस्ती और मारिफ़त (परिचय) की खिलअत को मखलूक़ की खिदमत में मैला करूँ जबकि यह ज़ाहिर है कि उसकी खिलअत के सामने तेरी खिलअत की कोई कीमत नहीं।"

यह कहकर उन्होंने खलीफ़ा की दी हुई वह खिअलत खलीफ़ा को वापिस कर दी और घर न जाकर वह सीधे खैर निसाज नामक सन्त की शरण में पहुँचे और कुछ दिन उनकी संगत में रहकर उनसे यथासम्भव लाभ उठाया और फिर निसाज ने ही उन्हें अपने ज़माने के प्रसिद्ध सन्त जुनैद बग़दादी के पास आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने और उन्हीं के यहाँ रहते हुए तपश्चर्या करने भेज दिया।

शिवली जब जुनैद के पास पहुँचे तो कहा, "लोगों ने आपके पास गौहर होने का पता दिया है। यदि वह रुहानी गौहर आप मेरे हाथ बेचना चाहें तो बेच दें और बेचना पसन्द न करें तो यों ही बिना मूल्य के मुझे अता करने की नवाज़िश करें।" जुनैद बोले, "यदि मैं इस मोती को बेचूं तो तुम उसे खरीद नहीं सकते क्योंकि तुममें वह ताक़त नहीं कि उसकी क़ीमत चुका सको। और जो मैं तुम्हें यों ही मुफ्त में दे दूं तो तुम उसका मूल्य न समझ सकोगे क्योंकि जो चीज़ मुफ़्त मिल जाती है हर्गिज उसकी नज़र में उसकी कोई वक़अत (महत्त्व) नहीं होती है।"

जुनैद के कथन का आशय यह था कि जिसके लिए मेहनत करनी पड़े, और लम्बी अवधि तक साधना करने और सुदीर्घ परिश्रम के पश्चात् जो चीज़ प्राप्त होती है, मनुष्य को उसी के मल्य का यथार्थ ज्ञान होता है। इसलिए यदि चाहते हो कि वह मुक्ताफल तुम्हें मिले तो तौहीद (अद्वैतवाद) के समुन्दर में डूबकर फ़नाफ़िल्लाह हो जाओ। ईश्वर सब्र और इन्तज़ार के दरवाजे तुम पर खोल देगा। जब धैर्य और प्रतीक्षा के द्वार को तुम पार

---

१. राज्य की ओर से सम्मानार्थं दिये जानेवाले वस्त्र आदि, जो तीन से कम नहीं होते।

कर लोगे तब वह गौहर हाथ आयगा और तुम अपने अभीष्ट उद्देश्य तक पहुँचोगे।

शिवली ने पूछा, "अव मैं क्या करूँ ?" जुनैद ने इसके उत्तर में जो एक लम्बी, कष्टमयी, अहन्ता को क्षीण करनेवाली साधनाओं की सूची उन्हें वताई उसे पढ़कर उपनिषद् के एक ऋषि का स्मरण हो आता है। उन्होंने अपने शिष्य को भिक्षा लाने का आदेश दिया पर जब वह भिक्षा मांगकर लाता तो सब ले लेते और उसे खाने को कुछ न देते। गौएँ चराने का आदेश दिया पर दूध पीने के लिए मना कर दिया। यहाँ तक कि बछड़े दूध पीते समय जो फेन छोड़ते उसे भूख से व्याकुल हो जब पीने लगा तो उसे भी निषिद्ध कह दिया।

जुनैद ने शिवली को पहले तो एक साल तक गन्धक बेचने का आदेश दिया। फिर कहा, अब तुम एक साल तक दरयूज़ागिरी (भिक्षा-वृत्ति) करो, और इस तरह पर कि किसी चीज़ के साथ मशग़ूल (आसक्ति) न हो। शिवली ने ऐसा ही किया, यहां तक कि बग़दाद के हर मोहल्ले में जाकर उन्होंने दरयूज़ागिरी की, मगर किसी ने उन्हें कुछ न दिया। शिबली ने जुनैद को जब यह हाल सुनाया तो उन्होंने हंसकर कहा कि अब तुम्हें पता चल गया न कि दुनिया की नज़र में तुम्हारी कितनी क़ीमत है ! बेहतर है, तुम खुद उससे अपना दिल न लगाओ।

इसके पश्चात् जुनैद ने शिवली से कहा, "देखो, तुम एक मुद्दत तक निहावन्द के हाकिम रहे हो। बहुतों को तुमसे इज़ा (कष्ट—यंत्रणा) पहुँची होगी। इसलिए बेहतर है तुम वापिस निहावन्द जाओ और एक-एक आदमी से मिलकर उससे अपने कसूर माफ़ कराओ।" शिवली ने वहाँ जाकर हर घर के मर्द-औरत और लड़के से माफ़ी मांगी। मगर एक व्यक्ति उस समय वहाँ था नहीं, उसके बदले में उन्होंने एक लाख दिरम दान में दिये। फिर भी उनके दिल को चैन न पड़ा और वापिस आकर जुनैद की सेवा में उपस्थित हुए।

एक व्यक्ति से क्षमा-याचना न कर सकने के बदले में शिबली ने जो एक लाख दिरम खैरात किये थे, शायद उसी बात को लक्ष्य में रखकरजु नैद ने कहा, "अभी तुम्हारे दिल में शानो-शौक़त की चाट बाकी है। इसलिए तुम एक साल तक भीख मांगो।" शिबली ने आदेशानुसार एक साल तक गदागरी (भीख) की। और गदागरी में उन्हें जो कुछ मिलता वह सब जुनैद को लाकर दे देते। जुनैद उसे दरवेशों में बाँट देते, उन्हें कुछ न देते—भूखा रखते। साल की समाप्ति पर जुनैद ने कहा, "अब तुम्हें मैं अपने पास रखूंगा।"

एक साल तक शिवली जुनैद के पास रहे और वहाँ जो दरवेश (संत-फ़क़ीर) जुनैद से मिलने आते उनकी प्रेमपूर्वक परिचर्या और सेवा-सुश्रूषा का सारा दायित्व, वर्षों से तरह-तरह की कसौटियों पर कसे जानेवाले उनके इसी होनहार शिष्य पर था। अब जुनैद ने पूछा, "कहो शिवली, तुम्हारे नफ़स (अहम्––अस्तित्व) का मर्तबा (दर्जा) अब तुम्हारी नज़रों में कितना है?" शिवली बोले "मैं अपने को तमाम खल्क़ से कम मानता हूँ और कम देखता हूँ।" सन्तोष के स्वर में जुनैद बोले, "शिवली अब तुम्हारा खुदा दोस्त हो गया।"

फ़क़ीरी जीवन और दीवानेपन का कुछ दामन-चोली का साथ है। एक समय था जब शिवली का यह हाल था कि कोई उनके सागने अल्लाह का नाम लेता तो उसका मुंह मीठा कर देते और हमेशा शकर का एक ज़ख़ीरा (जमाव) साथ में रखते। बच्चों को बांटते ताकि वे उनके सामने उल्लास और उत्साह के साथ ईश्वर का नाम उच्चारण करें। अल्लाह का नाम उनके दिल को इतना प्यारा लगता कि कुछ दिनों में उनकी यह हालत हो गई कि जब कोई उनके सामने अल्लाह का नाम लेता तो वह उसे अशर्फी भेंट करते। मगर दौर पल्टा और लोगों ने देखा कि वह नंगी तलवार लिये घूमते और कहते, "जो अल्लाह का नाम लेगा उसका सिर काट लूंगा"।

लोगों ने पूछा, "ऐ हजरत, यह क्या माजरा है? एक वक्त था कि तुम लोगों को शकर बांटते थे, फिर जो अल्लाह का नाम लेता तुम उसे अशर्फी देने लगे; अब तुम नंगी तलवार लिये सिर काटने की बात कहते हो।" शिवली ने जवाब दिया, "तब मैं समझता था कि लोग अल्लाह का नाम मुहब्बत से लेते हैं, हक़ीक़त और मार्फ़त आशना हैं (सचाई और साधन अभिन्नता पर पनपते हैं); लेकिन अब मालूम हुआ कि काहिली और ग़फ़लत से यह लोग उसका नाम लेते हैं सिर्फ इसलिए कि इसका उन्हें रबत हो गया है और मैं इसे बेजा समझता हूँ कि कोई उसका पाक नाम काहिली और ग़फ़लत से ले"।

कहते हैं कि पहले उनका ऐसा अभ्यास था कि जहाँ कहीं अल्लाह का नाम लिखा देखते तो उसे चूमते, उसकी ताज़ीम (सम्मान) करते। एक बार ग़ैबी आवाज़ सुनी, "तू कब तक इस्म यानी नाम के साथ मशगूल (व्यस्त) रहेगा? अगर तलब है तो नामवाले को तलब कर।" यह सुनकर उनके दिल में शौक़ की आग-सी लग गई और इश्के-इलाही के दीवानेपन में आकर दज्ले (बग़दाद के नीचे बहने वाली नदी) में कूद पड़े पर

कोई ऐसी लहर आई कि उसने उन्हें लाकर साहिल (तट) को सौंप दिया।

दज्ले के पानी से वह आग बुझी नहीं और आग को आग से शांत करने के लिए वह जलती आग में कूद पड़े; पर आग ने उनका बाल भी वांका न किया। कहते हैं कि उनका वह दिली जनून (पागलपन) उन्हें जा-वजा (जगह-जगह) लिये-लिये घूमा। कभी वह पहाड़ पर से कूदे कि यह ज़िन्दगी जिसकी है, उसे ही सौंप दे और कभी खूंख्वार दरिन्दों (हिंसक जंतुओं) के पास पहुँचे पर वह हमेशा सही-सलामत ही वापिस आये। भावावेश में वह चीख़ कर कहते, "अफ़सोस है ऐसे शख़्स पर, जिसको न पानी ने डुबोया, न आग ने जलाया, न परिन्दों ने फाड़ा और न पहाड़ ने गिराकर मारा।" अपनी इस दर्दभरी पुकार पर उन्हें जवाब मिला, "मक़तूल-उल-हक़ ला मक़तला ग़ैरे।" ग़ैबीआवाज़ ने शिबली को यथार्थ बात बताई कि जो अल्लाह का मक़तूल—यानी मारा हुआ है, उसे सिवा अल्लाह के दूसरा कोई मार नहीं सकता।

शिबली जब क़ैदखाने में थे तो कुछ लोग उनके पास गये। पूछा, "तुम कौन लोग हो?" लोगों ने जवाब दिया, "हम सब आपके दोस्त हैं।" इस पर शिबली ने पत्थर उठा-उठाकर उनकी तरफ फेंकना शुरू किया और वह सब भाग खड़े हुए। शिबली ने कहा, "तुम लोग कैसे मेरे दोस्त हो कि मेरी बला (आपत्ति) पर सब्र (संतोष) नहीं कर सकते"? उनके इस कथन से बड़ी सुन्दर और मार्मिक ध्वनि निकलती है कि जो लोग ईश्वर के प्रेमी होने का दावा करते हैं वह बड़े झूठे हैं यदि उसकी भेजी हुई मुसीबतों को भी वह प्यार नहीं कर सकते।

लोगों के दिल में अपनी बात उतारने की उनकी शैली मौलिक और मार्मिक प्रतीत होती है। काबा के लिए अंगारा और दोज़ख और जन्नत को जलाने के विचार से दो जलती हुई लकड़ियाँ लेकर निकलना तो अजीब है ही; पर ईद के दिन, जब कि दुनिया भर के मुसलमान खुशी मनाते हैं, सियाह मातमी लिबास पहनकर सड़क पर आकर खड़ा हो जाना भी कुछ कम अजीब नहीं!

पूछने पर कहा, "मैंने खलक़त के मातम में सियाह लिबास पहना। क्योंकि उसका दिल भर गया है और वह अल्लाह से ग़ाफ़िल है।" ईश्वर की प्राप्ति के लिए जो संकेत पीछे आया है उसका उल्लेख शिबली की एक सूक्ति में भी मिलता है। वह कहते हैं, "सूफ़ी उस वक्त होता है कि जब तमाम खलक़त को मिस्ल अपने इयाल (संतान) के समझकर सबका बार-बरदार (भारवाहक—ज़िम्मेदार) हो।" जो अपनी चोट से चमककर उसके

दरबार में पहुँचता है वह दुनिया की चोटों से चुटैल होकर तो तीर की तरह सीधा, विना इधर-उधर देखे, सर्व दुःख-भंजन परम-पिता प्रभु की ओर जायगा।

जब मन में श्रद्धा उतनी तीव्र है नहीं जितनी कि होनी चाहिये तब उसका आह्वान कैसे किया जाय ? इस मार्मिक प्रश्न का उत्तर गुरु-शिष्य के शक्तिपूर्ण और स्मरणीय सम्वाद् से निकलता है। जुनैद एक बार पूछ बैठे, "जब तुम्हें यादे-इलाही (प्रभु-स्मरण) में सिद्क़ (सत्यता) और अहलियत (योग्यता) हासिल नहीं तो क्योंकर उसकी याद करते हो।" शिबली बोले, "मैं मजाज़ (कल्पना) से उसकी इस क़द्र याद कर रहा हूँ कि वह मुझको हक़ीक़त (सचाई) से एक बार याद करता है।" शिबली का कहना था कि जब मैं सच्चे जी से उसे याद नहीं कर सकता तो जैसा कुछ मेरा मन है उसी को लेकर उनकी याद करता हूँ और तब दया करके एक बार वह मुझे हक़ीक़त की नज़र से देखते हैं।

कहा जाता है कि शिबली ने जब तपस्या प्रारम्भ की तो नींद न आये इसलिए वह अपनी आँखों में नमक भर लिया करते थे और लिखनेवालों ने लिखा है कि थोड़ा-थोड़ा कर सात मन नमक उन्होंने अपनी आंखों में भरा। किसी ने यह कहकर मना भी किया कि आप नाबीना (अंधे) हो जायंगे। बोले, "कोई हर्ज नहीं जिसकी तलाश है वे ज़ाहिरी (प्रत्यक्ष) आँखों से पोशीदा (ओझल) है।"

इसी तरह की उनकी एक और आदत थी। साधना के लिए गुफा में प्रवेश करते समय लकड़ियों का गट्ठा भी ले जाते और जब दिल ज़रा भी इधर-उधर होता तो एक लकड़ी निकालकर उससे अपने-आपको मारते। यहाँ तक की वह टूट जाती तो दूसरी निकालकर उससे मारना शुरू करते। ऐसा भी अक्सर होता कि गट्ठे की तमाम लकड़ियाँ टूट जातीं तो अपने हाथ-पैरों को दीवार पर दे-दे मारते। आँखों में नमक भरने के बदले में अल्लाह ने उन पर तजल्ली (तेज—प्रकाश) भेज कर कहा, "जो सोता है वह मुझसे ग़ाफ़िल है और जो ग़ाफ़िल है वह महजब (शर्मिन्दा) है।"

एक बार चिमटी लिये वह उससे अपना गोश्त नोच रहे थे। जुनैद ने पूछा, "यह क्या करते हो ?" बोले, "इसलिए मैंने इस काम को इख़्तियार किया कि शायद इससे मुझे एकदम अमन (चैन) मिले।"

हर गुरु अपने मुरीद (शिष्य) की हालत पर नज़र रखने को जिम्मेदार होता है और जुनैद इसे अच्छी तरह समझते थे। एक बार जुनैद के मुरीदों न शिबली की तारीफ़ करना शुरू की कि सिद्क़ (सचाई) और शौक़ (लगन) और आली-हिम्मत (साहसी) में इनकी मिस्ल (बराबरी)

नहीं। जुनैद ने उन्हें रोककर कहा, "तुम ग़लती पर हो, शिवली मर्दूद (वहिष्कृत) और अल्लाह से दूर है। तुम इसे मजलिस से निकालकर बाहर कर दो। क्योंकि यह इसी लायक है।" गुरु के आदेशानुसार मुरीदों ने वहाँ से हटाकर बाहर कर दिया।

तब जुनैद वोले, "तुम्हारी तारीफ़ उसके हक़ में मिस्ल तलवार के थी कि जो तुमने उस पर खींची थी। अगर ज़रा भी उसका असर उस पर होता तो उसका नफ़्स सरकश (उद्दंड) बन पाता और वह हलाक़ (नाश) हो जाता। तुम्हारी तारीफ़ से तो सौ दर्जे अच्छी मेरी हिजो (तिरस्कार) थी। इसलिए कि मेरी हिजो ने ढाल बनकर उसे हलाक़ होने से बचाया।" किन्तु अपने इस शिष्य को वह कितना ऊँचा मानते थे यह भी देख लेना होगा। शिवली रोया करते थे। जुनैद बोले, "अल्लाह ने अमानत सौंपी, ख़यानत की चाह हुई तो आहोजारी (रोना-धोना) में मुब्तिला किया क्योंकि शिवली दरम्यान ख़ल्क़ ऐन अल्लाह है," अर्थात् शिवली इस सृष्टि में अल्लाह के सदृश हैं।

शिवली आत्म-निरीक्षण में वहुत सजग रहते थे। एक बार उन्होंने अपने नये कपड़े उतारकर आग में जला दिये। लोगों ने कहा, "शरीयत (धर्मशास्त्र) में माल का विला वजह ज़ाया करना जायज़ (उचित) नहीं।" शिवली ने उत्तर दिया कि अल्लाह ने कुरान-शरीफ़ में कहा है कि जिस पर तेरा दिल माइल (आसक्त) है मैं उस चीज़ को तेरे साथ आग में जला दूंगा। और इस वक्त मेरा दिल उन कपड़ों पर माइल हुआ था और अब मुझे इब्रत (संताप) हुई इसलिये मैंने दुनिया में ही इन्हें जला दिया।

अब यहाँ शिवली की कुछ सूक्तियाँ दे देना ठीक होगा। शिवली का कहना है—अल्लाह से उन्स रखनेवाले का मर्तबा (दर्जा) अल्लाह के ज़िक्र (वर्णन) से उन्स रखनेवाले से ज्यादा है। और कहा—उन्स यह है कि वन्दे को अपने से वहशत (त्रास) हो। सादिक़ (सच्चा) वह है जो हराम (त्याज्य) को मुंह में न रखे। हराम को मुंह में न रखे इन शब्दों में चोज़ है। निश्चय ही जो सच्चा है वह हराम चीज़ न तो खायगा ही और न झूठी वात ही ज़ुबान से वोलेगा।

कहा—अल्लाह के साथ कलाम (वाणी) में गुस्ताख़ (अशिष्ट) होना इन्विसात (विनाशकारी) है। लोगों से उन्स करना इफ़्लास (दरिद्रता) की अलामत (निशानी) है। मगर उसी सांस में ये भी कहते हैं कि ख़ल्क़ की मसलहत (भलाई) को अपनी मसलहत से ज्यादा जानना जवांमर्दी है। कलाम दरअसल दिल का कलाम है। कहा—जो सांस बन्दा

अल्लाह के लिए लेता है वह रूए ज़मीन के तमाम आबिदों (भक्तों) की इबादत (भक्ति) से सवाब में ज़्यादा है।

कहा—जिसको अल्लाह की पाकीज़गी (पवित्रता) ने इख़्तियार किया हो वह मर्तबे में उस शख़्स से ज़्यादा है, जिसको उसकी रहमत (दया) और मग़फ़रत अर्थात् क्षमाशीलता ने स्वीकार किया हो। जो शख़्स अल्लाह से दूर होता है, अल्लाह भी उससे दूर होता है। अल्लाह करे तुम लोग ऐसे हो जाओ कि हमेशा उसकी इबादत में सरगर्म रहो और उससे, जो ग़ैर है, दस्तबरदार (त्याग दो) हो जाओ। जो शख़्स अल्लाह की मुहब्बत का मुद्दई हो और सिवा उसके किसी और चीज़ का भी तालिब हो वह हर्गिज़ अल्लाह की मुहब्बत नहीं करता बल्कि सच पूछो तो वह उसके साथ मख़ौल करता है।

एक बाँकपन से भरी हुई बात शिबली ने यह कही कि जब अल्लाह बला पर अज़ाब (पीड़ा का अंत) करना चाहता है तो बला (आपत्ति) को आरिफ़ (भक्त) के दिल में जगह देता है। इसके माने यह हैं कि आरिफ़ के दिल में पहुँचकर बला रह ही नहीं सकती, वह अपनी हस्ती (अस्तित्व) को खो बैठती है। और कहा—आरिफ़ वह है कि कभी अपने जिस्म पर एक मच्छर बैठने की ताब (शक्ति) न रखे और कभी सातों आस्मानों व ज़मीनों को पलक पर उठाले। लोगों ने कहा—कभी आप ऐसा कहते हैं कभी वैसा, यह क्या बात है? बोले—कभी हम बेख़ुद और कभी बाख़ुद रहते हैं।

कहा—ख़ुदा के तलब करने (प्रभु-अभिलाषा) को हिम्मत कहते हैं और अल्लाह के सिवा और किसी को तलब करना हर्गिज़ हिम्मत नहीं। बोले—दरवेशों के चार सौ दर्जे हैं और उनमें सबसे अदना (निम्न) दर्जा यह है कि अगर सारी दुनिया का माल उसको मिल जाय और तमाम अहले दुनिया उस माल को खाए तो भी उसको दूसरे दिन के लिए रोजी रखने की चिन्ता न हो। सिवा ख़ुदा के किसी चीज़ से सन्तुष्ट न होने को फ़ुक्र (आत्मतुष्टि) कहते हैं। जमय्यत कुल्ली को हक़ीक़त कहते हैं और वह फ़रदानियत की सिफ़त है, अर्थात् समष्टि सत्य है और वह व्यष्टि का एक गुण है।

कहा—मज़कूर के मुशाहिदे में (दर्शनाभिलाषियों के समूह) उसका ज़िक्र फ़रामोश (ज्ञान-चर्चा) करना बड़ा ज़िक्र है। अल्लाह की इबादत (उपासना) करना शरीयत (धर्म-शास्त्र) है और उसको तलब करना और दर हक़ीक़त उसको देखना तरीक़त (पुण्य कर्म) है। उनकी एक चोज़ भरी सूक्ति यह है—ज़ुहद ग़फ़लत है। इसलिए कि दुनिया नाचीज़ है

और नाचीज़ में जुहद करना ग़फ़लत है। भाव यह है—दुनिया नाचीज़ है इसलिए उसकी ओर से बेपरवाह होना भी जुहद अर्थात् सच्चा त्याग है। पर जो इस नाचीज़ दुनिया को छोड़ने के लिए प्रयत्न करने बैठते हैं वे अज्ञानी हैं। क्योंकि नाचीज़ को चीज़ मान बैठने की भूल करते हैं और फिर उसे छोड़ने जाते हैं।

मुहम्मद को जब लोग तंग करने लगे तब एक आयत उतरी, "ऐ, मुहम्मद, तू इन लोगों से कह दे कि मैं मक्कारों का मक्कार हूँ।" अल्लाह का यह स्वरूप और भी स्थलों पर ज़ोरदार शब्दों में व्यक्त होता है। एक जगह आया है—नहीं बेखौफ़ होती अल्लाह के मक्र से मगर कौमे-ज़ियाकार, अर्थात् विनाशोन्मुख पापियों के अतिरिक्त ईश्वर की महामहिम माया से कोई भी अपने को निर्भय समझ बैठने की बेवकूफ़ी नहीं करता।

जुनैद से एक रोज़ पेटे बाज़ी हो पड़ी। शिबली को भावावेश से अत्यन्त व्यथित देखकर जुनैद ने कहा, "ऐ शिबली, यदि तुम अपना काम अल्लाह पर छोड़ दो तो तुम्हें राहत मिले।" शिबली ने उत्तर दिया, "राहत मुझे इस तरह नहीं मिल सकती। मुझे तो राहत उस वक्त मिलेगी कि अल्लाह मेरा काम मुझ पर ही छोड़ दे। यह करारा जवाब सुनकर जुनैद बोले, "शिबली की तलवार से लहू टपकता है।"

अन्तिम समय शिबली की हालत अजीब थी। उन्हें शैतान पर ईर्ष्या हो रही थी। अल्लाह ने उस पर लानत (फटकार) भेजी थी न! माना कि वह लानत ही थी पर दी हुई तो अल्लाह की थी। अल्लाह की यह खिलत शैतान ले जाय और शिबली महरूम ही रह जाय, कितने अफसोस की बात है। भला उस अल्लाजलालहु (ईश्वरी-तेज) की खिलत के लायक शैतान कब हो सकता है! लानत की खिलत के लिए लालायित शिबली ने कुछ देर मौन रह कर कहा—इस वक्त दो हवायें चल रही हैं, लुत्फ़ की और क़हर की।

शिबली अपनी अन्तिम रात्रि को बार-बार, देर तक, दो शेरें पढ़ते रहे। जिनका भाव यह है—जिस घर में तेरी सकूनत (अनंतशांति) हो वह घर चिराग़ का मौहताज़ (जरूरत) नहीं। ऐसी अच्छी है तेरी सूरत कि हमारे लिए उसी की बाउम्मीद हुज्जत काफी है, कोई उस दिन के लिए कि जब अपनी-अपनी हुज्जत (विवाद) लेकर लोग आयंगे। उनकी हालत गैर है यह सुनकर लोग नमाज़े जनाज़ा पढ़ने के लिए आने लगे। शिबली ने अपने ही ंग पर एक गहरा ताना मारा। वह बोले—ताज्जुब है कि ज़िंदे की नमाज़े जनाज़ा पढ़ने मुर्दों का गिरोह (दल) आया है।

शिबली की प्रेम-मतवाली रूढ़ि-विद्रोही आत्मा को मृत्यु-शैया पर

संघर्ष करना पड़ा। उन्हें घेरे हुए भक्त लोग कह रहे थे, अब आप कलमा पढ़िये—लाइला इल्लिल्लाह ! इस परम सुप्रसिद्ध मुसलिम मंत्र का अर्थ है "नहीं है कोई और सिवा अल्लाह के।" शिबली ने ठीक ही उत्तर दिया—जब ग़ैर है ही नहीं तो नफ़ी (घटाना) किसकी करूं ? इस आरिफ़ाना जवाब से लोगों को सन्तोष न हुआ। और ज़ोर देकर बोले—शरीयत के मुताविक़ आपको कलमा पढ़ना ही चाहिए। "सुल्ताने मुहव्वत कहता है" शिबली बोले, "मैं रिश्वत क़बूल न करूंगा।"

एक तेज-तर्रार आदमी ने बुलन्द आवाज़ में कहा, "लाइला इल्लिल्लाह" कहिये। शांत स्वर में शिवली ने व्यंग किया—ज़िन्दे को मुर्दा नसीहत करने आया है। जीवित से उनका अभिप्राय है उससे, जो प्रभु-प्रेम में सदा जागृत है और मुर्दा है वह जो ख़ुदा को भूलकर दुनिया को दिल दे बैठा है। थोड़ी देर वाद लोगों ने पूछा—अब आपकी क्या हालत है ? बोले मैं अपने महबूब से वासिल (प्यारे में लीन) हो गया हूँ। यही उस वीर पुंगव, रूढ़ि-विध्वंसी सन्त के अन्तिम शब्द थे, जिन्हें कहकर वह सदा के लिए शान्त हो गए।

स्वप्न में एक सन्त ने शिवली को देखा तो पूछा—मुन्किर और नकीर (दो फरिश्ते) से कैसे छुटकारा पाया ? उत्तर मिला—नकीर ने जब मुझसे पूछा—तेरा रब कौन है ? तव मैंने कहा—मेरा ख़ुदा वही है जिसने आदम को पैदा किया और जिसने तुम्हें और दूसरे तमाम फरिश्तों को उन्हें सिज्दा करने का हुक्म दिया। तुम सब ने जब सिज्दा किया तो मैं आदम की पुश्त में था और तुम सबको देखता था। नकीरैन ने यह सुनकर कहा—इसने तो तमाम औलादे आदम की तरफ़ से जवाब दे दिया और यह कह कर चले गए।

एक और सन्त ने स्वप्न में देखकर पूछा—अल्लाह ने आपके साथ क्या सलूक किया। बोले—बावजूद इस बात के कि मैंने दुनिया में बहुत से दावे किये थे, अल्लाह ने मुझसे कोई बाज़ पुर्स (स्पष्टीकरण) न की। मगर ऐसी एक बात उन्होंने जरूर पकड़ी। मैंने कभी कहा था कि इससे बड़ी विनष्टि और कोई नहीं कि मनुष्य स्वर्ग का अधिकारी न समझा जाकर नरक में भेजा जाय। उन्होंने कहा कि सबसे बड़ी विनष्टि यह है कि भक्त मेरे दर्शन से वंचित होकर आवरणों में रहे।

: १० :

हबीब अजमी

हसन बसरी एक बहुत ही बड़े विद्वान संत हुए हैं। अपने ज़माने के सभी महान संतों से उनका प्रेमल परिचय था। इसीलिए कई संतों की जीवनियों में उनका ज़िक्र आता है। वह ऊँचे दर्जे के विद्वान् ही नहीं बल्कि सिद्ध पुरुष भी थे। हबीब अजमी इन्हीं के शिष्य थे; मगर ऐसे शिष्य कि जिनको पाकर कोई भी गु सात्विक अभिमान कर सकता है। वह तेज-रफ़्तारी में अपने संसार-प्रसिद्ध गुरु को भी बहुत पीछे छोड़ गए। वह कोई खास पढ़े-लिखे तो न थे; मगर जो सीखते उसको अमल में लाना जानते थे।

एक बार का ज़िक्र है कि हसन बसरी कहीं जा रहे थे। दज्ले के किनारे हबीब अजमी ने उन्हें खड़ देखा तो पूछा, "कैसे खड़े हैं?" हसन बोले, "किश्ती पर सवार होकर पार जाना है। इसलिए किश्ती का इंतज़ार कर रहा हूँ।" हबीब ने कहा, "हसद (ईर्षा) और दुनिया की मुहब्बत को दिल से निकाल दीजिए, बलाओं को ग़नीमत समझिए और खुदा पर यक़ीन करके पानी पर पैर रखते हुए चले जाइए।" यह कह कर हबीब खुद पानी पर होकर चले गए। हसन बसरी, कहते हैं, यह माजरा देखकर बेहोश हो गए। जब होश आया तो लोगों ने बेहोश हो जाने का कारण पूछा। बोले, "हबीब ने इल्म मुझ से सीखा और इस वक्त मुझे नसीहत करके खुद पानी पर होकर चले गए।"

उनके दिल को धक्का इस खयाल से और भी लगा कि क़यामत में जब पुल्सरात पर गुज़रने का हुक्म होगा, (अर्थात्, हिन्दू मतानुसार जब वैतरणी नदी पार करने का समय आएगा) तो उस समय भी यदि ऐसा ही बेबस रहा तो क्या होगा। हसन बसरी जब फिर हबीब से मिले तो उन्होंने पूछा, "यह मर्तबा तुमने कहाँ से हासिल किया?" अजमी ने सीधा-सा जवाब दिया, "मैं दिल साफ़ करता रहा और आप काग़ज़ स्याह करते रहे।" हसन बसरी कहने लगे, "अफ़सोस है कि मेरे इल्म से दूसरों को फ़ायदा हुआ और मुझे फ़ायदा न हुआ।"

एक बार इससे भी ज़्यादा अजीब बात हसन बसरी के दरपेश हुई। किसी कारण हज्जाज (न्याय करनेवाला) के सिपाहियों से भाग कर

हसन बसरी ने हबीब के इबादतखाने में शरण ली। सिपाहियों ने आकर हबीब से पूछा तो उन्होंने बता दिया कि हसन बसरी मेरे इबादतखाने में हैं। वहाँ जाकर उन्होंने देखा; मगर हैरत थी कि बहुत तलाश करने पर भी बसरी उन्हें दिखाई न पड़े। सिपाहियों ने आकर हबीब से फिर पूछा कि बताइए नहीं तो हज्जाज नाराज़ होकर आपको सज़ा देगा। हबीब बोले, "मैंने कह दिया, इबादतखाने में हैं। अब तुम्हें न दिखाई दे तो मैं क्या करूँ ?"

सिपाही एक बार फिर घर में घुसे। इबादतखाने का कोना-कोना छान मारा; मगर हसन बसरी न मिलने थे न मिले। आख़िरकार मजबूर होकर सिपाही चले गए। तब हसन बाहर आये और हबीब से कहने लगे, "तुम हक़े उस्तादी (गुरु का मान) का कुछ ख़याल न किया और मेरा पता बता दिया।" हबीब ने कहा, "मैंने सच कह दिया इसलिए आप बच गए। जो मैं झूठ बोलता तो आप गिरफ़्तार हो जाते।" हसन ने कहा, "सिपाहियों ने सात बार मुझपर हाथ रखे; पर देख न सके। तुमने क्या पढ़ा था जो देख न पाए ?" हबीब ने आयतुल कुरसी और दो अन्य आयतों का नाम बताया।

हबीब के जीवन में ऐसी कई करामातें देखने को मिलती हैं। एक स्त्री का इकलौता बेटा कहीं खो गया। वह रोती हुई हबीब के पास आई। उन्होंने स्त्री के पास जो दिरम थे, लेकर ख़ैरात कर दिए और दुआ करके कहा, "जा तेरा लड़का आ गया है।"

कहते हैं कि स्त्री अभी घर पहुँच भी न पाई थी कि उसका लड़का रास्ते में ही मिल गया। माँ ने पूछा, "बेटा तुम कहां थे और कैसे आये ?" लड़का बोला, "मैं किरमान में था। बाज़ार से सौदा ख़रीदने बाहर निकला कि बड़ी तेज़ हवा चली और वही हवा मुझे यहाँ उड़ा लाई। मैंने आवाज़ भी सुनी कि कोई कह रहा है, 'ऐ हवा, तू इस लड़के को घर पहुँचा दे।" अत्तार ने इस जगह पर लिखा है कि जैसे सुलेमान का तख़्त पलभर में कहीं भी जा पहुँचता था वैसे ही दुआ के बल पर लड़का भी आ सकता है।

हबीब अजमी का मकान बसरे के चौराहे पर था। एक बार अपने कपड़े उतार कर उन्होंने बाहर रख दिये और अन्दर गुस्ल करने चले गए। इतने में उधर से हसन बसरी आ निकले। कपड़े रखे देखे तो पहचान गए। समझा कि हबीब इन्हें उतार कर कहीं चले गए हैं। कोई उठा न ले जाय इस ख़याल से वह वहीं खड़े रहे। जब हबीब नहा कर बाहर आये तो अपने गुरु को खड़े देखा। पूछा, "आप कैसे खड़े हैं ?" हसन बोले, "मैं जा रहा

था कि तुम्हारे कपड़े रखे देखे। सोचा, चौराहा है कहीं कोई ले न जाय इसलिए खड़ा हो गया। तुम किसके भरोसे इन्हें छोड़ गए ?" हबीब बोले, "उसीके भरोसे जिसने आपको उनकी रखवाली के लिए भेज दिया।"

यही हसन एक बार हबीब से मिलने आये। हबीब के पास उस समय जौ की एक टिकिया और नमक की कुछ कंकड़ियां ही थीं। वह उन्होंने उनके सामने परोस दीं। हसन ने खाना अभी शुरू नहीं किया था कि एक फकीर ने आकर सवाल किया। हबीब ने वह टिकिया हसन के सामने से उठाकर फ़क़ीर को दे दीं। हसन गु तो थे ही। बोले, "ऐ हबीब, तुम शाइस्ता (शिष्ट) अवश्य हो; पर कुछ इल्म भी तुम्हें होता तो बहुत अच्छा होता।" हबीब चुप रहे। थोड़ी ही देर में किसी का एक नौकर सर पर बड़ा-सा थाल रखे आया। उसमें कई तरह के स्वादु पकवान थे और पाँच सौ दिरम भी रखे थे। दिरम तो हबीब ने फ़क़ीरों में बाँट दिए और खाना हसन के सामने रखा और खुद भी खाया।

जब दोनों भोजन कर चुके तो चेले ने गुरु की बात का जवाब दिया। हबीब ने कहा, "आप नेक मर्द हैं। मगर मर्तब-ए-यक़ीन (अटल विश्वास) भी होता तो बहुत अच्छा होता।" ईश्वर में अविचल विश्वास ही संत का सबसे बड़ा गुण है।

हसन, कहते हैं, बचपन में रसूल मुहम्मद के पास रहते थे। हसन की माँ उनके घर में बांदी का काम करती थीं। अम-सलमा उन्हें बहुत प्यार करती थीं और उन्हें अपना दूध भी पिलाती थीं। मुहम्मद की गोद में खेलने की खुश क़िस्मती भी उनको हासिल हुई थी। एक बार कुछ बड़े होने पर हसन ने मुहम्मद के आबखोरे (पानी का बरतन) से पानी पी लिया। रसूल को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने निहायत खुश उस्लूबी से (सद्भावना पूर्वक) कहा, "हसन ने जितना पानी मेरे आबखोरे से ही पिया है उतना ही अदब (ज्ञान) वह हासल कर लेगा।"

एक बार हसन बसरी अपने शिष्य हबीब अजमी से मिलने शाम के वक़्त आये। हबीब उस वक्त मग़्रिब (संध्या) की नमाज़ पढ़ने जा रहे थे। हसन ने भी साथ ही नमाज़ अदा करने का फैसला किया। इतने में हबीब के मुंह से 'अल्हम्द' शब्द निकला। हसन ने सोचा कि इन्हें कुरान ठीक तरह नहीं आता। इसलिए उन्होंने साथ न पढ़कर अपनी नमाज़ अलग पढ़ी।

कहते हैं, उसी रात को सपने में हसन बसरी दीदारे-इलाही से मुशर्रफ़ (दर्शन से सम्मानित) हुए। हसन ने पूछा, "या रब, तेरी ख़ुशनूदी किस में है ?" हुक्म हुआ, "तुमने हमारी खुशनूदी तो पाई; मगर उसका

मर्तबा न ज़ाना।" हसन ने पूछा, "या अल्लाह, वह क्या बात थी?" जवाब मिला, "हवीब अजमी की नमाज़ में अगर तू साथ देता तो वह नमाज़ तेरी ज़िन्दगी भर की नमाज़ों से तेरे हक़ में बेहतर रहती। तूने ज़ाहिरा इबादत की दुरुस्ती का ख़याल किया और दिली नीयत को छोड़ दिया। अल्फ़ाज़ की दुरुस्ती का मर्तबा दिली नीयत की दुरुस्ती से कम है!"

इन हवीब की जीवनी भी बड़ी अजीब है। फ़ज़ील डाकू थे तो यह सूदख़ोर। फ़ज़ील डाकू होते हुए भी नमाज़ पढ़ते और औरत पर हाथ न डालते थे मगर हवीब का तो मानो सूदखोरी ही ईमान था। थे मालदार। बसरे में रुपया सूद पर उठाते थे और खाना सूद के पैसे का ही खाते। जिस दिन सूद न मिलता, अपने क़र्ज़दार से खाने-पीने की कोई चीज़ मांग लाते और उसी पर गुज़ारा करते। सूद या सूद हासिल करने की मज़दूरी के अलावा वह मूल में से अपने ऊपर कुछ भी खर्च न करते।

सूदखोरों की ही तरह वह अपने क़र्ज़दारों से सख़्ती भी वरतते थे। एक रोज़ वह ऐसे मकान पर पहुँचे कि उसका मालिक तो था नहीं, उसकी औरत ने अपनी मजबूरी ज़ाहिर की। मगर हवीब का तो नियम था। बिना कुछ लिए वहाँ से कैसे टलें। बेचारी औरत ने मजबूर होकर बची हुई खाने की चीज़ें उनको नज़र (भेंट) कीं। वह उसे घर लाए, मगर बीवी ने बताया कि घर में खाना बनाने के लिए न लकड़ी है न आटा। वह इन चीज़ों को भी इसी तरह लेकर आए। खाना तैयार हुआ तो एक मांगने वाला आया। उसे यह कह कर हवीब ने लौटा दिया, "हमारे पास जो है उसे देने से तुम अमीर तो बन न जाओगे पर हम मुफ़लिस (दरिद्र) हो जायंगे।"

जब खाने बैठे तो बीवी चीख उठी। हांडी में सालन (भाजी) की जगह लहू भरा हुआ था। बीवी भी इस कंजूसी से तंग आ गई थी। बोली "देखो, तुम्हारी बदबख़्ती (दुष्कर्म) का यह नतीजा है।" शायद वक्त आ गया था। पत्थर के दिल पर यह करारी चोट पड़ी। " हवीब बोले, "तुम गवाह हो कि आज से मैं अपनी ज़िन्दगी को बदलने का इरादा करता हूँ।" दूसरे दिन सवेरे जब वह घर से निकले तो वह जुम्मा का रोज़ था। कुछ लड़के राह में खेल-कूद रहे थे। हवीब को देखकर बोले, "देखो, हवीब सूदख़ोर आता है। राह में से हट जाओ। कहीं ऐसा न हो कि इसकी धूल पड़ने से हम भी इसी की तरह बदबख़्त हो जायं!"

बीवी में जो बोला था वही लड़कों के द्वारा यह चोट कर बैठा। चोट लगनेवाली बात तो थी ही। वह सीधे हसन बसरी के पास पहुंचे जो अपने ज़माने के माने हुए संत थे। उन्होंने जो नसीहत दी तो बेक़रार

हो गए। वहीं उन्होंने तौवा की। जब लौटे तो सामने से उनका एक क़र्ज़-दार जा रहा था। हवीव को देखकर वह भागा। मगर हवीव बोले, "अव तुम्हें मुझसे नहीं बल्कि मुझे तुमसे भागना है।" उन्होंने तय कर लिया था कि अव उन्हें न सूद लेना है न मूल ही।

हसन के यहाँ से जव वह घर लौट रहे थे तो राह में वही लड़के खेलते हुए उन्हें फिर मिले। हवीव ने सुना। लड़के आपस में कह रहे थे, "सब एक ओर हट जाओ, हवीव अब तौवा करके आ रहा है, ऐसा न हो कि हमारी खाक उस पर पड़ जाय और उसकी वजह से हमारा नाम गुनाहगारों में अल्लाह-ताला लिख लें।" हवीव का दिल भर आया। वोले, "या अल्लाह! क्या ही तेरी क़ुदरत है। आज ही मैंने तौवा की और आज ही तूने मुझे लोगों में नेकनाम कर दिया।"

हवीव ने आम ऐलान कर दिया कि जिस किसी पर भी मेरा कर्ज़ आता हो वह आकर अपना दस्तावेज़ ले जाय। मैंने सवको क़र्ज़ छोड़ा। इसके अलावा, उनके घर में जो माल था, वह सब उन्होंने खुदा का नाम लेकर लोगों को बांट दिया। जब उनके पास कुछ न रहा तो एक आदमी आया तो उसने उनके पहने हुए कपड़े मांगे। हवीव ने वह भी दे दिए। तव एक और आया और बोला, "अपनी बीवी की चादर दे दो।" वह भी दे दी गई।

अब उन्होंने अरात नदी के किनारे एक झोंपड़ी बनाई और वहीं रहकर वह इवादत करने लगे। उनका नियम यह था कि दिन को वह हसन बसरी के पास जाकर अदव सीखते और रात को अपनी झोंपड़ी में खुदा से लौ लगाते। एक दिन का ज़िक्र है कि बीवी ने कहा, "कुछ खाने-पीने का इन्तज़ाम कीजिए।" उनसे तो कहा अच्छा और जाकर भजन करने लगे। शाम को बीवी ने पूछा तो कहा, "दस दिन बाद मजदूरी मिलेगी। तवतक काम चलाओ।"

जब दसवां दिन आया तो सोचने लगे कि आज बीवी को क्या जवाब देंगे। इसी फ़िक्र में घर पहुँचे तो देखा घर से पकवान की महक आ रही है। मालूम हुआ कि कोई अन्जान शख्स आटा, घी, शहद के साथ ३०० दिरम दे गया है और साथ ही यह संदेश छोड़ गया कि हवीब जब आये तो कह देना कि अपनी मेहनत करते रहें, मैं इससे भी ज़्यादा मज़दूरी उन्हें दूंगा।

हवीब अजम के रहने वाले थे। वह अरबी न जानते थे मगर जब कोई कुरान पढ़ता तो इतने बेक़रार हो उठते कि रोने लगते। लोग पूछते, "आप अरबी तो जानते नहीं फिर क़ुरान की आयतें कैसे समझते हैं?" बोले, "मेरी ज़ुवान ज़रूर अजमी है मगर दिल अरबी है।" किसी और संत ने उनसे पूछा, "आप अजमी हैं फिर यह मर्तबा आपको कैसे नसीब

हुआ !".पेश्तर इसके कि वह कुछ कहें, एक ग़ैबी आवाज़ आई, "अजमी है तो क्या हुआ ! हवीव (प्यारा) है।"

कहते हैं, एक बांदी तीस साल से उनकी ख़िदमत में थी; मगर कभी उन्होंने उसका मुह नहीं देखा। एक दिन उससे बोले, "ज़रा मेरी बांदी को पुकार दे।" वह बोली, "मैं ही तो आपकी बांदी हूँ।" शर्माते हुए-से बोले, "इन तीस बरसों में मैंने सिवा ख़ुदा के किसी तरफ नहीं देखा इसलिए मैंने तुझे नहीं पहचाना।" एक क़ातिल को सूली दी गई तो उसी रात लोगों ने ख्वाव में उसे बड़ी शान से बहिश्त में घूमते देखा। कारण पूछा तो कहा, "हवीव की दुआ का यह नतीजा है। मुझे सूली पर देख उन्हें तरस आया और अल्लाह ने उनकी बात सुन ली।"

एक दिन इमामशाफ़ी और इमाम अहमद हम्बल एक स्थान पर बैठे बातें कर रहे थे कि उधर से हवीव आ निकले। इमाम हम्बल ने कहा, "हम इनसे एक सवाल करेंगे। देखें यह क्या जवाव देते हैं?" शाफ़ी ने कहा, "इनका अपना रास्ता अलग है। इनसे कोई सवाल करना ठीक नहीं।" मगर वह न माने और पूछा, "जिसकी पांच नमाज़ों में से कोई नमाज़ छूट जाय तो वह क्या करे? हवीव बोले, "पांचों नमाज़ें अदा करे। वह क्यों ख़ुदा से ग़ाफ़िल हुआ और बेअदव बना!"

: ११ :

जुनैद बग़दादी

सन्त सरीसक़ती जुनैद के मामा थे और उनके गुरु भी। किसी ने सक़ती से पूछा कि क्या मुरीद का रुत्वा पीर से ज्यादा भी होता है? सक़ती ने जवाव दिया, "हाँ। ध्यान रहे कि जुनैद अगर्चे मेरा शागिर्द है मगर रुत्वे में मुझसे ज़्यादा है।"

छुटपन में एक दिन जव वह मदरसे से आ रहे थे, रास्ते में अपने पिता को रोते देखा। मालूम हुआ कि उन्होंने अपनी मेहनत की कमाई के कुछ दिरम सरीसक़ती को नज़राने के तौर पर भेजे थे मगर वह उन्होंने लिये नहीं; वापिस कर दिये। पिता ने कहा, "जव

ख़ुदा के दोस्तों को मेरी कमाई पसन्द नहीं तब तो मेरी यह ज़िन्दगी ही फ़िज़ूल गई।"

जुनैद वह दिरम लेकर मामा की कुटी पर पहुँचे। सक़्ती ने पूछा, "कौन है?" जवाब दिया, "मैं, जुनैद, पिता का नज़राना लेकर आया हूँ। इसे मंजूर कीजिए।" सक़्ती ने मना किया तो बोले, "मैं उस ख़ुदा के नाम पर आपसे कहता हूँ जिसने आप पर मेह्र की और दरवेशी दी और पिता के साथ इंसाफ़ किया और उन्हें दुनियादार बनाया। अपना फ़र्ज़ उन्होंने पूरा किया अब आपका फ़र्ज़ जो हो, करें।"

बालक जुनैद की यह दो टूक बेबाकाना गुफ़्तगू (निडर बातचीत) सन्त सक़्ती को पसन्द आई। उठकर किवाड़ खोले और प्यार से बोले, "इन दिरमों से पहले मैंने तुझे क़बूल किया।" मामा ने भांजे से वह दिरम क्या लिये मानो अपने को ही दे डाला।

कहते हैं, सात साल की उम्र में अपने मामा के साथ मक्का गये। वहां सूफ़ियों में शुक्र के मसले पर बात हो रही थी। सबने अपनी-अपनी अक़्ल के मूजिब शुक्र की ता'रीफ़ की। मामा ने जुनैद से कहा, "अब तुम बताओ कि शुक्र क्या है?" सभी के दिल की कली-सी खिलाते हुए वह बोले, "शुक्र उसका नाम है कि जब अल्लाह ने'मत (सुख-ऐश्वर्य) दे तो ने'मत की वजह से ने'मत देने वाले की नाफ़र्मानी (अवज्ञा) न हो।"

मक्के से लौटकर उन्होंने आइने की दूकान खोली जिसमें एक पर्दा डालकर वह रोज़ चार सौ वक्त नमाज़ पढ़ते थे। फिर दूकान छोड़कर सरी सक़्ती के घर की एक कोठरी में गोशानशीनी इख़्त्यार की और तीस साल तक यह हाल रहा कि तमाम रात इसी श़ग्ल में गुज़रते। शाम की नमाज़ के लिए वुज़ू करके जो नमाज़ पर खड़े होते तो सुबह की नमाज़ भी उसी वुज़ू से अदा करते।

चालीस साल की तपस्या के बाद जुनैद के दिल में ख़याल उठा कि अब मुझे रुत्ब-ए-बुलंद (बड़ा दर्जा) हासल हो गया है। तभी उन्हें यह आवाज़ सुनाई दी, कि वक्त आ गया है कि तुझे ज़न्नार पहनाया जाय। पूछा, "ऐ अल्लाह, मैंने ऐसा क्या किया है?" आवाज़ आई "इससे ज़्यादा और क्या हो सकता है कि तू मौजूद है।"

बात सच्ची थी। सुनते ही जुनैद का सिर शर्म से झुक गया और कहा, "जो शख्स अहल न हुआ विसाल (प्रेम-मिलन का अधिकारी नहीं बना) का उसकी सब नेकियाँ गुनाह में दाख़िल हैं।" इसके बाद वह और भी ज़्यादा इबादत करने लगे। यों आज़ाद ख़याल के आदमी थे,

कोई कुछ पूछने आता जो मुनासिब समझते कह देते। हासिदों (ईर्ष्यालुओं) ने जाकर खलीफ़ा से शिकायत की।

मगर खलीफ़ा ने पहले उनका इम्तिहान कर लेना मुनासिब समझा। अपनी प्यारी बांदी को खूब सजाकर और समझा-बुझाकर अकेले में जुनैद के पास भेजा। और क्या होता है यह देखने के लिए गुपचुप एक आदमी भी साथ कर दिया। जुनैद कुछ देर तक खामोश रहे। फिर उन्होंने सिर उठाकर आह जो की तो बांदी वहीं ढेर हो गई।

खलीफ़ा ने जब यह हाल सुना तो वह खुद जुनैद के पास आया और शिकायत की, "क्योंकर ऐसी खूबसूरत औरत को आपने दुनिया से ही उठा दिया ?" जुनैद ने जवाब दिया, "तुम अमीर उलमोमनीन हो और इस हैसियत में तुम्हें तमाम मोमनीन (आस्तिकों) पर शफ़क़्त (दया) करनी चाहिए। इसके बजाय तुमने मेरी चालीस साल की कमाई (तपस्या) को बर्बाद करने का खयाल कैसे किया ?"

एक बार कहा, "मैंने तमाम मर्तबे भूखों रहकर, दुनिया तर्क (त्याग) करके और शब-बेदारी (रातभर जागकर तप करना) से हासिल किये और दो सौ बुजुर्गों की खिदमत भी की। दस हज़ार सादिक़ मुरीदों (सच्चे शिष्यों) को अल्लाह ने मेरे साथ दरियाए-मारिफत (प्रभु-भक्ति) में ग़र्क़ किया। और फिर मुझे अपनी कृपा से उभारा और आस्माने-इरादत (श्रद्धा) का आफ़ताब (सूर्य) बनाया।"

अली जुनैद के दादा-गुरु थे। वह कहते, "जिसने मुझे अपनी मारिफ़त से शनासा (परिचित) किया वह खुदा बेमिस्ल (अनुपम) है। किसी जिन्स में उसको पा नहीं सकते और किसी मखलूक़ पर उसका क़यास नहीं कर सकते, वह दूर होते भी नज़दीक है और नज़दीक होते हुए भी दूर है, वह सबसे बेहतर है। और नहीं कह सकते कि उसके नीचे कोई चीज़ है और वह नहीं है मिस्ल किसी चीज़ के, और नहीं है किसी चीज़ में, और नहीं है किसी चीज़ पर। पाक है वह खुदा और ऐसा है कि सिवा उसके किसी चीज़ में ये औसाफ (गुण) नहीं हैं।"

जुनैद का कहना है, "अगर मुझे हज़ार साल की उम्र भी मिले तो ज़र्रा बराबर इबादत में कमी न करूँ।" और कहा, "खल्क़ गुनाह करती है और मुझे तकलीफ़ होती है, इसलिए कि मैं खल्क़ को मिस्ल आज़ा (निजी अंग) के खयाल करता हूँ।"

जुनैद कहते, "एक मुद्दत तक मैं इनके हाल पर रोता रहा और अब मेरी वह हालत है कि मुझे अपनी, ज़मीन और आस्मान किसी की—खबर नहीं है। दस साल मैंने दिल की हिफ़ाज़त की और उसके बाद दस बरस

तक दिल ने मेरी हिफ़ाज़त की। अब मैं इस हाल में हूँ कि न दिल मुझसे आगाह (खबरदार) है न मैं दिल से।"

बोले, "बीस साल से अल्लाह मेरी जुबान से बात करता है और मैं दरम्यान में नहीं हूँ। खौफ़ से मैं बेखुद हो जाता हूँ और उनकी मेह्र से मैं फिर होश में आ जाता हूँ।" क़ुरान की एक सूक्ती है—"क़लाम वह है जो दिल से हो।" यह जानने के बाद जुनैद ने अपनी तीस साल की नमाज़ फिर से दोहराई।

नमाज़ पढ़ते वक्त अगर उन्हें दुनिया की किसी बात का खयाल आता तो नमाज़ फिर पढ़ा करते और अगर जन्नत का खयाल दिल में उठता तो उसे दूर करने के लिए एक और सिज्दा करते। वह फ़क़ीरों का नहीं बल्कि आलिमों का लिबास पहनते। किसी ने कहा, "आप खिरक़ा पहनें" (फ़कीरी लिबास), तो बोले, "दिल साफ़ रखना चाहिये। बनावट और ज़ाहिरदारी बेकार है।"

सक़्ती ने वाज़ (उपदेश) देने के लिए कहा तो जुनैद न माना। रात को सपने में देखा कि हज़रत मुहम्मद वाज़ का हुक्म दे रहे हैं। उठते ही गुरु के पास आये। सक़्ती ने दूर से ही कहा, "क्यों अब भी इन्कार करने की हिम्मत है?" जुनैद ने पूछा, "आपको कैसे मालूम हुआ?" बोले, "मेरी दुआ पर अल्लाह ने कहा कि मैं रसूल को भेजूंगा।"

जुनैद बोले, "मैं वाज़ तो करूँगा; मगर इस शर्त पर कि मेरी मजलिस में चालीस से ज्यादा आदमी न हों।" उन्होंने वाज़ शुरू किया और कुछ दिन बाद बन्द कर दिया यह कहकर कि मैं अपने को हलाक करना नहीं चाहता। तब कोई हदीस (स्मृति ग्रंथ) देखी। लिखा था—दुनिया का सबसे बुरा आदमी दुनिया को बचाएगा। "मैं ही वह सबसे बुरा आदमी हूँ" यह कहकर वह फिर वाज़ देने ल े।

चालीस आदमी थे उस मजमे में, जिसमें से अठारह जान-बाहक़ तसलीम (मत्यु को प्राप्त) हुए और बाईस बेहोश हो गए। किसी के दिल में कोई बात लग गई और वह वहीं ढेर हो गया।

किसी ने पूछा, "यह मर्तबा आपको कैसे हासिल हुआ?" खल्क को बचाने का दावा भी वहाँ था और जान भी लेते ही थे। जुनैद बोले, "चालीस साल तक मैं एक पैर से अपने पीर के दरवाज़े पर खड़ा रहा हूँ।" किसी ने कहा, "ज़रा दिल से मेरी तरफ़ मुख़ातिब हो।" बोले, "मुद्दत से चाहता हूँ कि अल्लाह की तरफ़ दिल के साथ जाऊँ, मगर नहीं हो सका फिर तेरा कहा कसे करूँ?"

भक्त और भगवान में चोहलें भी खूब होती हैं। दिल चुरा लेना तो

उनका पुराना शेवा है। जुनैद ने लिखा है,एक दिन मेरा दिल गुम हो गया। मैंने दुआ की, "या अल्लाह, मेरा दिल मुझे मिल जाय।" हुक्म हुआ, "हमने तेरा दिल इसलिए लिया है कि तू हमारे साथ रहे और तू दिल वापिस मांगता है ताकि दूसरों की जानिब राग़िब (आकर्षित) हो।"

बीमार पड़ने पर जुनैद ने कहा," (अल्लाह हुम अशफ़नी), ऐ अल्लाह मुझे शफ़ा दे," तो फटकार आई कि तुझे मुसीबत में सब्र करना चाहिए। जो सब्र नहीं करता वह दरगाह के लायक़ नहीं।

हानी ज़िन्दगी का एक दूसरा तेवर(दृष्टिकोण—पहलू)भी है। एक दफ़ा आँखों में तकलीफ़ थी तो एक हकीम ने कहा कि पानी आँखों में न लगाइए। जुनैद बोले, "वुज़ू ो में जरूर करूँगा।" तबीब (हकीम) के जाने पर वुज़ू किया, नमाज़ पढ़ी और सो रहे। सुबह उठे तो दर्द न था। आवाज़ आई, "तूने हमारी इबादत में आँख का खयाल भी नहीं किया, इसलिए हमने तेरा दर्द खो दिया।"

वह हकीम मुसलमान न था; क़ौम का तरसा था। जब वह दूसरे रोज़ आया तो पूछा, "किस इलाज ने रात भर में आपकी आँखें अच्छी कर दीं।" जुनैद ने कहा, "वुज़ू करने से।" हकीम पर इस बात का इतना असर हुआ कि वह मुसलमान हो गया और यह कहा कि यह इलाज खालिक का था न कि मखलूक़ का। दरअस्ल मैं बीमार था और आप तबीब!"

रास्ते में एक मुरीद के साथ जा रहे थे कि इन्हें देखकर एक कुत्ता भौंका। जुनैद ने प्यार से आगे बढ़कर कहा, "लबैक्! लबैक्!" मुरीद ने हैरान होकर सबब पूछा तो बोले, कुत्ते का गुस्सा और ग़लबा मैंने अल्लाह के कहर में देखा और उसकी आवाज़ में मैंने अल्लाह की आवाज़ सुनी। इसीलिए मैंने अल्लाह की तरफ खिताब (संबोधन) करके लबैक् कहा, "लबैक् के माने हैं, मैं तेरी खिदमत में हाजिर हूँ।"

एक बार जुनैद रो रहे थे। लोगों `कारण पूछा तो बोले, "मैंने अपनी तमाम उम्र बला की तलब (आफत की चाह) में बसर की और मैं समझता हूँ कि बला अगर अजहदा बन कर आये तो सबसे पहले मैं उसके ुह में लक़मा बनकर दाखिल हो जाऊँ। मगर अफसोस है कि अबतक मुझे यही हुक्म होता है कि अभी तेरी इबादत बला के मुकाबले में ठहर नहीं सकेगी।"

एक शख्स ने महफ़िले वाज़ (उपदेश-सभा) में पूछा, "दिल कब खुश होता है ?" बोले, "जब अल्लाह दिल में होता है।" किसी ने उनके वाज़ की तारीफ़ की तो कहा, "दरअस्ल तू अल्लाह की तारीफ़ कर रहा है।" संत इब्न सरीह से लोगों ने पूछा कि क्या जु ैद का बयान उनके इल्म से

होता है। सरीह ने कहा, "इसका तो मुझे इल्म नहीं मगर उनकी बातें ऐसी होती हैं कि गोया अल्लाह उनकी जुबान से बातें करता है।"

जुनैद कहते थे कि मैंने इख़्लास (सच्चा प्रेम) एक हज्जाम से सीखा। मक्का में जब मैं था तो एक नाई किसी अमीर के बाल मूड रहा था। मैंने उससे कहा, "ख़ुदा के वास्ते मेरे बाल भी मूंड़ दे। उसने फौरन अमीर का सिर मूंड़ना छोड़कर मेरा सिर मूंड़ा और उसके बाद एक पुड़िया मुझे दी, जिसमें कुछ रेज़गारी थी और कहा— से आप अपने खर्च में लाइए।"

उसी वक़्त मैंने उसके इस बर्ताव से माइल (प्रभावित) होकर यह तय किया कि अब पहले जो कुछ मिलेगा इस हज्जाम को ्ूंगा। कुछ समय बाद अशर्फ़ियों की एक थैली बसरे के एक आदमी ने मुझे दी और मैं उसे लेकर हज्जाम को देने गया। वह बोला, "मैंने अल्लाह के लिए तेरी खिदमत की थी। यह थैली देते तुझे शरम नहीं आती? क्या तू नहीं जानता अल्लाह के वास्ते काम करनेवाले किसी से कुछ नहीं लेते?"

एक सन्त ने जुनैद को लिखा कि ख्वाबे ग़फ़लत (गहरी नींद) से बचना लाज़िम है। सोने वाला मक़्सद (उद्देश्य) से दूर रहता है। वह शख्स हमारी मुहब्बत का झूठा दावा करता है जो रात को सोता है। जुनैद ने जवाब दिया, "हमारी बेदारी राहे-हक़ में हमारा मामला है और हमारा सोना अल्लाह का काम है और मैं मानता हूँ कि अपने किये काम से वह काम बेहतर है जो अल्लाह की तरफ़ से होता है।"

एक शख्स ने कहा, "मैं भूखा और नंगा हूँ।" जुनैद ने कहा, "तू अल्लाह की शिकायत करता है? जा, अल्लाह तुझे भूखा-नंगा न रखेगा। यह वह नें'मत है, जो अल्लाह अपने ख़ास बन्दों को देता है और वह शिकायत नहीं करते।" बग़दाद में एक चोर को सूली दी जा रही थी। जुनैद ने उसका मान किया। किसी ने पूछा तो कहा, "इसने जो काम उठाया उसे पूरा किया, यहाँ तक कि जान दे दी।"

जुनैद का एक शागिर्द था। उसके सिफ़ात की वजह से उस पर उनकी ख़ास मेह्रबानी थी। दूसरे मुरीदों ने तरफ़दारी की शिकायत की तो उन्होंने एक-एक परिंदा देकर सबको कहा, "जहाँ कोई न देखता हो वहाँ ज़िबह कर आओ!"

और शागिर्द तो मारकर ले आए मगर उस ख़ास शागिर्द ने आकर कहा कि कोई ऐसी जगह नहीं, जहां अल्लाह देखता न हो। यह सुनकर मुरीदों ` रश्क से तौबा की।

एक शख्स पाँच सौ दीनार नज़र करने को लाया। जुनैद ने पूछा, "इसके अलावा तेरे पास और भी माल है?" उसने कहा, "है।" फिर

पूछा, "क्या और की तुझे हाजत है ?" बोला, "हाँ, है।" तब सन्त जुनैद बोले, "तू यह वापिस ले जा, क्योंकि तू मुझसे ज़्यादा मुहताज है। मेरे पास कुछ नहीं फिर भी मुझे हाजत (जरूरत) नहीं। तेरे पास होते हुए भी तुझे अधिक की ख़ाहिश है।"

जुनैद का दिल ख़ूब कोशिश करने पर भी इबादत में न लग रहा था। मजबूरन मकान के बाहर आये तो एक आदमी को कम्बली ओढ़े दरवाज़े पर बैठे देखा। वह बोला, "मैं देर से आपके इन्तज़ार में हूँ।" जुनैद बोले, "मैं अब समझा आपके इन्तज़ार की वजह से ही मेरा दिल नहीं लग रहा था।" उसने पूछा, "नफ़्स की क्या दवा है ?" बोले, "उसकी मुख़ालिफ़त !" वह उठा और अपने से बोला, "देख, जो मैं कहता वही इस बुज़ुर्ग से तूने सुना।"

बोले—अगर मेरे और अल्लाह के दरम्यान आग का दरिया हो और उस पर रास्ता हो तो मैं अपने इश्तियाक़ (उत्कण्ठा) की वजह से कूद पड़ूंगा। कहते हैं, उनकी महफ़िल में एक अमीर आया और एक दरवेश को साथ ले गया। थोड़ी देर में उसके सिर पर पकवान का ख़्वान (थाल) रखा कर लाया। जुनैद को तैश आया। बोले, "यह ख़्वान इसी के मुंह पर मार। दरवेश काबिले इज्ज़त है। वह साहिबे माल नहीं मगर मालिके-सवाबे-आख़िरत (परलोक के पुण्यों का स्वामी) है।"

उन अठारह के अलावा और भी कई आदमी उनकी हैबत (त्रास) और उनके जलाल (तेज) से हलाक (मृत्यु) हुए। उनका एक मुरीद भागकर मस्जिद में जाकर बैठा। वह उसे देखने गये तो दहशत से गिर पड़ा और उसका सिर फट गया। मगर जो ख़ून टपकता उससे अल्लाह बन जाता। बोले, "तू नुमायश करता है। जरा-जरा से लड़के जिक्र में तेरे बराबर हैं। मर्द वह जो मज़कूर (आदिष्ट स्थान) को पहुंचे।" यह सुनकर मुरीद तड़पा और मर गया।

सैयिद नासिरी हज को जाते हुए बग़दाद पहुंचे तो जुनैद के दर्शनों को आए। सन्त ने नासिरी से कहा, "तुम सैयिद हो, तुम्हारे दादा हज़रत अली नफ़्स और कुफ़्फ़ार (नास्तिकों) दोनों से जिहाद (धर्म-युद्ध) करते थे, तुम कौन-सी जिहाद करते हो ?" यह सुनकर वह बेकरार होकर रोने लगे और कहा, "मेरा हज तो आप ही तक है। रहनुमाई कीजिये।" बोले, "तुम्हारा दिल अल्लाह का घर है इसमें और को न रखो।' जुनैद की यह नसीहत पूरी होते ही नासिरी का काम तमाम हुआ।

यहां उनकी कुछ सूक्तियां दी जाती हैं—सूफ़ी वह है जिसको सिवा ख़ुदा के कोई न जानता हो। सब बुराइयों से ज़्यादा सूफ़ी का बुख़्ल

(कंजूसी) है । अल्लाह में फ़ना हो जाना तौहीद (ईश्वर को एक मानना) है। सब हरकाते खल्क़ (जनता के बुरे कार्यों) को खालिक (ईश्वर) से समझना यक़ीन है। बक़ा (अनश्वरता) अल्लाह के लिए बाकी सबको फ़ना है।

मुहब्बत यह है कि मुहब्बत करने वाले में तमाम सिफ़्तें महबूब की पाई जायं (अर्थात्, भक्त में भगवान् के सारे गुण आ जायं तभी वह सच्चा भक्त है)। एक आयत है—बस जब दोस्त रखूंगा मैं उसको, हो जाऊंगा मैं उसके लिए कान और आंख, यानी वह मुझसे सुनेगा और मुझसे ही देखेगा।

मुश्फ़िक़ (दयालु) वह, जो अपनी पसन्द की चीज़ दूसरे को दे और अहसान न रखे। नफ़्स का तन्हाई इख्तियार करना इबादत है। दरवेश, जो अपने मालिक की रज़ा में ही सदा राज़ी है, तमाम आलम से बुजुर्ग है।

ऐसे शख्स की संगत करो, जो तुम्हारे साथ नेकी करे और अहसान न जताए और तुम्हारे ऐब माफ़ करे। हिजाब (आवरण) ६ हैं—तीन आम लोगों के लिए—पहला नफ़्स, दूसरा खल्क़, तीसरा दुनिया की चाह; और ३ खास के लिए—एक इबादत पर, दूसरे सवाब पर और तीसरे करामत पर तक़ब्बुर (घमंड) करना। तर्क दुनिया (संसार-त्याग) से उक़्बा (परलोक) की राह मिलती है। नफ़्स को छोड़ ताकि खुदा से वासिल हो।

हलाल से हराम की तरफ माइल होना आलिम की कमज़ोरी है, फ़ना से बक़ा की तरफ़ माइल होना ज़ाहिद की लग़्ज़िश (त्रुटि) है और क़रीम से क़रामत की तरफ़ माइल होना आरिफ़ की लग़्ज़िश है। मासिवा अल्लाह के तर्क करना और खुद फ़ना हो जाना तसव्वुफ़ है। उनके एक मुरीद का अच्छा-सा क़ौल है—सूफ़ी वह है जो बेवस्फ़ (निर्गुण) हो जाय।

आरिफ़ वाक़िफ़े-असरे-इलाही (प्रभु विषयक रहस्य से परिचित) होता है। आरिफ़ से हिजाब उठा लिए जाते हैं। मारिफ़त दो किस्म की हैं, एक तो अल्लाह को पहचानना और दूसरी यह कि अल्लाह उसे पहचाने। मारिफ़त अल्लाह के साथ मशग़ूल होना है, आरिफ़ मारूफ़ (ज्ञानी) है। तौहीद (आस्तिकता) अल्लाह को मानने का नाम है और तौहीद की गायत (अन्त) तौहीद से इन्कार है।

मुहब्बत खुदा की अमानत है। जो मुहब्बत किसी चीज़ की बदौलत होती है वह फ़ना (नष्ट) होती है, जब वह चीज़ फ़ना हो जाती है मुहब्बत शर्ते-अदब (शिष्टता की शक्ति) से दुरुस्त होती है। साहबे अलायक़ (संसारी) की मुहब्बत अल्लाह ने हराम की है। जब तक खुद नेस्त (नष्ट) न हो मुहब्बत हासिल नहीं होती। अहले उन्स (प्रेमियों की बातें) आम लोगों को कुफ़्र (नास्तिक) मालूम होती हैं।

वक़्त से ज़्यादा कोई चीज़ कीमती नहीं। हज़ार साल की इबादत

वाले को भी एकदम अल्लाह से ग़ाफिल रहना बुरा है क्योंकि एकदम की गैरहाज़िरी का जुर्माना हज़ार साल की इबादत न भर पायगी। अल्लाह के औलिया को नफ़्स की देखभाल करने से ज्यादा मुश्किल कोई काम नहीं।

अल्लाह की जानिब रग़बत (चाह) शुक्र है। इंतिहा जुहद की मुफ़लिसी है। सब्र की इन्तिहा तवक्कुल (ईश्वरार्पण) है। सब्र खल्क़ से दूर और खालिक़ के करीब होने को कहते हैं। नाशुक्री और बेसब्री को तर्क करना सब्र है। तवक्कुल इसका नाम है कि तू ऐसा खुदा का हो जा जैसे अज़ल में था। सकूने-दिल (मानसिक शान्ति) तवक्कुल है।

भक्त के लिए दुनिया कड़वी और मारिफ़त मीठी है। ज़मीन की सूफियों से यूं ज़ीनत (शोभा) है जैसे आस्मान को सितारों से। दिल की निगाह रखनेवाला दीन का निगाह रखने वाला है। जिसकी ज़िन्दगी रूह पर है, हयाते असली (वास्तविक जीवन) हासिल करता है। खाने के तालिब (इच्छुक) से इबादत नहीं हो सकती।

सन्त जुनैद के उपदेश बहुत हैं। उनकी जीवनी काफ़ी लम्बी है। उनके उपदेशों को समझने के लिए उन पर मंनन करने की ज़रूरत है। उनकी मौत के बाद बहुतों ने ख्वाब में देखा कि वह बड़े अच्छे हाल में हैं। जब उन का जनाज़ा जा रहा था, तो एक कबूतर जा बैठा और उड़ाये से भी न उड़ा। बोला, "मेरे पंजे मुहब्बत की कील से जनाज़े के कोने पर जकड़े हुए हैं। यह जनाज़ा फ़रिश्ते उठाए हुए हैं, तुम छोड़ो तो आस्मान में उड़ जाय।"

: १२ :

इमाम शाफ़ी

मानना होगा इमाम शाफ़ी विद्वान सन्त थे। इमाम अहमद हंबल, जो बशर हाफ़ी के पीछे अक्सर इसलिए घूमते देखे जाते कि वह उन्हें खुदा-रसीदा (ईश्वर-भक्त) समझते थे। नौजवान मगर इल्म-दोस्त (ज्ञानी) शाफ़ी की भी बड़ी इज्ज़त करते और प्रायः उनकी संगत के लिए

लालायित रहते। उनके मुरीदों को यह बुरा लगता कि उनका वयोवृद्ध प्रसिद्ध गुरु एक कम उम्र के संत के पीछे फिरे।

आखिर-जब उनसे नहीं रहा गया तो उन्होंने अपने गुरु से कहा कि आप जैसा साहबे इल्म (परम-ज्ञानी) एक कम उम्र शख्स की खिदमत करे यह अमर नाज़ेब (अनुचित कर्म) मालूम देता है। ये बात सुनकर उन्होंने कुछ वैसा ही उत्तर दिया जैसा कि बशर हाफ़ी के सम्बन्ध में दिया था। बोले, "मुझे जो इल्म मालूम है उसके असली मतलब से वे आगाह (परिचित) हैं और मुझे उनकी खिदमत में आयतों और हदीसों की हक़ीक़त मालूम होती है।"

इतना ही नहीं, उन्होंने आगे बढ़कर यहाँ तक कहा कि अगर यह दुनिया में न आते तो हम इल्म के दरवाज़े पर ही खड़े रह जाते। इल्म फ़ुकहा (मुस्लिम धर्म-शास्त्र) के दरवाज़े आलम पर इनकी ज़ात से खुले हैं और इस ज़माने में इनसे ज्यादा किसी का एहसान इस्लाम पर नहीं। रसूल ने कहा है कि हर सदी के आग़ाज़१(आरंभ) में एक ऐसा शख्स पैदा होगा कि खल्क उससे दीनी इल्म हासिल करेगी और इस सदी के आग़ाज़ में वह इमाम शाफ़ी हैं।

उनकी माता बड़ी ज़ाहिदा थीं। लोग अक्सर अपनी अमानत उनके पास लाकर रख जाया करते। उनमें एक शख्स आकर वह सन्दूक ले गया। कुछ दिनों बाद दूसरा आदमी आया और अपना सन्दूक माँगने लगा। माता ने जब कहा कि तुम्हारा साथी ले गया है तो उसने कानूनी बात उठाई। हम दो जने जब रख गए तो आपने अकेले उसे क्यों दिया?

माता इसका क्या जवाब देती। वह बेचारी शर्मिंदा होकर चुप रही। मगर मालूम होता है वह आदमी इरादतन (जान-बूझ कर) वहाँ डटा रहा। इतने में शाफ़ी, जो उस समय कहीं बाहर गये हुए थे, इत्तिफ़ाक से घर आ पहुँचे। उन्होंने सब किस्सा सुना और सुनकर उस आदमी से, जो शायद इंसाफ के नाम पर एक फ़ितना (झंझट) ही खड़ा करने आया था, कहा, "तू अकेला क्यों आया? जा अपने साथी को भी ले आ, तभी तेरी अमानत तुझे मिलेगी।"

इससे कहीं अधिक बड़ी हारूं रशीद की एक समस्या अपनी किशोर अवस्था में ही उन्होंने हल की थी। हारूं और उनकी बेग़म ज़ुबैदा किसी बात पर लड़ पड़े। बेग़म ने खलीफ़ा हारूं से कह दिया, "तू दोज़खी है।" खलीफ़ा ने भी ताव में आकर कह दिया, "अगर मैं दोज़खी हूँ तो जा, मैंने तुझे तलाक़ दी।" जब गुस्सा ठंडा हुआ तो उन्हें अपने कहने का बहुत अफ़सोस हुआ क्योंकि उन्हें बेग़म बहुत प्यारी थी।

खलीफ़ा ने सोचा, तलाक़ में एक शर्त थी, 'अगर दोज़खी हूँ।' अगर किसी तरह यह फ़तवा मिल सके कि मैं ज़िन्नती हूँ तो उस ज़ुबानी तलाक़ का इतलाक़ लाज़िमी (क्रियान्वित होना आवश्यक नहीं) नहीं। खलीफ़ा ने सब विद्वानों को बुलाकर उनके सामने अपनी समस्या रखी। कोई कैसे कहे कि कौन ज़िन्नती है और कौन नहीं? खासकर जब कि, खुदा ने इस अमर का फैसला अपने ही हाथ में रखा है। और मरने पर बड़े सन्त से पूछा जाता है तेरा रब कौन है?

अल्पवयस्क शाफ़ी भी विद्वानों की उस महती सभा में थे। उन्होंने आगे बढ़कर कहा, "मैं इस सवाल का जवाब दे सकता हूँ।" खलीफ़ा ने जब उन्हें बुलाया तो कहा, "पहले यह बताओ कि मुझे तुम्हारी ज़रूरत है कि तुम्हें मेरी?" खलीफ़ा ने कहा, "मुझे आपकी ज़रूरत है।" शाफ़ी ने कहा, "तब तुम तख्त से उतरो, उल्मा का त्बा बड़ा है।" खलीफ़ा तख्त से उतरा और सम्मानपूर्वक शाफ़ी को तख्त पर बैठाया।

तख्त पर बैठकर शाफ़ी ने कहा, "अब बोलो तुम्हारी हाजत क्या है?" खलीफ़ा ने अपना प्रश्न दोहराया—"मैं ज़िन्नती हूँ या दोज़खी?" शाफ़ी ने कहा, "यह बताओ कि क्या कभी कोई ऐसा मामला भी हुआ है कि गुनाह करने के क़ुदरत (अवसर) होते हुए भी अल्लाह के खौफ़ से तुमने अपने को उस गुनाह से रोका हो?" खलीफ़ा ने कहा, "कसम है अल्लाह की, ऐसा मौका आया है।" शाफ़ी बोले, "तब तो तू ज़िन्नती है।"

विद्वानों की सभा में हलचल मच गई। सभी पूछने लगे, "आपके इस फ़तवे (निर्णय) की क्या दलील है?" किस प्रमाण के आधार पर यह अश्रुत पूर्व निर्णय दे रहे हैं? शान्त स्वर में शाफ़ी ने कुरान की एक आयत सुनाई जिसका आशय यह है—जिस शख्स ने गुनाह का कस्द (विचार) किया और फिर खौफ़े-इलाही (प्रभु-भय) की वजह से गुनाह करने से बाज रहा तो उसका घर ज़िन्नत है। सभी ने खुश होकर शाफ़ी की तारीफ की।

एक बार मक्का में रहते समय दस हजार दीनार उनको किसी ने दिये। लोगों ने सलाह दी कि या तो कृषि योग्य जमीन या भेंड़ें खरीद लो। किसी को कोई जवाब न देकर, शहर के बाहर जाकर उन दीनारों का ढेर लगा दिया और जो उधर से गुजरता एक मुट्ठी दीनार उसे दे देते। यहाँ तक कि वह सब दीनार यों ही बाँट दिये गए। काबा में जो चिराग़ जलता था उसकी रोशनी में किताब पढ़ना जायज़ (उचित) न समझ कर चांदनी में ही पढ़ते रहे।

रूम के बादशाह हारूं रशीद को हर साल कुछ माल भेजा करते थे।

एक साल कुछ रहबानियों (बाल-ब्रह्मचारी) को भेजकर यह कहलाया कि अगर तुम्हारे उल्मा इनको मुबाहिसे में हरा देंगे तब तो मैं वह माल भेजूंगा वरना नहीं। खलीफ़ा ने उल्मा को दज़ले के किनारे जमा करके शाफ़ी से कहा कि आप इनके साथ मुबाहिसा कीजिए। शाफ़ी दज़्ले के पानी पर मुसल्ला बिछाकर बैठे और कहा, "बहस करना है तो यहाँ आकर करो।"

शाफ़ी को कुरान कुंठस्थ नहीं था। लोगों ने खलीफ़ा से कहा कि शाफ़ी हाफिज़ नहीं है। खलीफ़ा ने इम्तहान के तौर पर रमज़ान के महीने में उन्हें इमाम बना दिया। वह रोज़ कुरान का एक पारा कं स्थ कर लेते और शाम को उसे नमाज़ के वक्त सुना देते। इस तरह एक महीने में उन्होंने सारा कुरान याद कर लिया और किसी पर यह ज़ाहिर नहीं होने दिया कि कुरान इन्हें याद न था।

वे कहते कि जो आलिम (विद्वान) तावील (स्पष्टीकरण) ज़्यादा करे उसे आलिम न समझो और मामूली अदब की भी, जिसने तालीम हासिल की हो, उसे उस्ताद समझो। उनके प्रेमी मित्र अहमद हम्बल की जीवनी में यह ज़िक्र आया है कि एक बार जब वे दरिया किनारे वुज़ू कर रहे थे तो एक शख्स उनसे बुलन्दी (ऊंचाई) पर बैठे वुज़ू कर रहा था। जब उसकी नज़र अहमद हम्बल पर पड़ी तो वह उनकी ताज़ीम में वहाँ से हटकर नीचे वुज़ू करने लगा। इस अदब की खातिर अल्लाह ने उसे बख्श दिया।

उनका खयाल था कि दुनिया इतनी नाचीज़ है कि एक रोटी के एवज़ में भी उसे खरीदना घाटे का सौदा है। बहुत-से सन्तों की तरह उनका यह कहना था कि अच्छे खाने की इच्छा न करो क्योंकि खाना अच्छा और बुरा तभी तक लगता है जबतक वह हलक़ के नीचे नहीं उतर जाता और उसके बाद सभी तरह के खानों का, चाहे वे ज़ाइकादार हों या सादे या बदज़ाइका, एक ही अंजाम (नतीजा) होता है।

किसी ने उनसे नसीहत चाही तो कहा—दूसरे के बराबर माल जमा करने की खाहिश न करो बल्कि दूसरे के बराबर इबादत करने के लिए बराबर तैयार रहो। क्योंकि दुनिया का सारा माल यहीं, दुनिया में रह जाता है और इबादत मरने के बाद भी साथ जाती है। दूसरे यह भी कि मुर्दे पर हसद (ईर्ष्या) नहीं करते। यह भलमन्साहत और शराफ़त के खिलाफ है और दुनिया में जो भी आया है, मरने वाला है, इसलिए मुर्दा है। इसलिए किसी पर भी हसद न करो।

कहते हैं कि एक बार वे गुज़रे हुए वक्त को ढूंढ़ने निकले। एक जगह पर सूफ़ियों की सभा लगी हुई थी। यहाँ यह गुज़रे वक्त की समस्या

पेश हुई। गुजरा वक्त कहाँ जाता है, कैसे मिल सकता है, इस पर चर्चा होने लगी। एक सूफ़ी ने कहा कि मौजूदा वक़्त को अज़ीज़ जान क्योंकि गया वक्त फिर हाथ नहीं आता। आज तो यह बात सीधी-सी लगती है गो (यद्यपि) इस पर अमल नहीं होता। मगर सूफ़ी की बात सुनकर शाफ़ी बोले, "मैंने अपनी मुराद को पाया।"

इसके बाद उन्होंने जो भाषा बोली; वह बोली तो जाती है और अच्छी भी लगती है पर कभी-कभी नहीं भी अच्छी लगती। शाफ़ी बोले, "तमाम आलम का इल्म मेरे तक और मेरा इल्म सूफ़िओं के इल्म तक नहीं पहुँचा और सूफ़िओं का इल्म उनके पीर के कौल तक नहीं पहुँचा। वह कौल यह है—'उल वक़्त सैफ़े क़ातिल'—अर्थात् मौजूदा वक़्त काटने वाली तलवार है।"

सभी जानते हैं कि जो वक़्त गुज़र गया वह तो हाथ से चला गया। उस पर अपना कोई बस नहीं; और जो अभी नहीं आया वह भी अपने हाथ से बाहर की चीज़ है। जो वक़्त अपने सामने है वही अपने हाथ में है और उसका सदुपयोग हो ेपर आ ेवाले समय तक का भी लाभ उठाने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जायगी। इस कहानी से जो अत्यन्त आवश्यक शिक्षा मिलती है वह यह है कि भूत और भविष्य की चिन्ता न करके वर्तमान के सदुपयोग की भावना जन-मन में अवतरित हो तो अच्छा है।

(वर्तमान की उपयोगिता की ओर निर्देश करने वाली एक मज़ेदार कहानी है। युधिष्ठिर किसी कार्य में व्यस्त थे। उसी समय कोई ऋषि-महात्मा उनसे कुछ मांगने आये। युधिष्ठिर ने अपनी व्यस्तता व्यक्त करके कल फिर आने को कहा कि जब उनकी इच्छा की पूर्त्ति कर दी जायगी। द्वार पर खड़े भीम ने यह सुनकर लोगों से घंटा-घड़ियाल बजाने को कहा। युधिष्ठिर ने पूछा तो कहा, "आपकी काल-विजय के उपलक्ष में यह मंगल-वाद्य बज रहे हैं।")

(व्यस्त युधिष्ठिर ने कुछ क्षुभित होकर कहा—मैंने काल पर विजय प्राप्त की है, यह बात तुमसे किसने कही? विनम्र अभिवादनशील मुद्रा में भीम बोले—महाराज, मैंने अभी आपके ही मुख से तो सुना। युधिि र ने पूछा—कैसे? भीम ोले—सभी जानते हैं, महाराज युधिष्ठिर सत्यवादी हैं। कभी झूठ नहीं बोलते। आपने अभी ऋषि को वचन दिया कि कल आप उनका काम कर देंगे। तब कम-से-कम कल तक तो निश्चय ही आप ेकाल को जीत लिया होगा। सुनकर युधिष्ठिर मुस्कराए और ऋषि को बुलाकर उनकी मांग पूरी कर दी।)

हज़रत शाफ़ी सैयिदों की, मुहम्मद के वंशज होने के कारण, इतनी

ताज़ीम (आदर) करते थे कि एक बार जब वे अपने उस्ताद से सबक पढ़ रहे थे तो कुछ छोटे-छोटे सैयिदों के लड़के वहां खेल रहे थे। जब वे इनके नज़दीक आते तो उनकी ताज़ीम के लिए उठ खड़े होते। दस-बारह बार वे लड़के उनके करीब आये और हरबार उठकर उन्होंने उनका सम्मान किया। बचपन में ही जब उनमें अदब (शिष्टता) का इतना खयाल था, तभी तो वह इल्म (ज्ञान) पर अदब को तर्जीह (श्रेष्ठता) देते थे।

: १३ :

सरी सक़्ती

सरी सक़्ती की जीवनी पढ़ते हुए ऐसा लगा जैसे कि ताजा हवा का झोंका जी को छू गया हो। उनके उपदेश सीधे और सच्चे हैं। उनकी ज़िन्दगी लम्बी मगर अमल से भरी हुई ज़िन्दगी है। जुनैद के ये गुरु और मामा थे और उन्हें ऊँचा उठाने में तो उनका हाथ था ही पर खलीफ़ा के एक मुसाहिब अहमद-बिन-यजीद को क्षणभर में तीस-मार-खां की जहनियत (भ्रमपूर्ण विचार) से निकालकर एक अच्छा-खासा ऊंचे दर्जे का सन्त बना दिया।

अहमद-बिन-यजीद खूब बनठनकर बड़ी शान से उस सभा में आया, जहाँ सरी सक़्ती उपदेश दे रहे थे और वयोग से उस उपदेश का आशय कुछ ऐसा सामयिक सिद्ध हुआ कि सीधा तीर की तरह दिल में घर कर गया। वे कह रहे थे कि मनुष्य जैसा दुर्बल और कोई प्राणी नहीं, पर इसका अभिमान कितना असीम है और इस अभिमान में आकर वह बड़े-बड़े दुष्कृत्य कर डालता है और भूल जाता है कि उनके परिणाम स्वरूप वह दोज़ख की भयंकर आग में जलाया जायगा।

खलीफ़ा के मुसाहब अहमद-बिन-यजीद पर इस प्रवचन का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि घर आकर उसने खाना खाने से भी इन्कार कर दिया और सुबह होते ही फ़क़ीराना लिबास पहने परेशान हाल सरी सक़्ती की खिदमत में हाज़िर हुआ और बोला कि आपकी नसीहत का जो असर मुझपर हुआ उसे मैं बयान नहीं कर सकता, पर रास्ता बताइए, क्योंकि दुनिया से मेरा दिल एकदम सर्द (उपराम) हो गया है।

सरी सक़्ती ने उसकी बातें सुनकर कहा, "यह बताओ कि कौन-सा रास्ता चाहिए—आम या ख़ास ?" वे बोले, "दोनों बता दीजिए ।" सक़्ती ने कहा, "आम तो यह है कि पाँचों वक़्त नमाज़ जमात में खड़ होकर पढ़ो। माल हो तो ज़कात[1] दो और शरीयत के मुताबिक़ ज़िन्दगी बसर करो। और ख़ास यह है कि दुनिया छोड़कर अल्लाह की इबादत करो और सिवा ख़ुदा के किसी से कुछ न मांगों और कोई कुछ दे भी, तो न लो।" उस वैराग्य की स्थिति में वह ख़ास रास्ता ही उन्हें पसन्द आया और विदा लेकर वहीं से कहीं जंगल की ओर निकल गए।

कुछ दिनों बाद उनकी बूढ़ी माँ ममता की मारी, परेशान हाल, रोती हुई सक़्ती के पास आई और कहा, "मेरा एक ही बेटा था, वह आपकी सोहबत में बै कर दीवाना होकर न जाने किधर निकल गया।" वे बोले, "परेशान न हो' जब तुम्हारा लड़का आयगा तो मैं तुम्हें ख़बर कर दूंगा।" कुछ दिनों बाद अहमद जब लौटे तो वे बहुत दुर्बल हो गए थे और कहने लगे, "मैं ग़फ़लत में पड़ा था, आपने मुझे उससे निकाला। ख़ुदा आपको इसका एवज़ (बदला) दे।"

अहमद यह कह ही रहे थे कि उनकी मां सरी सक़्ती का संदेशा पाकर बीबी और बच्चे के साथ आई और उनकी विचित्र हालत देखकर बहुत रोयीं और ेड़कर उनसे लिपट गई। बीबी और लड़के ने भी यह हालत देखकर रोना शुरू किया तो जो लोग उस समय वहाँ उपस्थित थे वे भी अपने आँसू नहीं रोक सके। माँ और बीबी ने बहुत कोशिश की कि वे घर जायं मगर वे किसी तरह राज़ी न हुए और वहाँ से भागने का इरादा किया।

तब बीबी बोली, "यह लड़का आपका है, इसका आप पर हक़ है, इसका इन्तज़ाम कीजिए।" अहमद ने लड़के का कीमती लिबास, जो वह पहने था, उतरवा कर एक कम्बल ओढ़ा दिया और ज़म्बील हाथ में देकर, अपने साथ ले लिया। इसपर माता पति के साथ पुत्र को भी हाथ से जाते देखकर विचलित हो उठी। उस सुन्दर किशोर बालक को उस वेष में उससे देखा न गया और पति से वापस मांगकर उसे साथ लेकर, घर वापस चली गई और अहमद फिर वहाँ से विदा होकर जंगल की तरफ निकल गए।

सरी सक़्ती का एक बड़ा ही सुन्दर व्यावहारिक सिद्धान्त था। वे कहा करते थे कि सिवा इन पांच चीजों के तमाम दुनिया फिज़ूल है:—(१) खाना, जान रोकने के माफ़िक़, (२) पानी, प्यास बुझाने के लायक,

---

१. इस्लाम धर्म के अनुसार अपाहिजों, असहायों और साधन-हीनों को अढ़ाई प्रतिशत दिया जाने वाला दान।

(३) कपड़ा, तन ढंकने लायक, (४) स्थान, रहने भर के लिए तथा (५) इल्म, जिस पर अमल कर ले।

वे कहते, "ज़ुबान और चेहरे से दिल का हाल मालूम होता है और दिल होते हैं तीन तरह के—(१) मिस्ल पहाड़ के, जो हिल ही नहीं सकते, (२) भारी भरकम पेड़ की जड़ की तरह, जो क़भी-कभी हवा से हिल जाते हैं तथा (३) मिस्ल पर के, जो हर वक्त हवा से उड़ते-फ़िरते हैं। हया और उन्स के दरवाज़े पर आते हैं और अगर दिल में ज़ुमूह और वरा (मलिनता और सांसारिक तृष्णा) पाते हैं तो हरते हैं, नहीं तो पलट जाते हैं। पाँच चीजें उस दिल में नहीं रह सकतीं जिसमें कोई चीज़ भी हो—(१) ख़ुदा का ख़ौफ़, (२) ख़दाई उम्मीद, (३) मुहब्बत, (४) हया और (५) उन्स। इस्रारे (मर्म) कुरानी समझने के लिए ग़ौरोफ़िक्र (गंभीर चिंता) करनेवाला सबसे ज्यादा अक़्लमन्द है। (सन्तोषी पुरुष श्रेष्ठ है।) आरिफ़ों का सबसे अच्छा मुकाम शौक़ है। क़यामत में उम्मत के लोग (नवियों के अनुयायी) नबियों के तरफ़ पुकारे जायंगे और अल्लाह के औलिया अल्लाह की तरफ़। आरिफ़ वह है जो कम खाये, कम सोये और कम ऐश करे।"

कहते—आरिफ़ मिस्ल आफ़ताब के सब पर चमकता है और मिस्ल ज़मीन के सबका बोझ उठाता है और मिस्ल पानी के है कि लोगों की ज़िन्दगानी उस पर मुनहसर (आश्रित) है और मिस्ल आग के है कि सबको उसकी रोशनी पहुँचती है। और कहा—सूफ़ी की मारिफ़त उसकी पर्हेज़गारी को नहीं छिपाती और इल्म बातिन में तसर्रुफ़ (प्रयोग) नहीं करती और उसकी करामत दूसरों को हराम से बाज़ रखती है। ऐश आरिफ़ को उस वक़्त हासिल होता है जब वह अपने को फ़ना कर देता है। दिखाने के लिए अपने को खुल्क (सदाचारी) करना खालिक से दूर कर देता है।

कहा—जो शख्स लोगों से ज्यादा मिलता है उसको सिद्क़ हासिल नहीं होता है। खुल्क यह है कि लोगों को तकलीफ न दे बल्कि उनसे तकलीफ़ पहुँचे तो उस पर सब्र करे। किसी पर गुस्सा न करना चाहिए और गुस्से को ज़ब्त करना बड़ा खुल्क (सदाचार) है। गुनाह आदमी तीन वजह से तर्क करता है। (१) जिन्नत की ख़ाहिश से, (२) दोज़ख़ के डर से तथा (३) ख़ुदा की शर्म से। जब बन्दा इबादत को ख़ाहिशे नफ़्स पर अफ़ज़ल (महान्) ख़याल करता है तो उसको कमाल हासिल होता है।

कहते हैं कि जब उन्हें मालूम होता कि उनके पास कोई इल्म सीखने आता है तो वे ख़ुदा से दुआ करते कि उसको ऐसा इल्म दे दो कि उसे मेरे पास आने की ज़रूरत ही न पड़े और मुझे तेरी याद से ग़ाफ़िल न करे।

एक व्यक्ति तीस साल से कठोर तप करने में लगा हुआ था। किसी ने पूछा, "तुम्हें यह ताकत कहाँ से मिली?" उसने कहा, "मैंने एक दिन सरी सक़्ती के दरवाजे पर जाकर आवाज़ दी। उन्होंने अन्दर से ही पूछा कि कौन है? मैंने कहा, दोस्त। बोले—अगर आश्ना (परिचित) होता तो याद करता। फिर मेरे लिए दुआ की कि इसको ऐसा कर दे कि किसी की परवाह न रहे। उसी दिन से मेरी तरक्की होने लगी।"

दुनिया से दूर रहने की बात सूफ़ी सन्तों की तरह सक़्ती भी कहते; मगर एक शख्स पहाड़ पर रहने वाले किसी दरवेश का पैग़ाम लेकर जब उनके पास आया तो उन्होंने कुछ और ही बातें कहीं। सक़्ती अपनी दूकान में पर्दा डालकर रोज़ एक हज़ार बार नमाज़ पढ़ते थे। एक दिन कोहे-लबनान पर रहनेवाले दरवेश का सन्देश लेकर जब वह शख्स आया तो पर्दा हटाकर उसने सलाम किया और सन्त ने सलाम भेजा है, ऐसा कहा।

उस समय सलाम के जवाब में सलाम भेजकर उन्होंने यह कहला भेजा, "खल्क से अलग रहकर खालिक की इबादत करना मुर्दों का काम है और ज़िन्दा वे हैं जो खल्क में रहकर हर वक़्त खालिक की याद करें।" (दुनिया में रहकर ईश्वर-भजन करना हर किसी के लिए आसान नहीं। दुनिया की चीज़ें उसके मन को बर्बस अपनी ओर खींच लेती हैं। उनके प्रभाव से दूर रहना ही उसके लिए श्रेयस्कर है।)

पहले वे मेवा बेचने का काम करते थे; मगर एक इरादा कर रखा था कि दस दीनार पर आधे दीनार से ज्यादा मुनाफ़ा न लेंगे। एक बार साठ दीनार के बादाम खरीदे। उसके बाद एकदम बादामों का भाव चढ़ गया। एक दलाल ने नव्वे दीनार पर वह बादाम खरीदने चाहे मगर उन्होंने कहा, मैं अपने इरादे को न तोड़ूंगा और वह बादाम उसके हाथ न बेचे। जिन दिनों ये गिरे-पड़े मेवा बीनकर बेचते थे, बाज़ार में आग लग गई। शुक्राने में उन्होंने सारा माल खैरात में बाँट दिया।

किसी ने सक़्ती से पूछा कि आपको यह मर्तबा कैसे हासिल हुआ। वे बोले, "एक दिन हज़रत हबीब ताई मेरी दूकान पर आये। मैंने कुछ चीजें उनके सामने रखकर कहा—आप इन्हें दरवेशों में तक्सीम कर दें। उन्होंने कहा—'खैर-कुम-अल्लाह।' उस दिन से मेरा दिल दुनिया से एकदम हट गया और अल्लाह की मुहब्बत ने दिल में जगह कर ली। दूसरे दिन हज़रत मारूफ़ करखी एक यतीम बच्चे को अपने साथ लाये और बोले, "इसे कपड़ा पहना दो। मैंने उसे नये कपड़े पहना दिये। उन्होंने दुआ की कि तू दुनिया को अपना दुश्मन समझने लग। उसी दिन से मुझपर खुदा की मेह्र होने लगी।"

इनके शिष्य जुनैद बग़दादी कहते थे कि नसे ज़्यादा इबादत करने वाला मैंने किसी को नहीं देखा। ९८ साल तक कहीं आराम नहीं किया। आबिद और ज़ाहिद वे बहुत ऊँचे दर्जे के थे। चालीस साल तक उनके दिल में शहद खाने की इच्छा रही, मगर उन्होंने नफ़्स की ख़ाहिश पूरी करने से इन्कार कर दिया। वे दिन में कई बार अपनी सूरत आइने में देखते इस ख़याल से कि कहीं गुनाहों के असर से मुंह काला न हो गया हो। वे कहते, "दुनिया का तमाम ग़म उन्हें ही मिल जाय ताकि कोई और ग़म में मुब्तिला न हो।"

जब कोई उन्हें सलाम करता तो वे तुर्श-रू (आवेश में) होकर सलाम का जवाब देते। लोगों ने उनके इस विचित्र व्यवहार का कारण पूछा तो उन्होंने एक मज़ेदार बात कही। वे बोले, "हज़रत नबी ने कहा है कि जब कोई किसी को सलाम करता है तो अल्लाह की तरफ़ से सौ रहमतें नाज़िल होती हैं। उनमें से नब्वे उसको मिलती हैं जो खुश-दिल होता है और दस उसको मिलती है, जो तुर्श-रू होता है। मैं इसलिए सलाम का जवाब तुर्श-रू होकर देता हूँ कि मुझसे ज़्यादा रहमतें सलाम करनेवाले को मिलें।"

एक और भी चोज भरी बात का उल्लेख उनकी जीवनी में आता है। कहते हैं कि यसुफ़ के पिता हज़रत याकूब को जब सक़्ती ने स्वप्न में देखा तो पूछा, "आपके दिल में जब खुदा की मुहब्बत थी तब यूसुफ़ की मुहब्बत क्यों हुई?" उस समय आवाज आई, "ऐ सरी, अदब का लिहाज़ कर।" फिर यसुफ़ का वह इतिहास प्रसिद्ध अलौकिक सौन्दर्य सक़्ती को दिखाया गया। देखते ही चीख मारी और बेहोश हो गए और तेरह दिन तक बेहोशी की हालत में पड़े रहे। होश आने पर यह आवाज़ सुनी, "हमारे हबीबों की जो बुराई करता है उसकी यही हालत होती है।"

आध्यात्मिक लज्जा और प्रेम का आत्यन्तिक स्वरूप एक क़ातिल फ़क़ीर में सरी सक़्ती को देखने को मिला। कहते हैं कि जब सक़्ती उनसे मिले तो पूछा, "नाम क्या है?" फ़क़ीर ने कहा, "हू—अर्थात् वही।" पूछा, "आप क्या खाते हैं? क्या पीते हैं? क्या करते हैं?" हर सवाल के जवाब में फ़क़ीर ने वही एक शब्द 'हू' कहा। तब सक़्ती ने पूछा, "क्या 'हू' से आपका मतलब खुदा से है?" अल्लाह का नाम सुनते ही उस दरवेश के मुख से एक चीख निकली और वहीं उनका खात्मा हो गया। इतना अदब था, इतनी हया थी उनके दिल में कि वे खुद तो नाम नहीं ही लेते मगर दूसरे के मुंह से भी उनका नाम खुल जाने की ताब वे न ला सके।

उनकी बहुत अच्छी नसीहत यह थी कि इन्सान को इबादत जवानी

में करनी चाहिए। और यह बात उन्होंने उस समय कही थी जब वे खुद जवान थे और कोई ज़वान उनके बराबर इबादत करनेवाला नहीं था। जब बगदाद में आग लगी और सब दूकानें जल गईं, मगर उनकी दूकान बच रही, तब उसका उन्होंने शुक्रिया अदा किया था और दूसरों के नुक़सान का कुछ खयाल नहीं किया। उस शुक्रिया के लिए, वे बोले, मैं इन तीन सालों से प्रायश्चित कर रहा हूँ।

जुनैद बग़दादी से सक़्ती ने एक बार मुहब्बत की तारीफ़ पूछी। जुनैद ने कहा, "कुछ लोग मुआफ़क़त (अनुकूलता) और इशारत (संकेत) को मुहब्बत कहते हैं।" सक़्ती ने अपने हाथ की खाल को खींचा पर वह ज़रा भी न उभरी। तब बोले, "अगर मैं यह कहूँ कि मुहब्बत ने मेरी खाल को सुखा दिया है, तो ग़लत न होगा।" यह कहकर सक़्ती बेहोश हो गए। शायद इस शर्म से कि खुद उन्होंने अपनी मुहब्बत का राज़ ज़ाहिर कर दिया। मगर जुनैद कहते कि उनका चेहरा मिस्ल आफ़ताब के रोशन था।

उनका कहना था कि मुहब्बत बन्दे की यह कैफ़ियत कर देती है कि तीर, तलवार, नेजा आदि किसी चीज़ की चोट उसे महसूस नहीं होती। और कहते थे कि पहले मैं मुहब्बत को नहीं जानता था मगर जब अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल से आगाह कर दिया तो मुझे उसकी सिफ़्त मालूम हुई। मुहब्बत का ज़िक्र करते हुए सक़्ती का बेहोश हो जाना और अल्लाह का नाम सुनते ही "हू" से उनका निर्देश करने वाले फ़क़ीर की तात्कालिक मौत इस बात को ज़ाहिर करते हैं कि मुहब्बत पसे-पर्दा (आड़ में) रहना चाहती है।

एक बार सक़्ती सब्र का ज़िक्र कर रहे थे कि उसी समय बिच्छू ने कहीं से निकल कर कई बार उनके डंक मारा। मगर उन्होंने उफ़ तक न की। वे कहते, "ऐ अल्लाह, तेरी अज़मत ने मुझे मनाज़ात (अपने लिए ईश-प्रार्थना) से बाज़ रखा, तेरी मारिफ़त ने उन्स अता किया। अगर ज़ुबान से याद करने का हुक्म न देता तो कभी ज़ुबान से याद न करता क्योंकि ज़ुबान तेरे औसाफ (गुणावली) अदा नहीं कर सकती।" जुनैद से उन्होंने कहा कि बग़दाद में मरना नहीं चाहते क्योंकि ज़मीन उन्हें कबूल नहीं करेगी और जो लोग उन्हें अच्छा समझते हैं, उनके दिल को सदमा होगा।

सन्त सक़्ती के अन्त समय जुनैद, जो उनके प्रिय शिष्य और सगे भान्जे थे, उनसे मिलने आये। वे गरमी के दिन थे और जुनैद ने पंखा झलना शुरू किया तो उन्होंने यह कहकर मना कर दिया कि हवा से आग भड़कती है। जुनैद ने मिज़ाज पूछा तो उन्होंने एक आयत पढ़ी जिसका आशय यह है—बन्दा तो अपने मालिक की मिल्कियत है, उसकी अपनी कोई चीज़ नहीं।

जुनैद ने अपने महान गुरु से जब आखरी नसीहत चाही तो कहा, "खल्क में रहकर खालिक से गाफ़िल मत हो।"

: १४ :

यूसुफ़-बिन-हुसैन

ख्वाब में किसी के यह पूछने पर कि बहिश्त में यह आला दर्जा आपको क्योंकर मिला, यूसुफ-बिन-हुसैन ने एक बड़ी दिलचस्प बात बताई। वे बोले, "मैंने दुनिया में बुरी बात को अच्छी बात के साथ नहीं मिलाया।" यह बहुत सीधी और मार्के की बात है। दुनिया में बहुत-सी अच्छी बातें हैं और बहुत-से ऐसे लोग हैं जिन्हें वे बातें अच्छी लगती हैं; मगर ऐसे बहुत कम लोग हैं, जो अच्छी बातों को किसी प्रकार की मिलावट के बिना अमल में लाएं।

इस कथा के नायक यूसुफ़-बिन-हुसैन अपनी साधना के प्रारम्भ में अपने कलामय सौन्दर्य और आध्यात्मिक आकर्षण के कारण एक अरब सरदार की लड़की की नजरों में, जो खुद भी बड़ी रूपवती थी, कुछ इस तरह चढ़ गए कि वह अपने को संभाल न सकी। एक दिन वह मौक़ा पाकर एकान्त में उनसे मिली मगर हुसैन सौन्दर्य के उस अनन्य सागर के प्रेम में कुछ ऐसे डूब चुके थे कि सरदार की उस लड़की की बात सुनते ही उनपर वहशत-सी तारी हुई और वे उसकी बात का कुछ उत्तर दिये बिना ही वहाँ से बेतशाहा भाग खड़े हुए। उसी रात को उन्होंने एक बड़ा मज़ेदार स्वप्न देखा।

स्वप्न यह था—उनके नाम-राशि और सुन्दरता में साथी हजरत यूसुफ़ जन्नत में एक तख्त पर बैठे हैं। उनके सामने फ़रिश्ते कतार बांधे निहायत अदब से खड़े हैं। इन्हें देखकर पैग़म्बर यसुफ़ उनके इस्तिक़बाल के लिए तख्त से उठे और फिर प्रेमपूर्वक हाथ पकड़कर उन्हें अपने पास बिठा लिया और कहा, "जिस वक़्त तुमसे अरब के सरदार की लड़की ने नफ़्स परस्ती (कामवासना) क़ी खाहिश की थी और तुम पर खौफ़े-लाही तारी (प्रभु-भय छा गया था) हुआ था तो अल्लाह ने मुझसे

फ़र्माया कि ऐ यूसुफ़, देखो, तुमने जुलेखा से बचने के लिए तो मुझसे दुआ की थी और ये यसुफ़ है, जिसने मेरे खौफ़ की वजह से सरदार की लड़की की ओर ध्यान भी न दिया।"

इसके बाद अल्लाह का मुझे हुक्म हुआ कि हुसैन से मिलो और कहना कि तुम चुने हुए ज़ाहिदों में होगे। उसी ख्वाब में हज़रत यसुफ़ ने हुसैन को यह सलाह दी कि तुम जू-उल-नून मिस्री के पास जाओ और उनसे इस्मे-आंजम (महामंत्र) हासिल करो। जब वे जागे तो जू-उल-नून से मिलने के लिए मिस्र की ओर रवाना हुए और एक साल तक गोशानशीनी की; मगर अदब की वजह से उनसे उन्होंने अपने आने की वजह ज़ाहिर न की। एक साल के बाद जू-उल-नून ने पूछा, "तुम किस लिए आये हो?" तो इतना ही कहा, "आपके दीदार और आपकी खिदमत के लिए।"

एक साल के बाद जू-उल-नून ने फिर कहा कि अगर तुम्हारी कोई ख्वाहिश हो तो कहो। तब वे बोले, "इस्मे आज़म हासिल करना चाहता हूँ।" सुनकर जू-उल-नून चुप हो गए और एक साल तक उनकी बात का कोई जवाब न दिया। एक दिन एक प्याले में कुछ ढककर हुसैन को दिया और कहा कि नील-दरिया के पास जाकर फुलाँ शख्स (अमुक व्यक्ति) को यह प्याला देना, वह तुम्हें इस्मे आज़म (महामंत्र) सिखायगा। ये उसे लेकर चले; मगर खयाल आया, न जाने इसमें क्या है। खोला तो उसमें चूहा था और वह कूदकर भाग गया। हुसैन को अपने इस अमर पर बड़ी शर्म आई; मगर प्याले को बदस्तूर ढककर उन्होंने उस सन्त को जाकर दे दिया।

सन्त ने प्याला खोला तो खाली था। बोले, "जब तुम एक चूहे की ही हिफ़ाज़त न कर सके तो इस्मे-आज़म की हिफ़ाज़त क्योंकर करोगे?" शर्मिंदा होकर वे जू-उल-नून के पास वापिस आये। जू-उल-नून ने कहा, "मैंने साल भर अल्लाहताला से इजाज़त चाही कि तुझे इस्मे-आज़म बता दूं, हर बार यही जवाब मिला कि अभी उसकी आज़माइश (परीक्षा) करो। तुम्हारी आज़माइश के लिए ही मैंने प्याले में चूहा बन्द करके दिया था। मगर ज़ाहिर है कि अभी इस्मेआज़म की हिफ़ाज़त करने की ताक़त तुममें नहीं आई है। अब तुम अपने मुल्क जाओ और जब तुम वहाँ पहुँचोगे तो इस्मेआज़म तुम्हें मिल जायगा।"

हुसैन ने जू-उल-नून से दुआ की कि कुछ नसीहत करें। जू-उल-नून बोले, "जो कुछ तुमने लिखा-पढ़ा है, सबको भुला दो, ताकि हिजाब उठ जाय। दूसरे, मुझे भी भुला दो और किसी के सामने पीर या शेख कहकर ज़िक्र न करना।" हुसैन बोले, "ये दोनों काम तो मुझसे नहीं हो सकते।"

नून ने कहा, "तीसरी बात यह है कि खल्क को नसीहत करो और अल्लाह की ओर बुलाओ और अपनेको दरम्यान में ख़याल न करो।" हुसैन बोले, "इंशाअल्लाह, इस काम को मैं अन्जाम दूंगा।" फिर अपने मुल्क में वापस आकर लोगों को वाज़ देने लगे। किन्तु जब इन्होंने धर्मोपदेश देना शुरू किया तो वहाँ के उल्माए-ज़ाहिर (बड़े-बड़े विद्वान) ने इनका विरोध किया और लोग इनसे खिंच गए। यहाँ तक कि एक दिन जब वे उपदेश देने पहुँचे तो देखा कि उपदेश सुनने कोई न आया था।

यह हालत देखकर उन्होंने इरादा किया कि आज वाज़ न करूँगा। इतने में एक बुढ़िया ने आकर कहा कि ज़ू-उल-नून मिस्री से जब तुमने वादा किया है कि खल्क को नसीहत करूंगा और दरम्यान में अपने को न समझूंगा तो फिर अपने इक़रार से क्यों मुकरते हो? उन्होंने समझा, इस वृद्धा के ज़रीआ अल्लाह ही उन्हें चेतावनी दे रहा है। उन्होंने उस दिन वाज़ किया और इसके पश्चात पचास साल तक वे वा'ज़ करते रहे। और कभी इसका खयाल न किया कि लोग हैं कि नहीं।

हुसैन अगर्चे इब्राहीम खवास के रहनुमा थे, मगर इन्हीं के ज़रीआ अल्लाह ने एक बार हुसैन को एक कड़ी फटकार भेजी। अल्लाह की इस नाराज़ी का सबब क्या था, यह तो ज़ाहिर हुआ नहीं; पर एक दिन ख्वाब में इब्राहीम को यह हुक्म हुआ कि हुसैन से जाकर कह ो कि तू रांद-ए-दर-गाह है। जब वे जागे तो हुसैन से इस ख्वाब का ज़िक्र करते हुए भी उन्हें शर्म आई। दूसरी रात फिर यही ख्वाब देखा। मगर इब्राहीम ने अदब का खयाल करके फिर उनसे कुछ न कहा। तीसरी बार उन्होंने यह ख्वाब देखा कि अल्लाह हुक्म दे रहा है, "ऐ इब्राहीम, हुसैन से कह दे कि तू दरगाह से निकाला हुआ है और अगर न कहेगा तो तुझे सख्त अज़ाब (यातना) मिलेगा।"

जब वे जागे तो मजबूर होकर हुसैन के पास खुदाई हुक्म सुनाने के लिए हाज़िर हुए। मगर हुसैन ने आते ही उनसे कहा कि अगर कोई अच्छा-सा शेर तुम्हें याद हो तो सुनाओ। इब्राहीम ने शेर सुनाया और उसे सुनकर वे कुछ ऐसे प्रभावित हुए कि देर तक बैठे रोया किये। यहाँ तक कि उनकी आँख से लहू टपकने लगा। वे बोले, "कुछ लोग कुरान सुना रहे थे मगर उससे भी मुझे इतनी रिक़्क़त (नम्रता) न हुई जितनी कि इस शेर को सुनकर हुई और लोग मुझे जो ज़िन्दीक़ कहते हैं, वह सच ही कहते हैं। और अल्लाह ने जो मुझे रांद-ए-दरगाह कहा, सो यह खिताब मेरे लिए दुरुस्त है।"

इब्राहीम उनका यह हाल देखकर बड़े हैरान हुए और कुछ परेशान

से होकर जंगल की ओर निकल गए। वहाँ उन्हें खिज्र के दर्शन हुए। खिज्र ने कहा कि हुसैन तेग़े-इश्के-इलाही (प्रभु-प्रेम की तलवार) का घायल है। खिज्र ने आगे यह बात कही कि जो शख्स अल्लाह का हो जाता है उसे अगर बादशाहत नहीं मिलती तो वज़ारत (मंत्रि-पद) जरूर हाथ आती है।

अब्दुल वाहिद की ज़िंदगी को भी बनाने में उन्होंने मदद दी। कहते हैं कि पहले ये बहुत आवारागर्द और शरीर (शरारती) थे। माँ-बाप से लड़ते और भागे-भागे फिरते। एक बार ये हुसैन की मजलिस में आये तो उस वक़्त आयत को सुनाकर वे कह रहे थे कि अल्लाह अपने बन्दे को इस तरह अपनी ओर बुलाता है जैसे वह उसका मुहताज हो। अब्दुल वाहिद पर इसका ऐसा असर हुआ कि वह कपड़े फाड़कर कब्रिस्तान की ओर भाग गये। उसी दिन हुसैन को यह आवाज़ आई कि उस तौबा करने वाले नौजवान को ढूँढ़ो। वे तलाश में निकले और तीन दिन में उन्हें कब्रिस्तान में पाया। मगर इन तीन दिनों में ही वे इस दर्जे पर जा पहुँचे कि हुसैन से बोले, "तीन दिन पहले आपको हुक्म हुआ और आप अब आये।"

उस्मान हैरी नामक सन्त को भी एक बड़ी अजीबोग़रीब हालत में खुदा ने इनसे उपदेश दिलाया। नेशापुर का एक व्यापारी एक खूबसूरत तुर्की बांदी को, जिसे उसने हाल ही में हज़ार दीनार में खरीदा था, इनकी बीवी के पास छोड़कर किसी से अपना कर्ज वसूल करने परदेस गया। उस्मान उस बांदी को अपने पास रखने को राज़ी न थे। मगर व्यापारी की बात को वे टाल न सके। एक दिन उस बांदी पर उनकी नज़र जो पड़ी तो दिल बेक़रार हो गया। इस बला से छूटने के लिए वे अपने पीर के पास पहुँचे। मगर उन्होंने हुसैन के पास जाने की सलाह दी। लम्बा सफ़र तय करके वे हुसैन के शहर में पहुँचे; मगर वहाँ उनकी बदनामी सुनकर वे लौट आये। उस्ताद ने फिर उन्हीं के पास भेजा। मजबूरन वे जाकर उनसे मिले।

पहले ही से वे उनकी बड़ी बदनामी सुन चुके थे। पर अब जो उनके पास पहुँचे तो देखा कि एक खूबसूरत लड़का उनके पास बैठा है और जामो-सुराही भी रखी है। इन्होंने सलाम किया, जिसका जवाब देते हुए हुसैन ने जो-कुछ कहा उसे सुनकर ये बेखुद-से हो गए। फिर पूछा, "आपने बाहरी रूप ऐसा क्यों बनाया है कि जिससे लोग आपको बुरा कहें।" वे बोले, "देखो यह लड़का मेरा बेटा है, मैं इसे कुरान पढ़ाता हूँ। इस सुराही में हम लोगों के पीने के लिए पानी है। सच पूछो तो मैंने ज़ाहिर को खराब इसलिए बना रखा है कि कोई खूबसूरत तुर्की लौंडी मेरे सुपुर्द न करे।"

उस्मान समझ गए कि अल्लाह को दोस्त रखने वाले खल्क से दूर ही रहते हैं।

कहते हैं कि हुसैन की इबादत का यह हाल था कि शाम की नमाज पढ़ने खड़े होते तो इसी हालत में सुवह कर देते। जुनैद को इन्होंने लिखा था कि अगर अल्लाह ने तेरे नफ़्स का ज़ायका चखाया तो तुझे कोई मर्तवा हासिल न होगा। सबसे अच्छी चीज़ इखलास है। मक्कारी को छोड़ देना दीदारे-इलाही हासिल होने से अच्छा है। कहते—जो दरियाए तौहीद (प्रभु-रूपी सरिता) में ग़र्क होता है, कभी उसकी प्यास नहीं वुझती। जो दिल से अल्लाह को याद करता है, अल्लाह और सबकी याद उसके दिल से दूर कर देता है।

: १५ :

हातम असम

बग़दाद जाने पर खलीफ़ा ने जब मिलने के लिए वुलाया तो हातम ने इस्लामी दुनिया के सबसे बड़े नेता का अभिनन्दन करते हुए कहा: अस्सलामालिकुम या ज़ाहिदा ! ऐ त्यागी सन्त तुझे नमस्कार ! वह वोला, "ज़ाहिद मैं नहीं, ज़ाहिद तो आप हैं।" हातम ने उत्तर दिया, "अल्लाहताला का इरशाद है, 'कुल मताउद दुनिया फ़िल आखिरतिइल्ल क़रीब'—ऐ मुहम्मद, लोगों से कह दो कि पूंजी दुनिया की बहुत थोड़ी है। और इस थोड़ी पूंजी पर ही तूने क़नाअत (संतोष) की है। बस तू ज़ाहिद हुआ और इधर मैं कि दुनिया की हिशमत (ऐश्वर्य और रौव) की तो वात ही क्या, आखिरत यानी वहिश्त की ला-इन्तिहा (असीम) दौलत और शान-शौक़त पर भी सन्तुष्ट नहीं तो फिर मैं भला तेरे खयाल के मुताविक ज़ाहिद या त्यागी कैसे हो सकता हूँ ?"

हातम ने अपनी वैराग्य-भावना की ओर एक मज़ेदार ढंग से इशारा करके खलीफ़ा के मन को जागृत करने का प्रयत्न किया था। पर आज संसार के अधिकांश लोग दुनिया की किन्हीं छोटी-मोटी चीजों की खातिर स्वर्ग और नरक सभी को तिलांजलि देने को तैयार बैठे हैं ! लेकिन हातम के समय में स्वर्ग और नरक की मान्यताएं वड़ी सजीव और लोगों

के जीवन पर प्रभाव डालने वाली थीं। एक बार किसी ने सन्त हातम की दावत की। तीन शर्तों पर उन्होंने उसे मन्जूर किया। १. जहाँ चाहूँगा बैठूंगा और वह जूतों के पास जाकर बैठे। २. जो चाहूँगा खाऊँगा, और उन्होंने सिर्फ दो रोटियां खाईं। तीसरी शर्त थी, जो कहूँ वह करना होगा और उन्होंने गरम तवा मंगाया।

मकान-मालिक जब तवा गरम करके लाया तो वो उस पर खड़े होकर बोले, "मैंने दो रोटियां खाई हैं।" फिर तवे पर से उतरकर लोगों से कहा, "क्या तुम्हारा यह यक़ीन है कि क़यामत में ज़र्रे-ज़र्रे का हिसाब देना होगा? अगर है तो इस तवे पर खड़े हो!" लोगों ने कहा, "हमारा यक़ीन तो ऐसा ही है पर हम इस तवे पर खड़े नहीं हो सकते।" हातम बोले, "जब तुम इस तवे पर खड़े होकर एक दिन का हिसाब नहीं दे सकते तो क़यामत के दिन उस ज़मीन पर खड़े होकर, जो सरापा (नितांत) आग होगी, सारी ज़िन्दगी का हिसाब कैसे दोगे?"

हातम ने यह बात कुछ इस सहृदय निष्ठा और भावुकता के साथ कही कि लोगों को ऐसा महसूस हुआ कि मानो क़यामत का रोज़ बिल्कुल सामने है और उन्हें हिसाब देने के लिए चन्द ही घड़ियों में पेश होना है। ज़ियाफ़त (भोज) के बाद लोग हँसते-बोलते हैं; मगर यहाँ जो भी था, वह हातम की बातें सुनकर बेक़रार होकर रो रहा था। उस दिन पाई-पाई का हिसाब देना होगा इसी खयाल से नौशेरवाँ अपनी बेग़म को रोटी पकाने के लिए हाथ जल जाने पर भी दासी देने को राज़ी न हुआ।

रोज़ी देने वाला ईश्वर है। इस सिद्धान्त पर उनका अटल विश्वास था। एक मालदार उन्हें कुछ देने के लिए इसरार (आग्रह) करने लगा तो वे बोले, "जब तू मर जायगा तो मुझे अल्लाह से कहना होगा कि मेरा ज़मीन का रोज़ी देनेवाला उठ गया; अब तू मेरी खबर ले।" इसी रोज़ी के मामले में एक आदमी से उनकी खासी बहस हो गई। वह बोला, "यह सब झूठ है कि रोज़ी आस्मान से उतरती है, और कि रोज़ी देने वाला अल्लाह है। मैं तो जब जानूं कि तुम एक जगह बैठ जाओ, कहीं न आओ-जाओ और रोजी बिना मांगे, बिना मेहनत के तुम्हारे पास पहुँच जाय।"

वह दो साल तक एक जगह लेटे रहे और रोज़ी उनको मिलती रही। कहते हैं कि उन दिनों रोजी हातम के मुंह में अल्लाह की तरफ़ से आती थी। मगर उसे तसल्ली न हुई। वह बोला, "आप हवा या ज़मीन में जाओ तब देखूं कि कैसे आपको रोज़ी मिलती है।" हातम बोले, "अल्लाह हवा में परिन्दों को और ज़मीन में चींटियों को रोज़ी देता है।" यह बात

सुनकर वह खामोश हुआ। उसने तौबा की और फिर कुछ नसीहत चाही। हातम बोले, "दुनिया से किसी तरह की ख़ाहिश न रख। अल्लाह की इबादत में लग जा इस तरह कि कोई न जाने; और मख़लूक़ को भूल जा।"

किसी और ने पूछा, "आपको रोज़ी कहाँ से मिलती है?" तो बोले, "ख़ुदा के ज़मीन और आस्मान के ख़ज़ानों से।" इसी सिलसिले में सन्त अहमद हंबल से वह एक दिन पूछ बैठे, "आप रोज़ी की तलाश करते हैं कि नहीं।" वह बोले, "तलाश करता हूँ।" हातम ने पूछा, "वक्त से पहले, या वक्त के पीछे या ठीक वक्त पर ही आप रोज़ी तलाश करते हैं?" सवाल निहायत माक़ूल था जिसके औचित्य को समझ कर ही हम्बल खामोश हो गए। क्योंकि यदि यह कहा जाय कि समय के पहले या पीछे तलाश करते हैं तो बे-वक्त तलाश ठीक नहीं और जिसका समय आ गया उसकी तलाश फ़िज़ूल।

एक सन्त ने यह प्रश्न सुनकर कहा, "तलाशे-रोज़ी न हम पर फ़र्ज़ है, न वाजिब, न सुन्नत (पद्धति)। जो इससे बाहर हो उसकी तलाश बेसूद (व्यर्थ)। रोज़ी हमको ढूंढ़ती है।" मुहम्मद ने भी कहा है कि रोज़ी खुद ही तुम्हारे पास आती है; फिर हम उसे क्यों ढूँढ़ें? हातम ने इस प्रश्न का जो निष्कर्ष निकाला वह यह है—हमें अल्लाह की इबादत करनी चाहिए, जो उसने हमको हुक्म दिया है और अल्लाह रिज़क (जीविका) देगा जैसा कि उसने वादा किया है।

हामिद लफ़ाफ़ नाम के सन्त कहते थे कि हातम अक्सर मुझसे ज़िक्र करते, "हर सुबह शैतान मुझे बहकाने आता है और पूछता है कि आज तू क्या खायगा, क्या पहनेगा और कहाँ रहेगा? मैं जवाब देता कि मौत खाऊँगा, क़फ़न पहनूंगा और कब्र में रहूँगा।" शैतान यह कह कर चला जाता कि तू बड़ा सख्त मर्द है। हातम तो सख्त थे ही पर उनकी बीवी भी कुछ कम न थी। हातम जब जहाद पर जाने लगे तो बीवी से पूछा, "चार माह के लिए जाता हूँ, तुम्हें कितने पये खर्च के लिए दूं?" बीवी बोली, "पहले यह बताइए, मेरी ज़िन्दगी कितनी है?" बोले, "यह तो मुझे मालूम नहीं।" बीवी ने कहा, "फिर मेरी रोज़ी क्योंकर आपके हाथ हो सकती है?"

लोगों ने किसी शख्स का ज़िक्र करके कहा कि उसने बहुत-सी दौलत जमा की है। हातम ने पूछा, "क्या उसने ज़िन्दगी भी जमा की है?" कहा, "नहीं।" हातम बोले, "तब मुर्दे का (विनाशकारी) माल जमा करना बेकार।" किसी ने हातम से आकर कहा, "आपको अगर कोई हाजत

हो तो बयान कीजिए।" हातम बोले, "मेरी यही हाजत है कि न तू मुझे देखे और न मैं तुझे देखूं!" किसीने पूछा, "आप नमाज़ क्योंकर पढ़ते हैं?" बोले, "जब नमाज़ का वक्त होता है—वुज़ू करता हूं, और बातिनी वुज़ू यानी तौबा करके मस्जिद में दाखिल होता हूं, पुलसरात को पैरों के नीचे, मौत के पीछे और अल्लाह को सामने समझ कर दिल को अल्लाह की तरफ़ रुजु करके नमाज़ के फ़रायज़ (कर्त्तव्य) अदा करता हूँ।"

किसी व्यक्ति ने उनसे नसीहत चाही तो कहा, "अगर दोस्त का तालिब (इच्छुक) है तो अल्लाह काफ़ी है; अगर हमराही (साथी) चाहता है तो ख़िज्र जैसे वली काफ़ी हैं; अगर इब्रत (शिक्षा) चाहता है तो दुनिया काफ़ी है; अगर मूनिस (मित्र) चाहता है, कुरान काफ़ी है; अगर शग़्ल (व्यस्तता) चाहता है तो इबादत (उपासना) काफ़ी है; अगर वाज़ (नसीहत) चाहता है तो मौत काफ़ी है; और अगर मेरी तमाम बातें तुझे नापसन्द हों तो दोजख तेरे लिए काफ़ी है।" एक रोज़ हामिद लफ़ाफ़ नामी सन्त से पूछा, "किस हाल में हो?" वह बोला, "सलामत (सुरक्षा) और आफ़ियत (चैन) में।" हातम ने कहा, "सलामत पुलसरात पर गुज़रने के बाद और आफ़ियत जन्नत स्वर्ग में दाखिल होने के बाद है।"

लोगों ने पूछा, "आपकी आर्ज़ू (मनोकामना) क्या है?" बोले, "बस यह कि आफ़ियत से दिन गुज़रे।" लोगों ने कहा, "आपको तो हर वक्त आफ़ियत हासिल है।" बोले, "मैं आफ़ियत उसे समझता हूँ कि दिन भर में कोई गुनाह न हो।" विद्वत्-समाज के पास से एक दिन जब वह गुज़र रहे थे तो उपस्थित विद्वानों से उन्होंने कहा, "अगर तुम्हें गुज़रे हुए दिन पर अफ़सोस है इसलिए कि उसका अच्छे-से-अच्छा इस्तेमाल न किया जा सका और आज के दिन को ग़नीमत जानते हो और कल जो पेश आयगा उससे खौफ़ज़दा हो तो खैर वरना दोजख का खतरा है।"

बोले—निजात की उम्मीद में इन्सान अल्लाह का फ़रमा-बरदार (आज्ञाकारी) बन्दा बने। उन्होंने कहा—किब्र (बुज़ुर्गी), हिर्स (लोभ) और खुद-आराई (स्वयं सज्जित) की हालत में मौत से डरना चाहिए। क्योंकि तक़ब्बुर (द) करने वाले को मिस्ल मुतकब्बिरों (घमण्डियों) के और हिर्स करने वालों को मिस्ल हरीसों (लोभियों) के और खुद-आराई करने वालों को मिस्ल खुद-आराओं के मौत देता है। और साथ ही कहा—इस ज़माने में बादशाहों और अमीरों से ज्यादा तकब्बुर आलिमों और ज़ाहिदों को होता है। बोले— ीन की राह पर चलने वालों

को तीन मरहले दरपेश आते हैं, भूखा मरना, कुछ न मिलने पर सब्रोकरार (धैर्य और संतोष) रखना और खिरक़ापोशी।

बोले—सजे हुए बाग़ों पर गर्व न करो क्योंकि जिन्नत के बाग़ से ज्यादा सजा हुआ दुनिया का कोई बाग नहीं। अपनी इबादत पर घमंड न करो क्योंकि इबलीस इन्तिहा इबादत के बावजूद भी खुदा के दरबार से निकाल दिया गया। अपनी करामात यानी चमत्कारों की ताकत पर भी ग़रूर न करो क्योंकि बलम बऊर ज़ाहिद होने पर भी खुदा की मलामत (भर्त्सना) का शिकार हुआ। वह ज़ाहिद था, करामाती था; मगर ग़रूर के सबब अल्लाह ने कहा, "यह कुत्ते की मानिन्द है।"

कहा—दिल पांच क़िस्म के हैं। १. मुर्दादिल; यह काफ़िरों यानी अनीश्वरवादियों के लिए है। २. बीमार दिल; यह गुनाहगारों के लिए है। ३. ग़ाफ़िल दिल, यह शिकमख्वारों यानी भोजन-भट्ट पेटुओं के लिए है। ४. वाज़गुंदिल यानी पिछड़ा हुआ दिल, यह यहूदियों के लिए है। ऐसे लोगों के लिए अल्लाहताला का इरशाद है कि वे कहते हैं हमारे दिल पर्दे में हैं। ५. सही दिल, यह साहब दिलों (उदार चित्त) के लिए है। कहा—अमल करते समय अल्लाह को ऐसा जानो कि वह देख रहा है। बात करते समय ऐसा समझो कि वह सुन रहा है। और खामोशी के वक्त यह समझो कि तुम्हारे दिल में जो भी खयाल उठ रहे हैं, उन्हें वह जानता है।

उनका कहना था कि शहवत अर्थात् वासना तीन तरह की होती है। एक खाने में, दूसरे बोलने में और तीसरे देखने में। अतः खाने में अल्लाह पर भ सा रखो और बोलते समय सच कहो और देखो इस तरह कि दुनिया से इब्रत हासिल हो।

और आगे कहा—अमल-सालेह (पुण्य-कर्म) करते वक्त रिया (पाखण्ड) को दख़ल न दे और बोलते वक्त तमा को दूर कर और मुरव्वत और सखावत करके अहसान न जता। अमल-सालेह से अभिप्राय सम्भवतः यह है कि किसी नेक काम के समय बेईमानी या मक्कारी की भावना को पास नहीं आने दे। दूसरे, बात बोलते समय तमा को दूर कर। जब बोले तो किसी के हित की ही बात कहे और ऐसे समय निष्काम भाव से लोभ और लालच को दिल से निकालकर ही बात करे। तीसरे, दान करके जो एहसान जताता है उसको दान नहीं कहा जा सकता। वह तो दान के नाम पर सौदा करना है।

सी सिलसिले में एक चौथी बात भी उन्होंने कही थी और वह यह है कि जो चीज़ तेरे पास हो उसमें कजूसी न कर। खाने-पीने की जो चीज़ें लोगों के पास होती हैं, उन्हें अक्सर वह आगे के लिए जमा करके रखते हैं

और ज़रूरत पड़ने पर दूसरों को देने में हिचकते हैं। ख़ुदा की दी हुई चीजों को क़ैद न करो—खाओ और खिलाओ।

हातम ने आगे कहा—अल्लाह की मर्ज़ी पर राज़ी रहनेवाले को अल्लाह दोस्त रखता है और क़ौल (वचन) पूरा करनेवाले का मर्तबा ऊचा होता है। और कहा—ताज़ील (शीघ्रता) करना हरकते शैतान है। मगर मेहमान के आगे खाना रखने में, मइयत (हमराही) की तहज़ीज़ और तकफ़ीन (मान और प्रतिष्ठा), बालिगा के निकाह (वयस्क-विवाह) में, अदायेदीन (धर्म-पालन) में और गुनाह से तौबा करन में. ताज़ील यानी जल्दबाज़ी बहुत अच्छी है।

किसी ने पूछा, "आप किसी से कुछ लेते क्यों नहीं ?" बोले, "लेने में मेरी ज़िल्लत (अपमान) और उसकी इज्ज़त है। एक बार किसी से कुछ ले लिया। पूछा गया तो कहा, "मझे अपने से उसकी इज्ज़त ज्यादा मतलूब (अपेक्षित) है।"

हातम की ज़िन्दगी का मज़ेदार पहलू यह है कि वह बरसों तक बहरे होने का ढोंग बनाए रहे। उनका नाम ही पड़ गया हातम असम यानी बहरे हातम। एक औरत को शर्मिंदा न होना पड़े इसीलिए उन्होंने यह ज़ाहिर कर दिया कि वह ऊँचा सुनते हैं। और जब तक वह औरत ज़िंदा रही हातम का यह बनावटी ढोंग बराबर जारी रहा।

सन्त जुनैद बग़दादी की हातम में बड़ी श्रद्धा थी और कहा करते थे कि वह हमारे ज़माने में सिद्दीक है। नफ्स की शनाख्त (पहचान) और उसके मक्रो-फ़रेब (दाँव-पेंच) से बचने के सम्बन्ध में इन्होंन बहुत कुछ कहा। और लोगों से कहा करते थे कि मखलूक़ मेरे बाद तुमसे पूछे कि तुमने हातम से क्या सीखा तो यह न कहना कि इल्मे हिक़मत (बुद्धिमत्ता का ज्ञान) सीखी है बल्कि कहना हमने उनसे दो चीज़ सीखी हैं:—

१. खुरसन्दी अर्थात आनन्दमय सन्तोष उस चीज़ पर जोकि अपने कब्ज़े में हो। दूसरे, नाउम्मेदी अर्थात वितृष्णता उस चीज़ से जो अपने कब्ज़े में न हो।"

लोगों ने पूछा—शाइस्ता किसे कहते हैं ? शाइस्ता अर्थात सुसंस्कृत वह है जो मालिक से डरे और मखलूक से किसी तरह की कोई उम्मीद न रखे। कहा जाता है कि हातम के सत्संग से बहुत से लोगों ने लाभ उठाया और आध्यात्मिकता की ऊँची श्रेणियों पर जा पहुँचे। एक बार बलख में प्रवचन करते वक्त कह बैठे "या इलाही, इस महफ़िल (सभा) में, जो सबसे ज्यादा गुनाहगार हो, उसे बख्श दे।" उसमें एक कफ़न-चोर भी था और रात को जब कफ़न चुराने को उसने क़ब्र खोदी तो आवाज आई—"आज

ही तो हातम की महफ़िल में बख्शा गया और आज ही फिर चोरी !" उसने तौवा की और अपना वह पापकर्म छोड़ दिया।

मुहम्मद राज़ी नाम के संत कहते थे कि हज़रत हातम को गुस्सा करते मैंने कभी नहीं देखा, सिवा एक दफ़ा के। और किस्सा इस तरह है—वे अपने शागिर्दों के साथ बाज़ार जा रहे थे। उनके एक शागिर्द ने किसी एक दुकानदार से कुछ उधार लिया था। वह सख्त कलामी (कटु शब्द) से दाम मांगने लगा। हातम ने कहा, देख सख्त कलामी न कर। दूकानदार बोला—मुद्दत से इन पर मेरे दाम आते हैं। सख्त कलामी न करूँ तो क्या करूँ ? मैं तो अभी दाम ले लूंगा। गुस्सा होकर उन्होंने अपनी चादर ज़मीन पर पटक दी। सड़क पर सोना-ही-सोना फैल गया। वोले—दाम भर सोना ले ले यदि ज्यादा लिया तो तेरा हाथ खुश्क हो जायगा। उसने लोभ में आकर ज्यादा ले लिया और जैसा कहा था. उसको वैसा ही फल मिल गया।

: १६ :

अब्दुल्ला-बिन-मुबारिक

कहते हैं कि अब्दुल्ला पहले किसी दासी के इश्क में इतने मुब्तिला हो गए थे कि उनको किसी बात का ख़याल ही न रहा। एक रात को जब वह उससे मिलने गये तो उसके घर से कुछ दूर सारी रात उसके इंतज़ार में खड़े रहे। वह रात भी सर्दी की थी। इसी इंतज़ार में जब सुबह हो गई तो उन्हें रात के बेकार जाने का अफ़सोस हुआ। सोचा, अगर मैं रातभर अल्लाह की इबादत करके जागता तो क्या ही अच्छा होता। वह जागना इससे हज़ार दर्जे बेहतर होता।

बस वहीं से दिल में चोट लगी। दुनिया की ओर से दिल में वैराग्य पैदा हुआ और खुदापरस्ती की लौ लग गई। जिस लगन से वह दुनियावी मुहब्बत में मशगूल थे उससे भी ज्यादा तेज़ी के साथ खुदा की ओर चले। खुदा की मेह्र तो थी ही, क्योंकि एक बार जब उनकी माँ उन्हें ढूंढ़ने निकली तो देखा कि बाग़ में वह लेटे हुए हैं और एक सांप नरगिस की शाख से पंखा झल रहा है।

अब्दुल्ला ने अपना कुछ ऐसा तरीका बना लिया था कि एक साल वह हज करते, एक साल जिहाद में जाते और एक साल तिजारत (व्यापार) करते और उससे जो मुनाफ़ा होता उसे जायज़ (अधिकारी) लोगों को देते और फ़क़ीरों को खुर्मे खिलाते। फिर उनकी गुठलियाँ गिनकर, जो जितने खुर्मे खाता उतने ही दिरम देते। कहते हैं कि एक बद-खसलत (बुरे स्वभाव) आदमी कुछ दिनों तक उनकी सुहबत (संगत) में रहा। जब वह जुदा हुआ तो यह बहुत रोये और बोले, "अफ़सोस, वह मुझसे जुदा हुआ; मगर उसकी बद-खसलत उससे जुदा न हुई।"

एक बार अब्दुल्ला हज को क़ाफ़िले के साथ जा रहे थे तो एक फ़क़ीर भी साथ हो लिया। उन्होंने शायद मज़ाक में उससे कहा, "हम दौलतमन्द हैं, हमें अल्लाह ने हज के लिए बुलाया है, तुम क्यों तुफ़ैली (अनिमंत्रित) बने साथ चलते हो?" फ़क़ीर ने जवाब दिया, "जो मेज़बान (अतिथि की पूजा करनेवाला) करीम (दयालु) होता है वह मेहमान से भी ज्यादा तुफ़ैली की खातिर करता है; उसने यानी अल्लाह ने तुम्हें अपने घर में और मुझे अपने पास बुलाया है।" अब्दुल्ला बोले, "वह तो हम दौलतमन्दों से कर्ज़ मांगता है।" फ़क़ीर ने कहा, "हमीं लोगों के लिए कर्ज़ भी मांगता है।" अब्दुल्ला बोले, "तुम यह सच कहते हो!"

तक़वा यानी इन्द्रिय-निग्रह का वह बड़ी बारीकी से पालन करते थे। कहते हैं कि सफ़र में एक मंज़िल पर उतरकर वह नमाज़ पढ़ने लगे और घोड़ा छटकर एक शख्स के खेत में चरने लगा। जब नमाज़ से फ़ारिग हुए तो घोड़े को खेत में चरते देख बहुत नाराज़ हुए और उसे छोड़कर पैदल ही सफ़र करने लगे। इसी तरह की एक कहानी और है। किसी व्यक्ति से लिखने के लिए क़लम मांगी और फिर उसे देना भूल गए। वह मुल्क शाम चला गया। जब याद आई तो शाम का सफ़र करके उसकी क़लम वापिस कर आये।

उनके इस इन्द्रिय-निग्रह के पालन का ही यह नतीजा था कि उनकी दुआ में असर पैदा हो गया था। कहते हैं कि एक बार वह कहीं जा रहे थे। राह में लोगों ने एक अन्धे से कहा, "अब्दुल्ला-बिन-मुबारिक आ रहे हैं। तुझे जो मांगना हो मांग ले।" उसने इन्हें रोककर अर्ज़ की, "अल्लाह से दुआ कीजिए, मेरी आँखों में रोशनी आ जाय।" अब्दुल्ला ने दुआ की तो अल्लाह ने उसकी आँखों में रोशनी दे दी।

एक बार हज को जा रहे थे, मगर रास्ते में देर हो गई। कहीं दूर बियाबान में थे और सिर्फ़ चार दिन बाकी रह गए थे। समझा कि वक्त पर काबा पहुँचना मुमकिन नहीं। इतने में एक कमज़ोर कुबड़ी बुढ़िया आई

और बोली, "मेरे साथ आ, मैं तुझे काबा पहुँचा दूंगी।" साथ हो लिये। जब दरिया आता तो बुढ़िया आँख बन्द करने को कहती और अब्दुल्ला को ऐसा लगता कि जैसे वह कमर-कमर पानी में होकर जा रहे हैं। बुढ़िया ने इस तरह वक्त रहते काबा पहुँचा दिया और अब्दुल्ला ने अच्छी तरह हज कर लिया। तब बुढ़िया बोली, "अब चल, मैं तुझे अपने बेटे से मिला दूं।"

वह बुढ़िया अब्दुल्ला को लेकर अपने बेटे के पास गई जो एक घर में बहुत दिनों से आत्म-साधना किया करता था। अब्दुल्ला ने देखा कि लड़का बहुत दुबला और कमज़ोर है; मगर उसका चेहरा तेज से चमक रहा है। लड़के ने जैसे ही अपनी मां को देखा, वह आकर उसके क़दमों पर गिरा और कहा, "मैं जानता हूँ कि अल्लाह ने तुम दोनों को मिट्टी सम्भालने के लिए ही यहाँ भेजा है। क्योंकि मेरी मौत का वक्त आ गया है।" यह कहकर उसने प्राण छोड़ दिये। अब्दुल्ला ने उसे आखरी गुस्ल देकर दफ़न कर दिया तो बुढ़िया बोली, "अब तुम जाओ, मैं बेटे की क़ब्र पर रहूँगी। अगले साल तुम मुझे न पाओगे पर मेरे लिए दुआ करते रहना।"

एक बार हज्ज से फ़ारिग़ होकर अब्दुल्ला काबा में ही सो गए। रात को ख्वाब देखा कि दो फ़रिश्ते आपस में बातकर रहे हैं। एक ने पूछा, "इस साल कितने लोग हज को आये और कितने लोगों का हज कबूल हुआ?" दूसरा बोला, "हज तो चालीस लाख आदमियों ने किया मगर क़बूल किसी का न हुआ। दमिश्क़ में एक मोची अली-बिन-मूफ़िक है। वह खुद तो हज्ज को नहीं आया मगर उसका हज क़बूल हुआ और उसके तुफ़ैल में अल्लाह ने तमाम हाजियों को बख्श दिया।" अब्दुल्ला की जब आँखें खुली तो इस स्वप्न को याद करके बड़े चकित हुए और मोची के दर्शनों के लिए दमिश्क़ की ओर रवांना हुए।

मोची से जब मिले तो उसका नाम-धाम और काम पूछा। उसने कहा, "मैं यहीं रहता हूँ। अली मेरा नाम है और मैं मोची का काम करता हूँ।" फिर उसने अब्दुल्ला का नाम पूछा और उनका नाम सुनकर चीख मारी और बेहोश हो गया। वह क्यों चीखा और बेहोश हुआ इसका तो कोई ज़िक्र नहीं; पर होश आने पर उसने आगे की कहानी यों बताई, "मुझे मुद्दत से हज का शौक़ था। खूब मेहनत और किफ़ायत करके मैंने सात सौ दिरम जमा कर लिये और अबकी दफ़ा हज का पूरा इरादा था। मगर एक दिन पड़ोसी के घर में कुछ पक रहा था, मेरी बीवी ने कहा, 'जाकर मांग लाओ, मैं भी खाऊँगी'।

"मैं जब पड़ोसी के घर गया और उससे अपना मतलब ज़ाहिर किया तो वह बहुत नादिम हुआ और बोला, 'यह जो कुछ मैं पका रह हूँ वह किसी

के भी खाने लायक़ नहीं है। सात दिन से मेरे बाल-बच्चे भूखे हैं, उन्हें कुछ भी खाने को नहीं मिला, इसलिए निहायत मजबू ी में मैं यह चीज़ पका रहा हूँ।' उसकी ऐसी हद दर्जे की ग़रीबी और बेबसी देखकर मेरा दिल कांप उठा। मैंने सोचा, एक ग़रीब की मुसीबत दूर करना हज से कहीं अच्छा है और वह दिरम, जो मैंने हज के लिए जमा किये थे, लाकर उसे दे दिये।"

कहते हैं, अब्दुल्ला का एक ग़ुलाम था। उन्होंने उसे कुछ रुपए अदा कर देने पर आज़ाद कर देने का करार किया था। वह रुपए जमा भी करा रहा था कि इतने में किसी ने अब्दुल्ला से कहा कि उनका ग़ुलाम कफ़न-चोर है। और कफ़न बेचकर ही वह जमा करा रहा है। अब्दुल्ला को यह सुनकर अफ़सोस हुआ। पता लगाने के लिए वह शाम को कब्रिस्तान पहुंचे। उन्होंने देखा कि ग़ुलाम ने एक क़ब्र खोदी और उसमें घुस गया। आ े बढ़कर अब्दुल्ला ने देखा कि वह टाट पहने और गले में तौक़ डाले सिज्दे में पड़ा रो रहा है।

यह देखकर अब्दुल्ला वहां से हट आए और एक कोने में बै कर रोने लगे। वह ग़ुलाम तो उधर कब्र के अन्दर, और अब्दुल्ला अपने गोशे (एकांत—एक कोने) में रात भर इबादत करते रहे। जब सुबह हुई तो ग़ुलाम ने मस्जिद में जाकर फ़जर की नमाज़ पढ़ी और फिर दुआ की, कि "ऐ अल्लाह, अब सुबह हो गई है और मेरा दुनियावी मालिक मुझसे दिरम मांगेगा। तू अपनी मेह्र से अता कर।" अब्दुल्ला े देखा, एक नूर पैदा हुआ और वह दिरम की शक्ल में उसके हाथ में आ गया। यह देखकर अब्दुल्ला ने उसके पैर चूम लिये। मगर वह बोला, "मेरा राज़ खुल गया, अब मैं जीना नहीं चाहता" और जान दे दी। अब्दुल्ला ने उसी टाट में उसे दफ़न कर दिया। रात को ख़्वाब में देखा, मुहम्मद कह रहे हैं, "तूने मेरे दोस्त और अल्लाह के महबब (प्यार) को टाट के कफ़न में क्यों दफ़न किया?"

एक दिन अब्दुल्ला के यहाँ कोई मेहमान आये। उस वक़्त उनके पास कुछ न था, उन्होंने बीवी से कहा कि मेहमान अल्लाह का भेजा हुआ ोता है, इसलिए उसकी ख़ातिर लाज़िम है। बीवी ने इस बात में उनका विरोध किया। वह बोले, "जो बीवी नेक काम में अपने ख़ाविंद की मुख़ालिफ़त (विरोध) करे उसे छोड़ देना चाहिए।" और मेहर अदा करके अपनी बीवी को तलाक़ दे दिया। एक दिन प्रवचन सुनकर एक अमीर लड़की ने ज़िद पकड़ ली कि उसकी शादी अब्दुल्ला से कर दी जाय। उसके माता-पिता ने प्रसन्नतासूर्वक विवाह कर दिया और पचास हज़ार दीनार

भी दिये। ख्वाब में देखा, खुदा फर्मा रहे हैं, "तूने हमारी खातिर बीबी छोड़ दी। इसलिए हमने उससे अच्छी बीबी दे दी, ताकि तुझे यक़ीन हो जाय कि अल्लाह के लिए किये हुए काम में घाटा नहीं रहता।"

अब्दुल्ला ग़ीवत यानी पीठ पीछे किसी की बुराई करने को बहुत बड़ा गुनाह समझते थे और ऐसा माना जाता है कि निंदक के सारे पुण्य, जिसकी वह निंदा करता है, उसके नाम लिख दिए जाते हैं। इसी विचार से एक दिन निंदा का प्रश्न उठने पर उन्होंने कहा कि यदि कोई ग़ीवत करना ही चाहे तो अच्छा है कि वह अपने माता-पिता की निंदा करे क्योंकि उनका बड़ा हक़ है और अगर सारी कमाई उनके खाते लिख दी जाय तो ठीक ही होगा।

लोगों ने पूछा, "कौन-सी चीज़ ज्यादा फायदेमंद है?" बोले, "कामिल अक़्ल।" लोगों ने कहा, "अगर कामिल अक़्ल न हो?" बोले, "साहिबे-अदब!" लोगों ने कहा, "अगर यह भी न हो?" बोले, "अक़्लमंद भाई कि जिससे मशविरा कर सके।" लोगों ने कहा, "अगर यह भी न हो?" बोले, "तब फिर खामोशी।" लोगों ने आगे पूछा, "अगर यह भी न हो सके?" बोले, "ऐसे शख्स को मौत से बढ़कर कोई चीज़ फ़ायदा नहीं पहुंचा सकती।"

नेशापुर के बाजार में एक ग़ुलाम को सर्दी से ठिठुरते हुए देखकर अब्दुल्ला ने उससे कहा कि क्यों तू अपने मालिक से नहीं कहता कि वह तुझे एक पोसतीन ले दे? उसने कहा, "मुझे कहने की क्या ज़रूरत है जबकि वह खुद ही देखता है?" अब्दुल्ला को उसकी यह स्वामी-निष्ठा भली लगी और मन में कहा, भक्त की धर्म-मर्यादा कोई इससे सीखे। एक आतिश-परस्त की बात से भी वह प्रभावित हुए। किसी काम से वह मिलने आया था। शायद अब्दुल्ला की किसी मुसीबत के वक़्त वह सहानुभूति प्रकट करने आया था। तब उसने कहा, "अक्लमंद वह है, जो पहले ही दिन वह काम करे जो बेवकूफ लोग तीसरे दिन करते हैं।" अब्दुल्ला ने लोगों से कहा, "इसे याद रखो इसलिए कि अच्छी नसीहत है।"।

लोगों ने पूछा, "दरवेशों का क्या हाल होता है?" अब्दुल्ला बोले, "वह हमेशा खुदा के तालिब रहते हैं और बहुत इल्म के बजाय थोड़ा-सा अदब अगर उनमें हो तो यह ज़्यादा अच्छा है; क्योंकि आज अदब की बड़ी कमी है। आज लोग अदब उस वक़्त तलाश करते हैं जब दुनिया में साहिबे अदब बाक़ी नहीं रहे। मेरे नज़दीक अपने नफ़्स की पहचान और राहे-रास्त पर रखने को अदब कहते हैं। अपने हाथ में जो चीज़

है उसको दान में देना तो ठीक ही है पर उससे भी बढ़कर वह दान है, जिसका देना दूसरों के हाथ में है, जो उनसे कह-सुनकर दिलाया जाय। हजार दिरमों का दान देने से एक दिरम का कर्ज चुकाने में ज्यादा सवाब है।"

तवक्कुल अर्थात् ईश्वर पर भरोसा रखने के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए अब्दुल्ला ने कहा, "हराम माल से कौड़ी लेनेवाला भी मुतवक्किल अर्थात् ईश्वर पर भरोसा रखने वाला नहीं हो सकता और तवक्कुल उसका नाम नहीं, जिसे तेरा दिल तवक्कुल खयाल करे बल्कि जिसे अल्लाह तवक्कुल खयाल करे वही तवक्कुल है।"

अब्दुल्ला ने अपने अन्त समय में अपना सारा माल फ़कीरों को बांट दिया। एक मुरीद ने कहा, "आपकी तीन लड़कियाँ हैं उनके लिये आपने क्या छोड़ा ?" बोले, "उनके लिए मैंने अल्लाह को छोड़ा। जिनको देखने वाला अल्लाह हो उन्हें अब्दुल्ला को क्या ज़रूरत ?" अन्तिम क्षण में आंखें खोलकर सन्तुष्ट स्वर में कुछ मुस्कराकर अरबी में कहा, "अमल करनेवालों को इसी तरह अमल करना चाहिये" और फिर सदा के लिए आंखें बन्द कर लीं। लोगों ने सफ़ियान सूरी को स्वप्न में देखा तो पूछा, "आपका क्या हाल है ?" वह बोले, "खुदा ने बख्श दिया।" उनसे अब्दुल्ला के लिए पूछा तो कहा, "उनके क्या कहने ! वह उन लोगों में हैं, जिन्हें हर रोज नियामते हज़ूरी अर्थात् दर्शन हासिल होते हैं।"

: १७ :

खैर नस्साज

इन अत्यन्त शान्त वृत्ति के भक्त पुरुष का नाम अबुल हसन मुहम्मद था। और इनके पूज्य पिता का नाम था इस्माईल। मगर इनको अपना यह खैर नाम, जो एक मुसलमान ने बड़ी ही विचित्र परिस्थिति में इन्हें प्रदान किया था, बहुत पसन्द था। वह कहा करते थे कि एक मुसलमान ने जो नाम रखा उसे बदलूं, यह शोभा नहीं देता। इसलिए वे इस खैर नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

इनके इस नामकरण की घटना विचित्र नाटकीय है। कहते हैं कि एक बार वे हज के इरादे से घर से चले। जब ये क़ूफ़ा में पहुँचे तो एक आदमी ने इन्हें देखा और समझा कि ये काले रंग का आदमी, जो फटी पुरानी मैली-गुदड़ी ओढ़े हुए है, यकीनन कोई भागा हुआ गुलाम है। उसने पूछा, "क्या तू गुलाम है ?" बोले, "हाँ।" उसने फिर पूछा, "क्या तू अपने मालिक से भागा हुआ है ?" उन्होंने फिर जवाब दिया, "हाँ !"

वह इस "भागे हुए गुलाम" को अपन घर ले गया, खैर नाम रखा और कपड़ा बुनने का काम सिखाया। जब वह खैर कह कर पुकारता तो सन्त अबुल हसन कहते, 'लबेक् !' अर्थात् हाजिर हूँ। नस्साज का अर्थ होगा कपड़ा बुनने वाला; क्योंकि लिखा है कि कपड़े बुनने के इस काम के कारण ही वह खैर नस्साज कहलाए और कपड़े बुनने का यह काम और अपने मालिक की खिदमत बड़ी लगन से संत ने मुद्दतों की। यहाँ तक की कि उनकी तत्परता, निष्ठा, ईश्वर-भक्ति और उपासना का भाव देखकर वह व्यक्ति इन पर धीरे-धीरे श्रद्धा करने लगा और अन्ततः क्षमा-याचना के साथ विदा करते हुए बोला, "मुनासिब तो यह है कि आप मालिक हों और मैं खिदमतगार (सेवक)।"

खैर नस्साज संत सरी सक़ती के शिष्य और जुनैद के गुरु-भाई थे। शिबली ने इनसे ही प्रारम्भिक आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की। और फिर इन्हीं के आदेशानुसार संत जुनैद बग़दादी के सत्संग से लाभान्वित होने के लिए उनके पास चले गये। इब्राहीम खवास ने भी इनकी ही मजलिस में तौबा की थी। इनके अतिरिक्त अनेक संतों ने इनसे दीक्षा ली थी जो आगे चलकर पर्याप्त प्रसिद्ध हुए पर इनका और जुनैद का पारस्परिक विशेष श्रद्धा-मय सम्बन्ध था।

क़ूफ़ा के उस मुसलमान के घर से विदा लेकर वे मक्का आये और कहते हैं वहाँ उन्हें वह मरातब (दर्जे) हासिल हुए कि जुनैद खैर को खैरेना कहते थे अर्थात् हम सबमें श्रेष्ठ। जुनैद जैसा व्यक्ति जिसे अपना श्रेय, अपना कल्याण करनेवाला कहे उसकी उच्चता निश्चय ही अत्यन्त उदात्त और सर्व सम्मान्य समझी जायगी। पर मक्का की इनकी साधना का कोई उल्लेख उनकी जीवनी में नहीं आता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनकी साधना क़ूफ़ा में हुई।

क़ूफ़ा में वे इबादत तो करते थे जैसा कि वे कहीं भी रहकर कर सकते थे, पर उनकी साधना का मूल इस भावना में सन्निहित प्रतीत होता है कि उनका मालिक बना हुआ वो मुसलमान जो आदेश देता उसका वह कुछ इस श्रद्धा, इस विश्वास के साथ पालन करते कि वो उन्हें अपने असली आक़ा अर्थात् अपने बनानेवाले परमपिता परमात्मा तक पहुँचा देने वाला

है। क्योंकि वो मुसलमान उन्हें यह कहकर घर लाया था कि मैं तुझे तेरे आक़ा से मिला दूंगा और इसी विश्वास पर वे उसके यहाँ आये।

वह व्यक्ति इन सन्त खैर को आदेश करता कि यह कपड़ा बुनो और घर-गृहस्थी का यह या वह काम करो। तब कपड़ा बुनना, खाना बनाना और खिलाना, बर्तन मांजना, कपड़े धोना, बच्चों की ख़िदमत, गौ-सेवा, खेती या बनिज-व्यापार का काम ग़र्ज़ेकि तमाम वह काम, जो एक गुलाम से कराये जाते हैं, वे करते और यही उनकी साधना थी।

खैर नस्साज़ उस मुसलमान के बच्चे का मुंह धोते थे और समझते थे कि वो अपने स्वामी की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। और वो सेवा उन्हें अपने असली स्वामी परमपिता परमेश्वर तक पहुँचा देगी। किसान अपना खेत बोता और बोकर समझता है कि उसने अपना खत बो दिया। खैर नस्साज यह काम करते और करते इसलिए कि यह खेत बोना उन्हें ईश्वर तक पहुँचाने वाला है। घर में खाना बनता है और वो बच्चों को, मेहमानों को और घरवालों को खिला दिया जाता है। खैर नस्साज भी खाना बनाते होंगे और वो बनाकर खिलाते होंगे अपने आक़ा के घर-वालों को, बच्चों को और मेहमानों को, ठीक वैसे ही कि जैसे रोज साधारणतः हर एक घर में होता ही है। पर खैर नस्साज के मन में खाना बनाते और खिलाते समय एक भाव यह रहता कि वो खाना ब ते और खिलाते हैं खाना बनाने और खिलाने के लिए ही नहीं बल्कि अल्लाह की खुशनदी हासिल करने के लिए।

उनके इस भोलेपन में ही उनकी असली कीमत, उनका असली जौहर था। उनके इस भोलेपन ने ही निश्चयात्मक रूप से बता दिया कि उनका कपड़ा बुनना और बेचना, खाना बनाना और खिलाना, बर्तन माजना और बुहारी देना, बच्चों को नहलाना और कपड़े पहनाना, खेत जोतना और बोना, जानवरों को खोलना और बांधना व उन्हें खिलाना-पिलाना ग़र्ज़ेकि जितने भी काम हैं वह अपने लिए नहीं, अपने उस आक़ा के लिए नहीं, बल्कि अल्लाहताला की खुशनूदी के लिए हैं।

स्वयं खैर ने इस संबंध में जो कहा है वह याद रखने लायक है। वह कहते, फ़क़ीर वह है जो माल को बला (कष्ट) और इफ़्लास (कंगाली) को राहत (संतोष) समझे, धन या यश के लिए फ़क़ीरी बिल्कुल दूसरी ही बात है। इसीलिए वे कहते, खौफ अल्लाह का ताज़ियाना (चाबुक) है उन बन्दों के लिए, जो बेअदबी के खूगर (अभ्यस्त) हो गए हों ताकि राह पर आ जायं।

खैर कपड़ा तो बुनते ही थे, पर अक्सर दज़ले के किनारे जाकर बैठते।

कहते हैं कि उन्हें देखकर मछलियां खुद उनके पास आतीं और कुछ चीज़ें उनके लिए लातीं। एक बार का ज़िक्र है कि वह किसी वृद्धा स्त्री का कपड़ा बुन रहे थे। वह उन्हें दज्ले पर मिली और पूछा कि मैं तुम्हारी मज़दूरी लाऊं और तुम न मिलो तो मैं किसको दूं? बोले, "दज्ले में डाल देना।" दैवयोग से ऐसा ही हुआ। जब वह वृद्धा मज़दूरी लाई तो खैर मौजूद नहीं थे और उसने दीनार दज्ले में डाल दिये।

खैर जब दज्ले पर आये तो कहते हैं कि एक मछली पानी से निकली और उसने वह दीनार उनके सामने लाकर रख दिये और उन्होंने ले लिये। इस घटना पर उनकी काफ़ी आलोचना हुई। कुछ सूफ़ियों ने कहा कि वह क़ाबिले कबूल नहीं, उन्हें खेल में मशगूल कर दिया है। पर अत्तार को यह टीका पसंद नहीं। उनका कहना है कि जैसे हज़रत सुलेमान के लिए ऐसी बातें हिजाब न थीं वैसे ही उनके लिए भी; हालांकि कम दर्जे के लोगों के लिए यह बेशक हिजाब है।

खैर ने "जीवेम शरदः शतम्" की वैदिक-आकांक्षा को चरितार्थ करते हुए सौ साल की आयु पाई। जब उनका अन्त समय आया, वह संध्या का समय था, तो यम से उन्होंने बेतकल्लुफ़ी से कहा, "मैं नमाज़ पढ़ लूं तब तुम अपना काम करना। तुम्हें वक्त पर आने का हुक्म हुआ है और मुझे वक्त पर नमाज़ पढ़ने का हुक्म है।" उन्होंने प्रेमपूर्वक नमाज़ पढ़ी और फिर अपने को मेहमान के हवाले करके हमेशा के लिए फ़ारिग़ (मुक्त) हो गए।

मृत्यु के पश्चात् किसी ने उन्हें स्वप्न में देखा तो पूछा, "कहिये, अब आप किस हाल में हैं?" बोले, "जिस हाल में क़ैदी रिहाई पाकर होता है! अल्लाह का शुक्र है कि उसने क़ैदे-दुनिया से रिहाई दी!" उनकी थोड़ी-सी सूक्तियों में बड़े ही मार्के की सूक्ति यह है, "कमाल अमल का यह कि आमिल अमल को बेवक़अत समझे, अर्थात् अमल की कोई जरूरत ही न रह जाय।" ऐसा ही था उनका अमल। वह अल्लाह में वासिल हुए, उसकी कारसाजी (रचना) भी समझी।

: १८ :

शाहशुजा करमानी

शाहशुजा करमान के रहनेवाले और उस देश के शाही खानदान से संबंधित थे। वह बहुत ऊंचे दर्जे के फ़क़ीर और इल्म-दोस्त आरिफ़ (विद्याभ्यासी एवं ज्ञानी संत) थे। उन्होंने बहुत-सी किताबें भी लिखीं और अपने ज़माने के सुप्रतिष्ठित संतों में उनकी बड़ी इज्ज़त थी। अबु-तराब बख्शी, संत यहिया-अबु-हफ़स उनकी दिली इज्ज़त करते थे।

कहते हैं, वह ४० साल तक नहीं सोये। जब नींद ज्यादा सताने लगती तो नमक आँखों में भर लेते। ४० साल बाद सोये तो स्वप्न में ईश्वर के दर्शन हुए। बोले, "या खुदा, मैं तो इतने दिन से तुम्हें ढूंढ़ रहा था बेदारी (जागृति) में मगर तुम मिले ख्वाब में।" जवाब मिला, "यह इस बेदारी (जागरण) का ही नतीजा है।" इसके बाद वह अक्सर सो लेते, इस उम्मीद में कि ख्वाब (बेदारी) में फिर दीदार हों।

उन्हें ख्वाब में फिर दीदार हुए कि नहीं इसका कोई ज़िक्र नहीं है; पर इस ख्वाब का ज़िक्र करते हुए कहते, "सारे जहान की बेदारी (जागरण) भी इसके एवज में मुझे मिले तब भी मैं अपने ख्वाब को न बदलूं।" इनका एक लड़का था और एक लड़की और इन दोनों की ज़िन्दगी निहायत मज़ेदार और बहुत ही ऊँचे दर्जे की दरवेशी और फ़क़ीरी के सुनहरे रंग से शराबोर (पूर्ण) थी।

लिखा है कि लड़का जब पैदा हुआ तो उसके सीने (छाती) पर सब्ज खत से (हरे रंग में) "अल्लाह जल्लेजलालहू" दर्ज था। बड़ा होकर वह गाने-बजाने और सैर-तमाशे में लग गया। आवाज़ अच्छी थी। साथ में एक चिकाड़ा रखता। एक रोज रात को गाता हुआ एक मुहल्ले में गया तो उसकी सुरीली आवाज़ से माईल (आकर्षित) होकर एक नयी दुल्हिन खाविंद (पति) को छोड़ दरवाज़े पर आ खड़ी हुई। खाविंद ने लड़के से कहा, "क्या अभी तौबा का वक्त नहीं आया ?" बात लग गई। बोला, "आ गया।" चिकाड़ा तोड़ा और चल दिया। आगे चलकर अच्छा फ़क़ीर हुआ।

उनकी बेटी की कहानी और भी मज़ेदार है! शाहे-करमान ने उससे शादी करनी चाही। संत शुजा ने जवाब के लिए तीन दिन की मोहलत मांगी। वह चाहते थे कि किसी खुदा-दोस्त दरवेश (ईश्वर-भक्त फ़क़ीर)

से उसका निकाह (विवाह) करें। मस्जिदों और खानकाहों (संतों के आश्रम) में किसी कामिल दरवेश (पहुँचे हुए फकीर) की तलाश में वह घूमा किय। तीसरे दिन एक दरवेश नमाज पढ़ता हुआ मस्जिद में मिला। पूछा, "क्या आप निकाह करेंगे ?"

दरवेश ने कहा, "मैं गरीब हूँ। कौन भला मुझे अपनी लड़की देगा ?" फकीर उनकी नज़र में चढ़ गया था। उन्होंने अपनी लड़की का ज़िक्र किया और फिर दोनों की रज़ामंदी से उनका निकाह हो गया। यहाँ तक तो ठीक; पर जब यह नई दुल्हिन बनी लड़की अपने खाविंद के घर गई तो. देखा कि एक आबखोरे में पानी और एक टुकड़ा खुश्क रोटी का रखा है। लड़की का माथा ठनका और उसने फौरन ही पिता के पास जाने का इरादा किया।

फ़कीर ने कहा, "मैं तो पहले ही जानता था कि शाही घर की लड़की एक फ़कीर के यहाँ बसर (जीवन-यापन) नहीं कर सकती।" मगर सुनने के लायक है जो कुछ लड़की ने कहा। वह बोली, "मैं अपने पिता से इस बात की शिकायत करने जाती हूँ कि आपने तो कहा यह था कि मैं तेरा निकाह किसी पर्हेजगार (संयमी) के साथ करूँगा। और उन्होंने ऐसे शख्स से मेरा निकाह किया, जो अल्लाह पर शाकिर (ईश्वर को धन्यवाद देने वाला) नहीं और दूसरे दिन के लिए खाना रख छोड़ता है रोटी का यह टुकड़ा रख छोड़ना तवक्कुल (ईश्वरेच्छा) के खिलाफ़ है। या तो इस घर में रोटी का यह टुकड़ा रहे या मैं रहूँ।"

संत यहिया से शाहशुजा की बड़ी दोस्ती थी। लिखा है कि एक बार यह दोनों दरवेश एक ही शहर में थे। संत यहिया ने वहाँ वाज़ कहना शुरू किया और शाहशुजा को भी प्रेमपूर्वक निमंत्रित किया पर वह गये नहीं। एक दिन विशेष आग्रह किये जाने पर वह गये और एक कोने में छुपकर बैठ गए। यहिया को तब बड़ी हैरत (आश्चर्य) हुई जब बोलते-बोलते अचानक उनकी ज़ुबान बंद हो गई।

कुछ देर चुप रहने के बाद आखिर वह बोले, "मालूम होता है कि इस मजलिस (सभा) में मुझ से अच्छा वाज़ देने वाला कोई है। इसीलिए बोलते-बोलते मेरी ज़ुबान बंद हो गई है।" यह सुनकर शाहशुजा कोने में से उठकर सामने आये और संत यहिया से बोले, "इसीलिए मैं यहाँ आना पसंद नहीं करता था।"

अबु हफ़स स्वयं एक बहुत बड़े सम्मानित संत थे। उन्होंने शाहशुजा को एक खत में लिखा कि मैंने अपने नफ़्स और अमल और तक्सीर पर नज़र की तो नाउम्मीदी हासिल हुई। शाहशुजा ने संतोचित और सत्य-निष्ठ

विनम्रता से उत्तर दिया, "मैंने आपके खत को अपने दिल का आईना बनाया। अगर नफ़्स से मेरी नाउम्मीदी खालिस होगी तो अल्लाह से उम्मीद होगी और फिर सबसे हटकर अल्लाह से वासिल होऊंगा।"

शाहशुजा कहते थे, "एहले-फज़ल (अच्छाइयों वालों) का फज़ल (अच्छाइयां) और एहले-विलायत (ऋषि-पद को प्राप्त) को विलायत (ऋषि-पद) उस वक्त तक रहती है जबतक वह अपने फ़ज़ल को फज़ल और विलायत को विलायत न समझें।" इसी लहजे में वह कहते, "फ़ुक्र-अल्लाह का भेद है। जब उसे ज़ाहिर (प्रकट) करता है फ़ुक्र उससे ले लिया जाता है।" कहते, "सिद्क की तीन अलामते (चिह्न) हैं: १. दुनिया से नफ़रत (घृणा), २. खल्क (संसार) से दूरी, ३. शहवत पर गालिब (इन्द्रियों पर संयम) होना।"

उनकी एक सूक्ति है—हुस्ने-ज़ाहिर उम्मीद की अलामत है—सममुच ऐसा हुआ है कई बार, कई संतों के जीवन में इसके उदाहरण आये हैं। संत बशरहाफ़ी ने अपने प्रारंभिक जीवन में ज़ाहिरे-हुस्न का इज़हार किया—अल्लाह के नाम को, जो किसी कागज़ पर लिखा कहीं नीचे धूल में पड़ा था, उठाकर, चूमकर, उसमें इत्र लगाकर किसी अच्छे-ऊँचे स्थान पर रखकर। सचमुच विनय और शिष्टाचार में ईश्वर की कृपा है।

खौफ़े-इलाही के मानी उन्होंने यह बतलाये कि बंदा हमेशा डरता रहे कि कहीं उससे कोई भूल न हो जाय। भूल-चूक के लिए बहुत बड़े-बड़े पकड़ में आ गए हैं इसलिए उसे हर जगह हाज़िर-नाज़िर जानकर उससे हमेशा डरते रहना और उसकी कृपा की आशा बनाये रखना ही ठीक होगा। कहा, "सब्र की तीन अलामतें हैं—तर्के-शिकायत, सिद्के रज़ा और कबूले रज़ा अर्थात् सच्चे दिल से ईश्वर पर निर्भरता और ईश्वर की मान्यता।"

वह कहते—जब आशिक़ हमादोस्त हो जाते हैं तो खुदाई का दावा करते हैं। हमादोस्त का भाव है (सोऽहम् अस्मि) मैं वही हूं। सोऽहम का ज्ञान तो आवश्यक है और वह आता ही है, पर यह जरूरी नहीं कि जब कोई खुदा होने का दावा करे। खुदा के, ईश्वर के ही जब सब स्वरूप हैं तब फिर दावा क्यों? दावे से यह भास होगा कि दूसरे लोग फिर और ही कुछ हैं—खुदा नहीं!

हाँ, ईश्वर की इस विशाल सृष्टि में और उनके समय की अनन्तता में कुछ ऐसे अवसर भी आते हैं जब वह स्वयं चाहते हैं कि कोई ऐसा दावा करके लोगों के मन में छाये हुए प्रमाद और उदासी को दूर करे। ऐसे अवसर पर ज्ञानी और अज्ञानी प्राय: सभी एक स्वर होकर उस दावेदार का तीव्र विरोध करते हैं; पर जिसे चाहते हैं उसे वह चमका देते हैं।

उनका कहना था, अक्लमंद वह है जो हराम की तरफ़ न देखे, तर्के-शहवत (इन्द्रिय-मोह का त्याग) करे, दिल से अल्लाह को याद करे, ज़ाहिर में सुन्नत अर्थात् लौकिक-धर्म-व्यवहार का पालन करे और हलाल रोज़ी खायें। और कहते—झूठ और खयानत और ग़ीबत (पर-निन्दा) से बचो। दुनिया तर्क करो और नफ़्स से बचो। किसी ने पूछने पर कहा, "मैं मिस्ल (समान) उस ज़िन्दा मुर्ग़ (जीवित मुर्ग़ा) के हूँ जो आग भरी सीख पर हो।"

कभी कहते, भक्त अपने को ऐसी ही स्थिति में पाता है और जो इस्लामी खौफ़ की आराधना करते हैं, उनके लिए तो यह स्थिति स्वाभाविक ही कही जा सकती है। वह ऐसे ही डरे-सहमे रहते हैं जैसे उनके चारों ओर आग जल रही है जिसमें वह तिल-तिल करके जल रहे हों। पर इसमें हक़ पर अपना सब कुछ निसार कर देने वाले आनन्द ही मानते हैं।

किसी कवि ने कहा है—

कबाबे सीख हैं हम करवटें हरसू बदलते हैं,
जो जल उठता है यह पहलू तो वह पहलू बदलते हैं।

कुत्ते के द्वारा जुनैद को ईश्वर ने चेतावनी दी थी। एक कुत्ते का ज़िक्र इन संत की जीवन-गाथा में भी आया है। इनके ब्रह्म लीन होने के पश्चात् अली शेरजानी नाम के एक संत इन के मजार पर खाना तक़सीम किया करते थे। एक दिन उन्होंने दुआ की, "ऐ अल्लाह, कोई मेहमान भेज दे तो मैं उसके साथ बैठ कर खाना खाऊँ। दुआ क़बूल हुई।"

कोई इन्सान तो न आया पर एक कुत्ता निहायत तपाक से वहाँ आ खड़ा हुआ। मगर अली ने दुत्कार दिया और वह शराफ़त से चला गया। अब अली ने सुना, कोई कह रहा है, "तुमने ही तो मेहमान की ख़ाहिश की और जब मैंने मेहमान भेजा तो तुमने उसे दुत्कार दिया।" अब अली को होश आया। बहुत परेशान हुए और दुत्कारे हुए मेहमान को ढूंढ़ने निकले।

बड़ी मुश्किल से एक जंगल में वह कुत्ता उन्हें मिला। अली ने उसके सामने खाना रखा, मगर उसने उस ओर कुछ ध्यान न दिया। अली बहुत शर्मिंदा हुए और अपनी ग़लती के लिए माफ़ी मांगी। कहते हैं, उस कुत्ते ने कहा—"ऐ हसनत ;" अर्थात्, यह तुमने अच्छा किया जो तौबा कर ली। "ऐ ख्वाजा अली; अगर तुमने शाहशुजा करमानी की मज़ार के अलावा और कहीं ऐसी गुस्ताखी की होती तो ज़रूर सज़ा पाते।"

: १९ :

अहमद ख़िजरविया

खुरासान के संतों में अहमद खिज़रविया का वहुत ऊँचा दर्जा था। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं, उपदेश भी वहुत दिये और इनके मुरीदों की संख्या की काफ़ी बड़ी है। मगर इससे भी बड़ी बात यह थी कि इनके सब मुरीद साहबे-कमाल (चमत्कारी) हुए। इन्होंने स्वयं हातम असम से दीक्षा ली और अबु-तराब के सत्संग से भी लाभ उठाया। अबु-हफ़स-हदाद, जो स्वयं एक वहुत ऊँचे दर्जे के सन्त हुए हैं, इन्हें बहुत मानते थे। किसी ने इनसे पूछा, "आजकल आपकी नज़र में सूफ़ियों में कौन बुज़ुर्ग है?" अबु-हफ़स ने कहा, "मैंने अहमद-खिज़रविया से ज़्यादा बुलन्द-हौसला सच्चे हाल में और किसी को न पाया। मुरव्वत और जवांमर्दी में लासानी (बेजोड़) हैं।"

कहते हैं कि ये फौजियों के लिवास में रहते थे। इनकी बीवी का नाम फ़ातिमा था। फ़ातिमा वलख़ के एक सरदार की बेटी थी। वह दिल से फ़क़ीर-दोस्त और ख़ुदा-परस्त थी। इसकी इच्छा हुई कि वह इनसे शादी करे। उसने कहला भेजा कि आप मेरे पिता से मेरे निकाह की दरख्वास्त (निवेदन) कीजिये! इन्होंने अस्वीकार किया। उसने फिर कहलाया कि आप खुदा-रसा हैं और ईश्वर-भक्त को तो मार्ग-दर्शक होना चाहिये। आखिर, इन्होंने उसकी बात मानकर उसके पिता को कहला भेजा और सरदार ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी पुत्री का विवाह उनके साथ कर दिया और फ़ातिमा जब अपने पति के घर आई तो इधर-उधर से मन हटाकर अपने पति के साथ ईश्वर-भजन में लग गई।

जब अहमद-खिज़रविया मुस्लिम-जगत् के प्रसिद्ध संत बायज़ीद वस्तामी से मिलने गये तो उनकी बीवी फ़ातिमा भी उनके साथ थी। अब एक विचित्र परिस्थिति उठ खड़ी हुई। फ़ातिमा फ़क़ीरों के प्रति स्वभाव से ही अनुरक्त थी और बायज़ीद अपने समय के माने हुए दिग्गज विद्वान संत थे। उनके प्रति उसका विशेष रूप से आकर्षित हो उठना कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर लगता है, उसमें स्वतन्त्रता की भी काफ़ी गहरी भावन थी अन्यथा वह खिज़रविया के पास ही विवाह के लिए दरख्वास्त करने का सन्देशा कैसे भिजवाती? वह किसी के रोब में आनेवाली भी न थी। उसने बायज़ीद से अपनी कुदरती बेबाकी (स्वाभाविक स्वतंत्रता) के साथ बातें करना शुरू की।

संत खिज़रविया को यह सब-कुछ बहुत अच्छा न लगा। वे बोले, "ऐ फ़ातिमा, ग़ैर मर्द से यों बेबाकी (निर्लज्जता) करना नखा (वर्जित) है।" फ़ातिमा ने उत्तर में कहा, "बात यह है कि जिस तरह आप मेरी तबियत के राज़दार (जानकार) हैं और मेरे नफ़्स की ख़ाहिशें पूरी करते हैं, उसी तरह वह मेरी तारीक़त के (आत्मिक-क्षुधा) राज़दार हैं और मेरी बातिनी मुरादें (आत्मिक-इच्छाएँ) पूरी करते हैं, जिसकी वजह से मुझे दीदारे-इलाही हासिल होता है।" खिज़रविया खामोश हो गए और फ़ातिमा की वह बेबाकाना गूफ़्तगू (निडरता पूर्वक बात-चीत) कुछ दिन चलती रही। सौभाग्यवती होने से फ़ातिमा मेंहदी लगाती होंगी। एक दिन हाथ पर नज़र जो पड़ी तो बायज़ीद पूछ बैठे, "ऐ फ़ातिमा, यह मेंहदी कैसी है?"

अब फ़ातिमा ने कहा, "आज तक आपने मेरे हाथ और मेंहदी को नहीं देखा था इसलिए मैं आपके पास बैठती थी। अब मेरे लिए यहाँ बैठना हराम है।" ग्रंथकार अत्तार ने इस स्थान पर लिखा है, अगर कोई शख्स यह ख्याल करे कि उन्होंने बुरे ख्याल से उनकी तरफ़ देखा तो इसका जवाब यह है कि खुद उनका—बायज़ीद का कौल है कि औरत और दीवार मेरे सामने बराबर है। उर्दू अनुवादक का ख्याल है कि सम्भवतः बायज़ीद ने जानबूझकर यह बात कही हो, क्योंकि बातें करने से दोनों का ही भजन उतनी देर के लिए रुका रहता।

इस सिलसिले में बायजीद की कितनी ऊँची धारणा थी, इसका उल्लेख कर देना समुचित होगा। बायज़ीद कहते थे, "जो शख्स मर्द को देखना चाहता है वह फ़ातिमा को देखे। मर्द और जवांमर्द, जैसा कि पीछे कई स्थानों पर अभिव्यक्त हो चुका है, असाधारण उत्कर्ष का द्योतक शब्द था इन संतो की भाषा में। बायज़ीद के यहाँ से विदा होकर अहमद खिज़रविया अपनी धर्म-पत्नी के साथ नेशापुर आये। उनके आगमन से नेशापुर के लोग बहुत प्रसन्न हुए और सम्भवतः उनकी प्रेमपूर्ण प्ररणा से इस नवागन्तुक दम्पति ने नेशापुर को ही अपना निवास-स्थान बनाया।

लिखा है, कि रात को उनके यहाँ चोर घुसा। देख रहे थे। फ़क़ीर के घर में था ही क्या, जो वह लेकर जाता। जब वह जाने लगा तो इन्होंने कहा, "आये हो तो यों खाली हाथ जाना ठीक नहीं। तुम यहां तमाम रात इबादत करो। मुझे जो कुछ मिलेगा वह तुम्हें दे दूंगा।" उसने सारी रात इबादत की। सवेरे किसी अमीर ने सौ दीनार संत को भेंट में भेजे। उन्होंने वे दीनार उसके सामने रखकर कहा, "यह लो, तुम्हारी रात भर

की इबादत का एवज़ है।" वह चोर अत्यन्त प्रभावित हुआ। बोला, "अफ़सोस है, मैं उस पर्वरदिगार को भूला हुआ था, जो एक रात की इबादत में इतना देता है।" वह दीनार न लिये उसने। उनका मुरीद बना और बहुत ऊँचा उठा।

एक दरवेश इनके यहाँ मेहमान बनकर आया। रात को उसके सम्मान में इन्होंने सात चिराग़ जलाये। वह दरवेश बोला, "यह तकल्लुफ़ (दिखावा) तसव्वुफ़ के खिलाफ़ है।" इन्होंने कहा, "यह सब चिराग़ मैंने अल्लाह के लिए रोशन किये हैं, इसमें तकल्लुफ को दखल नहीं। अगर आपको यक़ीन न हो तो जो चिराग़ खुदा के लिए न हो गुल कर दीजिए!" वह दरवेश रात भर चिरागों को गुल (बुझाने) करने में लगा रहा पर एक भी चिराग़ गुल न हुआ। सवेरे इन्होंने दरवेश से कहा, "मेरे साथ आओ, तुम्हें उसके कुदरत का कुछ खेल दिखाय।"

दरवेश को साथ लेकर वह कलीसा[1] के द्वार पर पहुँचे। वहाँ पर कोई ग़ैर मुस्लिम भक्त बैठा हुआ था। उसने इनकी बड़ी ताज़ीम (मान-प्रतिष्ठा) की और दस्तरख्वान (भोजन के लिए बिछाने का वस्त्र) बिछाया और कहा, "आइये, हम लोग साथ मिलकर खाना खायं।" इन्होंने कहा, "खुदा के दोस्त उसके दुश्मनों के साथ खाना नहीं खाया करते।" इस बात का उसके दिल पर कुछ ऐसा असर हुआ कि वह तुरन्त ही मुसलमान होने को राज़ी हो गया। उसके साथ कुछ और लोग भी मुसलमान हुए जिनकी तादाद कुल मिलाकर सत्तर थी। रात को इन्होंने स्वप्न में देखा कि अल्लाह कह रहा है, तूने मेरे लिए सात चिराग़ रोशन किये, उसके बदले में मैंने तेरे द्वारा सत्तर दिलों को नूरे-इलाही (प्रभु-ज्योति) से रोशन किया।

एक आदमी ने इनसे आकर कहा, "मैं बहुत ग़रीब हूँ।" इन्होंने उससे तमाम पेशों के नाम अलग-अलग पर्चों पर लिखाकर एक वर्त्तन में डाल दिये और फिर उसमें से एक पर्चा निकाला। देखा तो उसमें चोरी का पेशा लिखा हुआ था। ये बोले, "तुझे चोरी का पेशा अख्तियार करना चाहिये।" वह हैरान था। मगर उनकी बात मानकर चोरों में शामिल हो गया। चोरों ने एक बहुत बड़े अमीर को गिरफ्तार किया और उसे क़त्ल करने को इस नये चोर से कहा। इसे क्या सूझी कि चोरों के सरदार को मार डाला और कैदी को रिहा कर दिया। उस अमीर ने शुकराने में इतना माल दिया कि वह अच्छा-खासा अमीर हो गया।

लिखा है कि किसी शख्स ने देखा कि उम्दा रथ में सवार हो कर ये

---

१. एक यहूदी मन्दिर।

हवा में चले जा रहे हैं। उसमें सोने की जंजीरें लगी हुई हैं, जिन्हें पकड़कर फ़रिश्ते खींच रहे हैं। उसने पूछा, "इस शान-शौकत से आप कहां जा रहे हैं ?" इन्होंने जवाब दिया, "दोस्त की मुलाकात को।" उसने इनसे कहा कि इस दर्जे पर पहुँचने पर भी दोस्त से मिलने की हाजत (इच्छा) हुई ? ये बोले, "अगर मैं न जाऊँगा तो वे खुद मेरी मुलाकात को आयंगे और जो मर्तबा जियारत करने वाले को मिलता है, उसे मिलेगा।" कोई अपने पास चलकर आये इसकी अपेक्षा खुद ही जाकर उसके दर्शन करने में जो अधिक सवाब इस्लाम ने माना है वह याद रखने योग्य है।

एक बार ये किसी सूफ़ी की खानक़ाह में पुराने कपड़े पहने हुए गये। उनके मुरीदों ने इन्हें हिक़ारत (घृणा) की नज़र से देखा। होनहार, ये पानी भरने गये तो हाथ से छूट कर डोल कुएँ में गिर पड़ा। यह सूफ़ी के पास पहुंचे और उससे बड़ी दीनता से इल्तिजा (प्रार्थना) की कि मेहरबानी करके दुआ कीजिये ताकि डोल निकल आये। वह सब हैरत में थे, "डोल निकालने के लिए दुआ ?" यह बोले, "अच्छा तो मुझे दुआ करने की इजाजत मर्हमत (दया-कृपा) फरमाइये।" सूफ़ी ने इजाजत दे दी। यह दुआ करने वैं और डोल खुद-ब-खुद कुएं की जगत पर आ गया। सूफ़ी ने बड़ी इज्ज़त की। बोले, "मुरीदों से कहिये कि मुसाफ़िर को हिक़ारत से न देखें।"

यह अपने साथ यानी अपनी नफ़्स के साथ बहुत सख्ती से पेश आते थे। एक बार कुछ लोग जहाद को जाने लगे तो इनके नफ़्स ने भी इन्हें जहाद में शामिल होने की तरग़ीब (प्रेरणा) दी। इनका माथा ठनका। जरूर कुछ दाल में काला है—क्योंकि ऐसी बातों की ओर रग़वत दिलाना नफ़्स का काम नहीं। इन्हें ख्याल आया, शायद नफ़्स ने समझा कि जहाद पर जाने से रोज़े और नमाज़ की सख्ती कुछ कम होगी और लोगों से मिलने-जुलने का मौक़ा मिलेगा; पर यह बात न थी। दुआ की, नफ़्सके फरेब से मुझे आगाह किया जाय। ईश्वरीय प्रेरणा से नफ़्स ने ही बताया—मैंने सोचा तुम वहाँ जाकर शहीद होगे और मैं रोज़ के बखेड़ों से छूटूंगा।

एक बार वे बोले कि मैंने खल्क को बैल और गधे की तरह चारा खाते हुए देखा। लोगों ने पूछा, "क्या आप खल्क़ से अलग थे ?" बोले, "नहीं, मैं भी उन्हीं के साथ था। मुझमें और उनमें इतना फ़र्क़ था कि वह खाते थे और हंसते थे और—मैं खाता था और रोता था।" कहा, "जो शख्स सिद्क़ अख्तियार करता है अल्लाह उसके करीब होता है। ऐसा कहा गया है कि अल्लाह सादिक़ों के साथ है। क्योंकि सिद्क उसे सबसे ज़्यादा अज़ीज़ है।"

उनकी कुछ सूक्तियें ये हैं—शिकायत करने वाला साबिर (संतोषी) नहीं होता क्योंकि जो सब्र कर सकता है वह शिकायत क्यों करेगा। तोशा मुज़्तरिबान (खाद्य सामग्री व्याकुलों) का सब्र है और दर्जा आरिफ़ों का रज़ा है। अल्लाह को दिल से दोस्त रखना, और ज़ुबान से याद करना और सिवा उसके सबको तर्क करना मारिफ़त है। कहते, साहबे खुल्क़ को अल्लाह सबसे ज़्यादा दोस्त रखता है। जो अल्लाह को ढूंढ़ता है उसे पाता है और ईश्वर-प्रेम के मानी ये हैं कि दुनिया की तमाम बातों को तर्क करदे और उसकी याद में तल्लीन हो जाय।

वह कहते—कोई मालिक शहवत से क़वी (बलवान्) नहीं लेकिन ग़फ़लत न हो तो शहवत ग़ालिब नहीं हो सकती। बन्दगी आज़ादी में है। इन शहवतों और गफ़लतों से छूटे बिना आज़ादी कहाँ? ज़िन्दगी और दुनिया की दरमियानी हालत में बसर करना चाहिये। उनके दिल को खुशहाली का इज़हार करने वाली खुश-खबरी से भरी उनकी एक शानदार कहावत यह है—राह कुशादा (तंग) है और हक़ (सत्य) रोशन है और तालिब मतलब है। किसी ने नसीहत चाही तो कहा—नफ़्स को मुर्दा बना ताकि तू ज़िन्दा हो जाय।

उनकी यह एक महत्वपूर्ण सूक्ति है—जब दिल हक़ से पुर होता है तो उसकी रोशनी शरीर के अंगों से व्यक्त होती है और जब बातिल अर्थात् असत् से पुर होता है तो उसकी तारीकी अर्थात्, आसुरी-वृत्ति शरीर से प्रकट होती है।

अहमद खिज़रविया कहते थे कि गफ़लत से ज़्यादा बुरा कोई ख्वाब नहीं। (यह बात तुम्हीं तो उनके मुंह से कहते हो फिर तुम ही क्यों भूल गए? माना कि तुम ग़फ़लत में नहीं हो, तुम यह प्रयोग-सा कर रहे हो कि असत्‌मयी सृष्टि कहाँ तक चलती है। लोग कहाँ तक इस तारीकी को झेल सकते हैं। यह भी हो सकता है कि इससे लाभ उठाकर तुम संत् की ओर चलो—एकदम सतोगुणी सृष्टि बनाओ। सुनो, एक राज़ की बात! तुम इन वैज्ञानिकों की तरह प्रयोग के झंझट में न पड़ो। तुम तो बस इतना कहदो कि दुनिया अच्छी हो जाय और वह अच्छी हो जायगी।)

उनके जीवन की अन्तिम घटना अविस्मरणीय है। लिखा है कि उन पर ७० हज़ार दिरम का कर्ज़ था। यह ऋण, कर्ज़ ले लेकर खैरात करने में हुआ था। इनका अन्त समय आया देख तमाम ऋणदाता इनके घर आ धमके और अपने कर्ज़ अदा कर देने का तक़ाज़ा करने लगे। इन्होंने दुआ की, "ऐ अल्लाह! तू मुझे बुलाता है और मैं इनके हाथ रहन हो चुका हूं। पहले इनका कर्ज़ चुका, फिर मुझे बुला।" कहते हैं, कि वे यह दुआ

कर ही रहे थे कि दरवाज़े से आवाज़ आई—"कर्ज़ वाले बाहर आकर दाम ले जायं।" सब लोग बाहर गये और उनका सारा कर्ज़ चुका दिया गया।

: २० :

बशर हाफ़ी

बशर हाफ़ी का प्रारम्भिक जीवन अच्छा न था पर अपनी मदहोशी में भी उन्होंने ईश्वर के नाम का जो सम्मान किया इसीके उपलक्ष्य में ईश्वर ने उन पर कृपा की और उनके जीवन में वैराग्यमयी क्रान्ति की लहर ने प्रवेश करके उन्हें अन्ततः एक बहुत ही उच्च कोटि का संत बना दिया।

कहते हैं कि एक दिन जनून और मदहोशी की हालत में कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक काग़ज़ पर 'बिस्मिल्ला उर्रहमान उर्रहीम' लिखा देखा। उसे देख हाथ से उठाकर उसमें इत्र लगाकर उन्होंने सम्मानपूर्वक एक उच्च स्थान पर रख दिया। उसी रात किसी संत पुरुष को ख्वाब में हुक्म हुआ कि तुम जाकर बशर हाफ़ी को यह खुशखबरी दे आओ कि जिस तरह तूने हमारे नाम को इज्ज़त दे कर ऊँची जगह दी उसी तरह हम भी तुझे तमाम बुराइयों से पाक (पवित्र) करके आला मर्तबा अता (श्रेष्ठ दर्जा देंगे) करेंगे।

वह संत जब जागे तो ख्वाब पर विचार करने लगे। सोचा, बशर-हाफ़ी तो ज़िंदीक (नास्तिक) और गुमराह (पथ-भ्रष्ट) है। यह ख्वाब मैंने ग़लत देखा है। वह नमाज़ पढ़कर सो गए। फिर उन्होंने यही ख्वाब देखा और फिर यही सोचकर सो गए। तीसरी बार जब फिर उन्हें यही हुक्म हुआ तो उन्होंने बशर हाफ़ी को बुलाया। मालूम हुआ मयखाने (मदिरालय) में हैं। फिर आदमी भेजा तो मयखाने से खबर आयी कि वह मस्त (बेहोश) पड़े हैं। अब उन संत ने कहला भेजा कि उनसे कह दो, "एक शख्स अल्लाह का पैग़ाम लाया है!"

सुनते ही बशर हाफ़ी उठ खड़े हुए। साथियों से विदा लेते हुए बोले, "अल्लाह ने न मालूम क्या अताब नाज़िल (श्राप दिया हो) किया हो। अब शायद मिलना न हो, अलविदा!" अल्लाह का पैग़ाम बाहर आकर

जो सुना तो दिल में एक गुदगुदी भरी चोट-सी लगी। "आह ! कहाँ मेरी यह ज़िंदगी और कहाँ उनकी यह रहमत। एक ज़रासी बात के लिए जब मेरी इतनी इज्ज़त-अफ़ज़ाई (मान-प्रतिष्ठा) की तो अब इस मेहरबानी के लिए उन्हें ज़िन्दगी से कम तो क्या दूं ? अब से यह ज़िन्दगी अल्लाह की हुई और अल्लाह की ही रहेगी।"

उन्होंने तौबा की। अपने सभी बुरे काम छोड़ दिये और बड़ी लगन के साथ खुदा की इबादत में लग गए। खुदा ने उनपर मेहर की। शीघ्र ही उनकी साधना फल लाई और उनकी ज़िन्दगी लोगों के लिए कल्याण-मार्ग दिखानेवाली बन गई। खुदापरस्ती की उमंग में वह हमेशा नंगे पैर ही घूमते। इसीलिए लोग उन्हें हाफ़ी कहते। नंगे पैर रहने का सबब पूछा तो बोले, "जब मैंने तौबा की थी तब नंगे पैरों था, अब जूते पहनते शर्म आती है। अल्लाह ने कहा है, मैंने इन्सान के लिए ज़मीन का फ़र्श बिछाया है और बादशाह के फ़र्श पर जूते पहनकर चलना अदब (शिष्टाचार) के खिलाफ़ है।"

खुदा-परस्तों के लिए "नूरे-इलाही" उनकी आंख का काम देता है और उनको सिवा खुदा के और कुछ नहीं दीखता। उन्हें पैर फैलाना भी बेअदबी-सी मालूम होती है। दरबार में पैर फैलाकर भी क्या कोई कहीं बैठता है ? बशर हाफ़ी को ज़मीन पर थूकने में भी कराहियत (घृणा) होती थी। जिस फ़र्शे ज़मीन को खुदा ने बिछाया है उस पर थूकना कितनी बुरी बात है।

इमाम अहमद हम्बल एक ऊँचे दर्जे के संत थे और वह अक्सर दीवानावार (पागलपन में) फिरनेवाले बशर हाफ़ी के साथ देखे जाते। उनके मुरीदों ने कहा, "आप इतने बड़े बुज़ुर्ग होकर एक दीवाने के साथ क्यों फिरा करते हैं ?" इमाम ने जवाब दिया, "जो इल्म मुझे आते हैं वह यक़ीनन (निश्चय ही) दीवाने से बेहतर जानता हूँ मगर वह दीवाना अल्लाह को मुझसे ज़्यादा जानता है।" अहमद जब हाफ़ी से मिलते तो अरबी की एक सूक्ति द्वारा कहते, "मुझसे मेरे खुदा की बातें करो।" तब दोनों अपने हबीब की चर्चा में महब (लीन) हो जाते और उन्हें पता भी न चलता कि कब सुबह हुई और कब शाम !

एक रोज़ कहीं बाहर जा रहे थे। एक पैर दरवाज़े के बाहर था और एक पैर अभी अन्दर ही था कि उनपर हैरत तारी (जड़ता छा) हो गयी और वह तमाम रात यों ही दरवाज़े में खड़े रहे। एक और दिन का ज़िक्र है कि बशर हाफ़ी अपनी बहन से मिलने गये। कुछ सीढ़ियां चढ़ीं होंगी कि उनपर जड़ता छा गयी। वह तमाम रात वहीं खड़े रहे। जब सुबह

हुई तो मस्जिद में जाकर नमाज़ अदा की और फिर बहन के घर गये। बहन ने पूछा, "रात को तुम्हारा क्या हाल था?" बोले, "मैं सोच रहा था, सभी बशर यानी आदमी हैं। मेरा नाम भी बशर है फिर क्यों उन्होंने मुझपर इतनी इनायत (कृपा) की? दूसरों को क्यों इस नेमत से महरूम (दयापूर्ण उपहार से वंचित) रखा?"

इसी तरह सर्दी के मौसम में एक संत उनसे मिलने गये तो देखा कि नंगे बदन खड़े मारे सर्दी के काँप रहे हैं। पूछा, "नंगे होकर यह तकलीफ़ क्यों झेल रहे हैं?" बोले, "मुझे ख्याल हुआ कि जो दरवेश मोहताज (अभिलाषी) हैं उनका इस सर्दी में न जाने क्या हाल होगा! मेरे पास माल तो था नहीं जो उनकी मदद करता। इसलिए मुझे यही ठीक मालूम हुआ कि जिस्म से ही मैं उनकी मुआफ़िक़त करूँ यानी सर्दी सहने में उनका साथ दूं।" पूछा, "आपको यह मर्तबा कैसे मिला?" बोले, "सिवा खुदा के मैंने अपना हाल किसी पर ज़ाहिर नहीं किया।"

कहते हैं कि हदीस पढ़ने के बाद अपनी तमाम किताबों को ज़मी में दफ़न (दबा) कर दिया और कभी कोई हदीस बयान न की। पूछने पर बताया कि मेरे दिल से अगर नामवरी (ख्याति) की ख्वाहिश मिट जाती तब मैं हदीस की चर्चा करता। इसलिए वह कभी वाज़ (उपदेश) न देते और कहते वाज़ (उपदेश) देने की बजाय जो खुदा को नहीं जानता उससे खुदा की चर्चा करके चुपचाप इसके दिल में खुदा की मुहब्बत पैदा करना मैं कहीं ज़्यादा अच्छा समझता हूं।"

किसी ने पूछा, "बग़दाद में हलाल और हराम का लोग बहुत कम ख्याल करते हैं। आप कहाँ से खाते हैं?" बोले, "जहाँ से तुम खाते हो?" पूछा, "आपको यह मर्तबा कैसे मिला?" बोले, "कम निवाला (अल्प भोजन) और हाथ को कोताह (छोटा) करने से।" बशर हाफ़ी कहते थे कि खाकर हंसनेवाले का दर्जा उससे कम है जो खाकर रोता है। कहते, "हराम तो हराम ही है मगर हलाल में भी फ़िज़ूलखर्ची अच्छी नहीं।" किसी ने पूछा, "सालन (भाजी) किस चीज़ का खाना चाहिए?" बोले, "आफ़ियत (सुख-चैन) का सालन खाओ।" आत्मसंयम निश्चय ही जीवन की सबसे बड़ी सम्पदा है और बशर हाफ़ी इस धन के धनी थे। जिस चीज़ के लिए दिल उतावली करता वह उसे न करते। बाकले की फलियों की सब्जी के लिए उनका दिल बहुत चाहता था पर उन्होंने यह साग कभी न खाया।

बादशाह और क़ाज़ी को संत लोग बहुत अच्छा नहीं समझते क्योंकि उनके हाथ में न्याय-अन्याय की शक्ति है और भूल या प्रमाद से जाने

या अनजाने में इनसे बड़ी भयंकर गलतियाँ हो सकती हैं। इसलिए वैराग्य-मयी वृत्ति के महात्मा इनसे किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखना चाहते। बशर हाफ़ी उस नहर से, जो शाही नौकरों के लिए निकाली गई थी, कभी पानी न पीते। एक संत का लड़का क़ाज़ी (न्याय-कर्त्ता) था। संत का नौकर एक दिन क़ाज़ी के घर में मिलाने के लिए खमीर मांग लाया। संत जब भोजन करने बैठे तो उनकी उंगलियां ही काम न दें। नौकर ने खमीर की बात बताई तो कहा, "लड़का काज़ी है, उसके घर से कभी कुछ भी न लाना।"

संतों के जीवन में प्रायः विरोधाभास देखने में आता है पर इससे उद्विग्न नहीं होना चाहिए। किसी ने लिखा है—"कभी न बोलने वाला खूब बोलता है और कभी-कभी बोलने वाला मौन हो जाता है।" मौन और एकांत वृत्ति के समय संतों को यही स्थिति अच्छी लगती है। खामोशी और किसी से कोई सरोकार न रखने की खूब प्रशंसा करते हैं पर जब वह अपनी साधना से बाहर आते हैं तो लोक-कल्याण के लिए उपदेश आदि भी देते हैं। हसन बसरी को रोता देख राबिया ने कहा था, "आंसू दिखावे के हैं तो उन्हें अन्दर ही रोक रखो ताकि उनकी तेज़ी में तुम्हारा दिल डूब जाय और ढूंढ़े से भी न मिले।" पर जब रोने का वक्त आया तो खुद राबिआ प्रेम के आँसू बहाती देखी गई।

हां तो, बशर हाफ़ी एक मजमे में 'रज़ा-ए-इलाही' (ईश्वरेच्छा) का जिक्र कर रहे थे। किसी ने कहा, "आप सूफ़ी होने की वजह से खल्क़ से कुछ नहीं लेते मगर कोई कुछ दे तो उसे लेकर ग़रीबों को दे दें और खुद रज़ा-ए-इलाही पर ही (गुज़र) करें तो इसमें क्या हर्ज है?" साथियों को यह बात अच्छी नहीं लगी मगर बशर ने प्रसन्नमुद्रा में कहा, "अहले फ़ुक्र (फ़क़ीर) तीन तरह के हैं। एक तो वह जो मासिवा अल्लाह (मात्र प्रभु के) के किसी से कुछ नहीं लेते। वह हानियों (अध्यात्मवादियों) में हैं। दूसरे वह बीच के दर्जे (मध्य श्रेणी) के लोग हैं जो बिना मांगे, जो मिल जाता है उसे ले लेते हैं। तीसरे वह हैं, जो सब्र करते हैं (आत्म-दमन और भजन में लगे रहते हैं)।

हज़रत अहमद-बिन-इब्राहीम का कहना है कि एक बार बशर हाफ़ी ने हज़रत मारूफ़ करखी को उनके द्वारा यह संदेश भेजा कि सुबह को नमाज़ के बाद वह उनसे मिलने आयंगे। अहमद ने मारूफ़ को यह संदेशा पहुँचा दिया और खुद भी उनके आने का इन्तज़ार करते रहे पर वह आये नहीं। अहमद को आश्चर्य हुआ कि बशर जैसा बुज़ुर्ग वायदे का पक्का; आया क्यों नहीं। तब उन्होंने मस्जिद के दरवाज़े से नज़र उठाकर देखा

तो बशर को मुसल्ला उठाए दज्ले की ओर जाते पाया। दज्ले के पानी की सतह पर उन्होंने मारूफ़ से बातें कीं और सुबह तक बैठे रहे।

जब बशर पानी पर से वापिस आये तो अहमद ने उनके पाँव पकड़ लिये और दुआ मांगी। बशर ने उनके लिए दुआ तो की मगर कहा, "किसी से यह हाल ज़ाहिर न करना" और अहमद का कहना है कि उनकी ज़िन्दगी के अन्दर उन्होंने यह बात किसी से न कही। मगर उनसे भी अधिक पोशीदगी (गुप्तता) के क़ायल (पक्षपाती) मालूम पड़ते हैं—संत अली जिरजानी! उन्हें एक चश्मे पर बैठा देखकर जब बशर उनके पास गये तो वह भाग खड़े हुए यह कहकर कि आज मुझसे कोई बड़ा गुनाह हुआ है जो आदमी को देख लिया। बशर ने श्रद्धापूर्वक उनसे नसीहत चाही तो वह बोले, "फ़ुकर (फ़कीरी) को छुपाए रख। सब्र अख्तियार कर। नफ़सानी ख्वाहिश (इन्द्रिय-मोह) छोड़ दे और अपना घर क़ब्र से ज्यादा खाली रख ताकि दुनिया छोड़ने का अफ़सोस न हो।"

(अपनी साधना को गुप्त रखने की वृत्ति निश्चय ही अच्छी है क्योंकि व्यक्त करने से लोग प्रशंसा करते हैं और मन में अहंकार उत्पन्न होता है; पर इस सिद्धान्त का एक दूसरा पहलू भी है। जो बात प्रकाशित की जाती है वही प्रसारित होती है। संत तो अपने गुणों को प्रकाशित करते नहीं और अवगुणों का प्रसार बेतरह हो रहा है। इसीलिए समाज में दोषों की बाढ़-सी आ गई है। अहम्मन्यता के लिए नहीं, लोक-कल्याण की दृष्टि से संतों को अपने सत्कार्यों और सद्भावों को प्रकाश में लाना ही चाहिए। क्योंकि जो चीज़ लोग देखते हैं, सुनते हैं, पढ़ते हैं उसी पर अमल करते हैं। लोगों की वृत्ति छोटे बालकों की तरह अनुकरणशील होती है।)

अल्लाह पर तवक्कुल (ईश्वरेच्छा) बशर के जीवन की सुनहरी विशेषता थी। एक क़ाफ़िला शाम मुल्क से हज को जा रहा था। शाम देश के लोगों ने बशर से भी साथ चलने को कहा; मगर उन्होंने तीन शर्तें रखीं। एक यह कि कोई शख्स ज़ाद सफ़र (मार्ग-व्यय) साथ न ले, किसी से मांगे नहीं और तीसरे अगर कोई कुछ दे तो कबूल न करे। काफ़िलेवालों ने कहा, "पहली दो शर्तें तो हम मानते हैं पर तीसरी शर्त हम अदा नहीं कर सकते कि मिलती हुई चीज़ छोड़ दें।" बशर बोले, तुम्हारा तवक्कुल हाजियों के ज़ाद सफ़र पर है। अगर तीसरी बात भी मान लेते तो तवक्कुल अल्लाह पर होता और मरतब-ए-विलायत (वली का दर्जा) हासिल होता।

एक व्यक्ति ने कहा कि मेरे पास हज़ार दिरम हैं और चाहता हूँ कि हज़ कर आऊं। बशर ने कहा, "हज करने से तो यह बेहतर है कि किसी

कर्ज़दार का कर्ज़ चुका दे कि उसकी मुश्किलें दूर हों और तुझे हज से ज़्यादा सवाब (पुण्य) मिले।" वह बोला, "मेरा दिल तो हज करने को बहुत चाहता है।" बशर ने कहा, "तूने यह दौलत हराम की कमाई से हासिल की है इसलिए तू उससे ज़्यादा सवाब हासिल नहीं कर सकता।" यह अच्छी सलाह थी। एक मोची ने तीन सौ दिरम मुसीबत में पड़े अपने पड़ौसी को देकर इतना सवाब कमाया कि उसकी बदौलत ही उस साल हाजियों को शफ़ाअत (मोक्षदान) मिली।

एक बार बशर ने एक अजनबी (अपरिचित) आदमी को घर में देखकर पूछा, "तू कौन है?" वह बोला, "मैं खिज्र हूँ।" बशर ने कहा, "मेरे लिए दुआ कीजिए।" खिज्र ने कहा, "अल्लाह इबादत तुझ पर आसान कर दे।" बशर ने कहा, "कुछ और कहिए", खिज्र ने कहा कि अल्लाह तेरी इबादत को तुझ से पोशीदा (गुप्त) रखे। (ये दुआ थी कि किसी राज़ का इन्कशाफ़ (भेद खुल जाना)?) स्वप्न में मुहम्मद ने कहा, "ऐ बशर! तुझे कुछ मालूम है कि खुदा ने तेरा रुतबा तेरे साथियों से इतना ऊँचा क्यों किया?" बशर ने कहा, "मैं नहीं जानता।" रसूल ने कहा, "इसलिए कि तूने लोगों को नेक नसीहतदी और मेरे असहाब (सज्जनों) और अहले-बैत (स्थान यानी काबा) से मुहब्बत पैदा की।" दूसरी बार स्वप्न में रसूल ने बशर से कहा, "अमीर लोग शबाब (पुण्य) हासिल करने के लिए फ़क़ीरों पर जो शफ़क़त (दयालुता) करते हैं, वह अच्छी है; पर इससे भी अच्छी बात यह है कि फ़क़ीर अमीरों से कुछ न माँगे और सच्ची श्रद्धा के साथ खुदा पर ही भरोसा करें।"

बशर कहते थे कि जो भला बनना चाहता है वह इन तीन चीज़ों से दूर रहे—१. खल्क़ से हाजत तलब (आवश्यकता पूरी) करना। २. दूसरों को बुरा कहना। ३. किसी के मेहमान के साथ जाना। जो दुनिया में अपनी नुमूद (ख्याति) चाहता है उसको आखिरत (परलोक) की हलावत (मिठास) नहीं मिलती। क़नाअत (भाग्य पर संतोष) से सिर्फ़ दुनियावी इज्ज़त (सांसारिक-मान) ही हासिल होती तो भी क़नाअत अच्छी थी। बोले—यह ख्याल कि लोग मुझे अच्छा जानें दुनिया की मुहब्बत की वजह से होता है। जब तक इन्सान अपने और नफ़्स के दरम्यान लोहे की दीवार का-सा पर्दा कायम नहीं करता तबतक इबादत की हलावत नहीं पाता। तीन काम बहुत मुश्किल हैं—मुफ़लिसी में सखावत (उदारता), एकांत में पर्हेज़गारी (इन्द्रिय संयम), खौफ में सच्चाई।

कहते—बन्दे को अल्लाह ने मारिफ़त (ईश्वर-भक्ति) और सब्र से अधिक अच्छी कोई वस्तु नहीं दी। जो शख्स खुदा के साथ दिल साफ़

रखे उसी को सूफ़ी कहते हैं। वह लोग आरिफ़ हैं, जिनको अल्लाह के सिवा कोई नहीं पहचानता और कोई उनकी इज्जत नहीं करता। जो आज़ादी का मजा चखना चाहता है उसे चाहिए कि अपने ख्याल पाक और दिल साफ़ रखे। बखील (लालची और कंजूस) को देखकर इन्सान का दिल सख्त हो जाता है। इन्सान को उस समय तक सकून (शांति) नहीं मिलता जबतक कि उसके दुश्मन उससे बेखौफ़ नहीं हो जाते। तकब्बुर (घमंड) और खुदबीनी (आत्मश्लाघा) को दूर करके दिल में तसव्वुर (कृतज्ञता-प्रकाशन को जगह) दे।

एक रहस्यभरी मीठी-सी सूक्ति इनकी यह थी, "अल्लाह ने अज़ल (अनादिकाल) में तेरा ज़िक्र दोस्तों में किया है? अब तू दोस्तों में होने की कोशिश कर।" कैसा आश्चर्य है कि जिसने उस समय अपनी दोस्ती का सबूत दिया जब किसी और की दोस्ती काम न आ सकती थी, उसे भूलकर इन्सान दुनिया को दोस्त मान बैठता है। इस दुनिया की दोस्ती भी ठीक-ठीक तभी निभेगी जब वह दोस्तों का दोस्त दिल में शांति से बैठकर प्यार भरी बातें करे। वह कहते—इन्सान तमाम उम्र शुकर (कृतज्ञता) के सिज्दे में पड़ा रहे तब भी हक़ शुकर का अदा नहीं हो सकता। कोई जाने या न जाने यह ज़िन्दगी जामे-शुक्राना (कृतज्ञता का घूंट) है।

बशर फ़क़ीर थे—देने के लिए उनके पास कुछ न था; मगर वह माँगनेवाला भला कब चूकता है। उनका आखिरी वक्त था कि कोई आदमी आया और अपनी ग़रीबी की बात कहने लगा। बशर जो कपड़ा पहने हुए थे, वह उतारकर उसे दे दिया और और खुद किसी से लेकर कपड़ा पहना और उसी हालत में सद्गति पाई। अंत समय उनकी बेचैनी बढ़ गई थी। लोगों ने पूछा, "क्या आप दुनिया की जिन्दगी को दोस्त (लगावट) रखते हैं, नहीं तो बेचैनी क्यों?" बशर ने कहा, "नहीं, मुझे अल्लाह के दरबार में जाना है इसीलिए खौफ़ कर रहा हूँ।"

यह बात लोगों को अजीब-सी लगेगी मगर लिखा है कि बशर जबतक बग़दाद में रहे किसी जानवर ने राह में लीद न की इसलिए कि वह नंगे पैर चलते हैं; कहीं नजासत (गंदगी) उनके पैरों में न लग जाय। एक दिन सरे-राह (बीच राह) एक चौपाये ने लीद की। उसका मालिक समझ गया कि आज ंत बसरी ने अपनी लीला-संवरण कर ली। किसी को ख्वाब में बशर दिखाई दिये तो कहा, "खुदा ने नाराज होकर मुझसे कहा कि दुनिया में तू मुझसे इतना ज़्यादा डरता क्यों था? क्या तुझे नहीं मालूम था कि मैं करीम हूँ (दया और क्षमा मेरे भषण हैं)?

एक दूसरे व्यक्ति ने स्वप्न में उन्हें देखकर हाल पूछा, तो कहा, "खुदा ने मुझे बख्श दिया और फर्माया तुझपर मर्हबा (तू धन्य है) इसलिए भी कि जब हमने तुझे दुनिया से उठाया तो कोई दुनिया में तुझसे ज्यादा हमारा दोस्त न था।" बशर कहते, "दिल मेरा बादशाह है और उसकी रैयत (प्रजा) तक्वा (संयम) हैं। मुझ में यह ताकत नहीं कि बगैर इजाज़त सफ़र करूँ। जो दुनिया में, इस छोटी-सी ज़मीन पर उनके हुक्म के बग़ैर कहीं न आया-गया वह आखिरत की कहीं बड़ी दुनिया में बिना हुक्म सफ़र करने की हिम्मत कैसे करता?"

इमाम अहमद हम्बल के पास एक स्त्री एक प्रश्न लेकर हाज़िर हुई। वह बोली, "मैं कोठे पर बैठी सूत कात रही थी और शाही रोशनी रास्ते से गुज़री। मैंने उस रोशनी में थोड़ा-सा सूत काता पर मैं यह तय नहीं कर पा रही हूं कि वह जायज है कि नहीं।" अहमद हम्बल ने स्वभावतः ही पूछा, "यह तो बता कि तू है कौन?" स्त्री बोली, "मैं बशर हाफ़ी की बहन हूं।" हम्बल बोले, "तेरे लिए नाजायज है; क्योंकि तेरा खानदान परहेज़गारी का है। तू अपने भाई की पैरवी कर—वह ऐसे थे कि हराम की कमाई की रोटी सामने आने पर उनके हाथ ही काम न देते।"

: २१ :

बायज़ीद बस्तामी

बायज़ीद मुस्लिम-जगत् के एक बहुत ही उच्च-कोटि के पहुंचे हुए संत हुए हैं। उनके जीवन-निर्माण में उनकी माता बड़ी सहायक हुई। उन्हें अपने पास रखकर स्वयं उनकी देख-रेख करके नहीं, बल्कि अपने कलेजे पर पत्थर रखकर बचपन में ही उन्हेंअपने से दूर करके उनकी इच्छानुसार ही उन्हें खुदा को सौंपकर। बात यह हुई कि छुटपन में जब उन्होंने एक आयत पढ़ी, जिसका भाव यह था—"तू माँ-बाप की और मेरी इज्ज़त कर।" तब उनके मन में यह विचार आया और वह मदर्से (शाला) के गुरु से आज्ञा लेकर अपनी माँ के पास घर आये।

बेवक्त उन्हें आया देख माँ ने पूछा, "बेटा, आज तुम जल्दी कैसे चले

आये ?" वालक बायज़ीद वस्तामी ने कहा ? "माँ, आज मैंने एक आयत पढ़ी जिसमें ख़ुदा कहता है कि मेरा और माँ-बाप का शुक्र करो। शुक्र तो ख़िदमत से ही हो सकता है। मुझे दो की ख़िदमत मुश्किल मालूम होती है। इसलिए या तो ऐसा कर कि तू मुझे ख़ुदा से माँग ले ताकि मैं तेरी ख़िदमत करूँ या फिर क़तई ख़ुदा को ही सौंप दे ताकि मैं दिलोजान से उसकी ख़िदमत में लग जाऊँ।" होनहार संत की ऊँचे दिलवाली माँ ने कहा, "जा वेटा, मैंने अपना हक़ छोड़कर तुझे ख़ुदा के हवाले किया (ईश्वर को सौंप दिया)।

वालक वायज़ीद ने वस्ताम छोड़ दिया और मुल्क शाम के जंगलों में जाकर आराधना प्रारम्भ की। वहुत से संतों के उन्हें वहाँ दर्शन हुए। संस्कार अच्छे थे और दिन-रात मेहनत करके उन्होंने तीन साल में ही वहुत कुछ पा लिया। जानकार लोगों का कहना है कि अद्वैत में उनकी वहुत गहरी गति थी। वह उनके उस अद्वैत-ज्ञान का प्रारम्भ था—जहाँ वहुत-से ज्ञानी जाकर रुक गए, आगे न वढ़ सके। जुनैद बगदादी नाम के मशहूर संत उनकी तौहीद (ईश्वर को एक मानना) के क़ायल थे। वायज़ीद ख़ुद कहते थे, "दो सौ साल तक इल्म हासिल (ज्ञानोपार्जन) करने में लोग लगाएँ, तव कहीं शायद उन्हें कोई ऐसा फूल मिले; जैसे कि मुझे शुरुआत में ही वहुत-से मिले।"

हज करने चले तो चन्द कदम चलकर नमाज पढ़ते। इस तरह रुक-रुक कर नमाजें पढ़ते हुए वारह साल में मक्का पहुंचे। अक्सर कहते कि ख़ुदा का दरवार कुछ दुनिया के शाहों (राजाओं) का दरवार तो है नहीं कि उठे और दरवार में पहुँच गए। उसकी राह तो विनम्रता और प्रेम भरी प्रार्थना के साथ तै करनी चाहिए। लोग जव मक्का जाते हैं तो मदीना के दर्शनों को भी जरूर जाते हैं क्योंकि वहाँ हज़रत मुहम्मद की कब्र है। पर वायजीद ने कहा, "मैं मक्का के तुफ़ैल (हेतु) में मदीना न जाऊंगा। मैं ख़ुद मदीना के दर्शनों के लिए कभी चलकर आऊँगा। दूसरे साल मदीना की यात्रा पर निकले तो वहुत से लोग साथ हो लिये। उन्होंने प्रार्थना की कि या ख़ुदा, मुझे इन दुनियावालों के साथ से दूर रख। फिर एक दिन सवेरे की नमाज के वाद लोगों की ओर देखकर वह आयत पढ़ी जिसका अर्थ है: "मैं ख़ुद ख़ुदा हूँ, मेरी ही परस्तिश (पूजा) लोग करते हैं।" लोगों ने समझा, यह दीवाने हो गए हैं और उनका साथ छोड़ दिया। अव यह अकेले सफ़र करने लगे। रास्ते में एक खोपड़ी पड़ी मिली जिसपर कुछ लिखा देखकर चीख मार कर वेहोश हो गए। जव उठे तो उसे चूमा और कहा, "यह किसी सूफ़ी का सिर मालूम होता है, जो याद में इतना

महव (लीन) है कि न किसी की बात सुनता और न किसी से बोलता है और न किसी को देखता है ।"

जू-उल-नून मिस्री ने एक शिष्य को भेजकर इनसे कहला भेजा, "तुम रात को सोते और ऐशोआराम करते हो, यहाँ तक की काफ़िले से बिछुड़ जाते हो ।" इन्होंने जवाब में कहा, "जो रात भर सोए और ऐश करे और काफ़िले से बिछुड़ जाय और फिर काफ़िले वालों से पहले अपने मंज़िले-मक़सूद (अभीष्ट लक्ष्य) तक जा पहुँचे वह कामिल (फ़क़ीर) है ।" जू-उल-नून ने यह सुनकर कहा, "यह मर्तबा जिसे अल्लाह ने अता किया है, उसे मुबारिक हो ।" मदीना के सफ़र में एक ऊँट साथ में था, जिस पर बेहद असबाब लदा देखकर लोगों ने शिकायत की । आप बोले, "ज़रा ग़ौर से देखो ।" लोगों ने देखा, "सामान ऊँट की पीठ से ऊंचा है ।"

जब मदीना के दर्शन हो गए तो दिल में ख्याल आया कि अब माता के दर्शन करने चाहिए और वहाँ से वह बस्ताम की ओर रवाना हो गए । फ़जर की नमाज के वक्त मकान पर पहुँचे । कान लगाकर सुना तो मालूम हुआ कि माता वुज़ू कर रही है और यह दुआ मांग रही है, "ऐ अल्लाह, मेरे मुसाफ़िर (यात्री यानी मेरे बेटे) को आराम में रखना और बुज़ुर्गों को उससे राज़ी रखना और नेक बदला उसे देना ।" सुनकर दिल भर आया । बहुत देर बैठे रहे और फिर दरवाजा खटखटाया । माता ने पूछा, "कौन है ?" बोले, "तुम्हारा मुसाफिर ।"

माँ ने दरवाज़ा खोला । जैसे गाय बछड़े के लिए हुमकती है वैसे ही माँ बड़े प्रेम से मिली और बोली, "तुमने सफ़र में बहुत दिन लगा दिये । तुम्हारी मुहब्बत में रोते-रोते मेरी आँखों की रोशनी जाती रही और मेरी पीठ ग़म की वजह से झुक गई ।" बायज़ीद कहते कि जिस काम को मैं सबसे पीछे जानता था, वह सबसे अव्वल (प्रथम) निकला और वह थी मेरी माँ की खुशनूदी । वह यह भी कहते कि खुदा ने जो-कुछ मेहर मुझ पर की, इल्म (ज्ञान) और मारिफ़त (प्रभु-भक्ति) मुझे हासिल हुई वह सब माँ की मुहब्बत भरी दिली-दुआ से ही ।

भगवान किसी का हक़ नहीं छीनते । बायज़ीद की माँ ने अपना हक़ छोड़कर उन्हें जो बचपन में ही खुदा के हवाले कर दिया था, उसका एक बहुत अच्छा बदला उन्होंने चुकाया । कहते हैं कि बायज़ीद को बहुत कुछ मिला कर एक पहेली उनकी अनबुझी ही रही और वह बुझी उस सर्दी की रात को, जब पानी की सुराही लिये वह रात भर माँ के सिरहाने खड़े रहे और उनके हाथ ठंड से ठिठुर गए । सोते से जागकर माँ ने पीने को पानी

माँगा; मगर उस वक्त घर में पानी बिल्कुल न था। वह सुराही लेकर नहर पर पानी भरने गये।

जब तक वह पानी लेकर लौटे तब तक माँ फिर गहरी नींद में सो गई। वह सुराही लिये माँ के सिरहाने बहुत देर तक खड़े रहे। जब माँ की नींद खुली तो उन्होंने पानी पिलाया। माँ ने कहा, "बेटा, तुम इतनी देर तक खड़े क्यों रहे ?" बायज़ीद ने कहा, "मैंने सोचा आप जागें और पानी तैयार न मिले तो आपको तकलीफ़ होगी।" एक बार और भी ऐसी ही बात हुई। खुद बायज़ीद ने लोगों से इसका ज़िक्र किया। रात को जगाकर माँ ने कहा, "एक किवाड़ खोल दो", यह कहकर वह सो गई। दाहिना किवाड़ खोलने को कहा है कि बायां, इसी फ़िक्र में रात भर खड़े रहे, माँ ने सुना तो बड़ी दुआएँ दीं।

वह जब नमाज़ पढ़ने जाते तो अक्सर दरवाज़े पर खड़े होकर रोया करते। लोगों ने कारण पूछा, तो कहा, "मैं अपने-आपको देखता हूँ तो अज़हद नापाक (अत्यंत अपवित्र) पाता हूँ और डरता हूँ कि कहीं मेरे अन्दर जाने से मस्जिद नापाक न हो जाय।" एक बार हज के इरादे से गये तो कुछ मंजिलों तक जाकर बस्ताम वापस आ गए। लोगों ने पूछा, "यह आपने कैसी अजीब बात की कि बिना हज पूरा किये रास्ते से ही लौट आय ?" बोले, "रास्ते में मुझे एक जंगी (सैनिक) मिला। उसने कहा, घर लौट जा, खुदा को तो बस्ताम में छोड़ आया और हज को जा रहा है। उसकी बात सुनकर मैं लौट आया।"

जब वह इबादत करने बैठते तो मकान के तमाम सूराख बन्द कर देते कि कहीं बाहर की किसी आवाज़ से उनके ध्यान में बाधा न पड़े और दिल याद से ग़ाफ़िल न हो जाय। बस्ताम के रहनेवाले किसी नामी संत का कहना था कि तीस साल तक मैं इनके साथ रहा; मगर कभी आपको बात करते न देखा। सदा अपना सर घुटनों पर टेके रहते और जब सिर उठाते तो एक आह भरते और फिर सिर को घुटनों पर रख लेते।

संत अबु मूसा ने पूछा, "खुदा की राह में आपको कौन-सी बात सबसे मुश्किल मालूम हुई।" वे बोले, "खुदा की मदद के बिना उसकी ओर दिल को ले जाना मुझे सबसे मुश्किल मालूम हुआ और जब उनकी रहमत हुई तो दिल बिना मेरी किसी कोशिश के उनकी ओर रुजू हुआ और मुझे उनकी ओर खींचने लगा।" फिर बोले, "चालीस साल तक मैंने वह चीजें न खाईं, जो अक्सर लोग खाते हैं, मुझे ताकत कहीं और से ही मिलती रही। चालीस साल तक दिल की निगहबानी (देख-भाल) की, तीस साल तक अल्लाह की

तलाश की तब देखा कि तालिब (इच्छुक) वह है और मैं मतलूब (इच्छित)।"

एक बार एकांत में इनके मन से यह कलमा निकला—"सुभानी माआज़म शाफ़ी" (अर्थात् मैं महान् और पवित्र हूँ)। यह शब्द ईश्वर को ही शोभा देते हैं इसलिए शिष्यों ने जब उनसे इसका ज़िक्र किया तो बोले, "अनजान में मेरे मुंह से ये अल्फ़ाज़ (शब्द) अगर फिर निकलें तो तुम दो टुकड़े कर देना।" दूसरी बार जब फिर उन्होंने यों ही कहा तो शिष्य उन्हें मारने दौड़; मगर उन्होंने देखा कि मकान भर में बायज़ीद-ही-बायज़ीद हैं। वह छड़ी मारते तो ऐसा लगता कि पानी पर छड़ी मारते हों और कुछ देर में सूरत भी ग़ायब।

उन्होंने बारह साल तक अपने मन को तपस्या की भट्टी में जलाकर मुजाहिदा (हठयोग) की आग से तपाया और मलामत (भर्त्सना) के हथौड़े से कूटा। उसके बाद उनका नफ़्स (इन्द्रिय—अंतःकरण) आइने की तरह हो गया। फिर पाँच साल तक उसमें उन्होंने अपने-आपको देखा और भांति-भांति की आराधनाओं की कली उसपर की। फिर एक बार जब उन्हों उसपर ऐतबार (विश्वास) की नज़र डाली तो ख़ुदपसन्दी (स्वाभिमान, आदि) के ज़न्नार (यज्ञोपवीत) उसके गले में पड़े देखे। फिर पाँच साल असीम श्रम करके उन आत्म-विश्वास जागृत दोषों को दूर किया और फिर से मनको ईश्वरार्पित किया।

वह कहते थे कि इस तरह सच्चा मुसलमान बनकर जब मैंने दुनिया पर नज़र डाली तो सबको मुर्दा पाया। उन सब पर नमाज़े-जनाज़ा (अर्थी पर पढ़ी जानेवाली नमाज़) पढ़कर मैं दुनिया से इस तरह दूर हो गया जैसे जनाज़े के नमाज़ी जनाज़े-नमाज़ा पढ़कर कयामत (प्रलय) तक के लिए उससे दूर हो जाते हैं। तिस पर भी उन्हें एक बार गुमान हुआ कि मैं अपने ज़माने का बहुत बड़ा शेख़ हूँ। ख़ुरासान जाते वक्त तीन दिन तक वह एक मंजिल पर ही ठहरे रहे और इबादत की कि ऐ अल्लाह, जबतक तू मुझे अपनी असली हालत से आगाह नहीं कर देता तबतक मैं आगे न जाऊँगा।

चौथे दिन बायज़ीद ने देखा कि एक काना आदमी ऊँट पर सवार उधर आया। ऊँट की तरफ देखकर उन्होंने ठहरने का इशारा किया तो ऊँट के पैर जमीन में धँस गए। वह शख़्स, जो ऊँट पर सवार था, बोला कि क्या तू चाहता है कि मैं खुली आँख बंद करके अपनी बन्द आँख खोलूं और शहर बस्ताम को बायज़ीद सहित डुबा दूं? यह सुनकर बायज़ीद बदहवास (व्याकुल) होकर बोले, "आप कहाँ से आये हैं?" वह शख़्स बोला, "जब तुमने अल्लाह से आगे न जाने का अहद (वचन) किया था

तब मैं यहाँ से तीन हजार फरलांग की दूरी पर था, वहाँ से आ रहा हूं," और फिर यह कहकर, "तू अपने दिलकी निगहवानी कर और खबरदार होजा", वह शख्स गायब हो गया ।

(इस कहानी से तो ऐसा अर्थ निकलता है कि कोई कितनी ही साधना क्यों न करे, हज़ार वर्ष की तपस्या के पश्चात् भी मन के प्रति असवाधान होना ख़तरे से ख़ाली नहीं। कितना ही साफ़ क्यों न हो आइना अगर वह बराबर साफ़ होता न रहेगा तो उस पर धूल जम ही जायगी। इसी प्रकार तपः-सिद्ध मानव के मन को भी प्रकृति-जन्य-संसर्ग-दोष से बचाए रखने के लिए ब्रह्म-दर्शन और भक्तिभाव से प्लावित करते रहना चाहिए।)

एक बार अपने शिष्यों सहित एक गली में से जा रहे थे। सामने से एक कुत्ता आ रहा था। उसे देखकर वह एक ओर हट गए। उनके पीछे उनके शागिर्दों को भी हटना पड़ा। एक शागिर्द के यह पूछने पर कि आपने कुत्ते की इतनी इज्जत क्यों की ? बोले, "उसने मुझे पूछा, क्या सबब है कि वह तो अजल (अनादि काल) में कुत्ता बना और मैं संत ? मुझ में क्या खासियत थी और उसका क्या गुनाह था। मैंने दिल में कहा, यह खुदा की मेह्र थी कि उसने मुझे कुत्ते पर फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) दी और इसीलिए मैंने उसके लिए राह खाली कर दी।"

एक बार राह में कुत्ते को देखकर अपना दामन समेट लिया। कुत्ते ने कहा, "आपने दामन क्यों समेटा ? अगर मुझसे दामन भी छू जाता तो आप उसे धो सकते थे पर यह जो नखवत (वर्गजनित घृणा)आपने की इसे तो सात दरियाओं का पानी भी दूर नहीं कर सकता।" बायज़ीद बोले, "तू सच कहता है। तुझमें अगर बाहरी, तो मुझमें अन्दरूनी नापाकी है, सो हम-तुम साथ रहें ताकि मुझमें भी कुछ पाकीजगी (पवित्रता) आ जाय।" कुत्ते ने कहा, "हमारा साथ रहना नामुमकिन है, क्योंकि मैं नफ़रतज़दा (घृणायोग्य) हूं और आप पाक समझे जाते हैं।" फिर एक चुटकी-सी लेकर उसने कहा कि मैं दूसरे दिन के लिए हड्डी नहीं रखता, आप अन्न लाकर जमा करते हैं। बायज़ीद बोले, "जब कुत्ते के ही लायक नहीं तब ख़ुदा की ख़ुदाई (ईश्वर-सान्निध्य) कैसे मिलेगी ?"

बायज़ीद कहते हैं कि एक बार मुझे अपने बारे में कुछ शक हुआ और सोचा कि अब मैं ज़ुन्नार खरीद कर बाँधूं। बाजार में आकर ज़ुन्नार की कीमत पूछी तो दूकानदार ने हज़ार दिरम कहा। मैंने गर्दन झुका ली। ग़ैब से आवाज़ आई कि तुम -ऐसे लोगों को हज़ार दिरम से कम का ज़ुन्नार नहीं लेना चाहिए। मेरा वह शक दूर हो गया और समझ गया कि ख़ुदा की मुझ पर मेह्र है।

बायज़ीद से लोगों ने पूछा, "आपका पीर कौन है ?" बोले, "एक बुढ़िया।" फिर एक घटना सुनाई कि एक बार म जंगल में था। एक बुढ़िया आटे का बोझ सर पर रखे हुए आई और मुझसे कहा, मेरा यह आटा घर पहुँचा दे। इतने में एक शेर दिखाई दिया। मैंने वह आटा शेर की पीठ पर रख बुढ़िया से कहा, तू इसके साथ जा। यह आटा पहुँचा देगा। और फिर पूछा, तू घर जाकर क्या कहेगी ?" बुढ़िया बोली, "मैं कहूँगी कि आज जंगल में खुदनुमा ज़ालिम (घमंडी और निर्दयी) से मिली।" पूछा, "क्यों ?" बोली, "तूने शेर को बेसबब तकलीफ़ दी, इसलिए ज़ालिम; और तू दुनिया को दिखाना चाहता है कि शेर भी तेरे बस में है, यही खुदनुमाई, और सबसे बड़ा ऐब है।"

बुढ़िया की यह बात बायज़ीद के मन को लगी और मन-ही-मन उन्होंने उसे अपना गुरु मान लिया। इसके बाद जब कोई चमत्कारी घटना उनके जीवन में संघटित होती तो उसकी सात्विकता का प्रमाण वह ईश्वर से चाहते। ऐसे समय पीला प्रकाश प्रकट होता और उस रंग में पाँच पैग़म्बरों के नाम हरे रंग में लिखे नज़र आते। तब वह समझते कि यह करामात जायज़ है; क्योंकि अक्सर शैतान संतों को गुमराह करने के लिए तमाशा दिखाकर उनके दिल में अहंकार पैदा करता है।

अहमद खिज़रविया अपने शागिर्दों के साथ उनसे मिलने आये तो उनका एक शागिर्द, जो हवा पर उड़ता और पानी में चलता था, इज़्ज़त के ख्याल से बाहर ही खड़ा रहा। वह बोला, "मैं यहाँ आपकी चीजों की रखवाली करूंगा क्योंकि मुझमें उनके दीदार की ताब नहीं। बायज़ीद ने कहा, "तुम्हारे शागिर्दों में, जो सबसे अच्छा है, वह तो आया ही नहीं, उसे भी बुलाओ।" जब उसे बुलाया तब वह आया। फिर बायज़ीद सन्त अहमद से बोले, "कब तक यों ही घूमते रहोगे। जो मुक़ीम (स्थिर) है वह सफ़र से कैसे मिलेगा ?" अहमद बोले, "यह उसूल है कि पानी एक जगह ठहर जाता है तो बदरंग और बदबूदार हो जाता है।" वह बोले, "क्यों न दरिया बन जाओ कि न रंग बदले और न बू पैदा हो।" फिर उन्होंने अहमद से मारिफ़त (प्रभु-प्रेम) की बातें की।

इतने में सन्त अहमद पूछ बैठे, "मैंने आपके घर के पास शैतान को सूली पर चढ़े देखा। उसका क्या माजरा है ?" बोले, "मने उससे अहद (वचन) ले लिया था कि बस्ताम में न आवे। मगर वह अहद को भूलकर आदमी को बहकाने बस्ताम आया। इसकी सज़ा में सूली पर चढ़ा है।" इतने में किसी ने पूछा, "यह आपके पास इतनी औरतें कैसे हैं ?" बोले, "यह औरतें नहीं फरिश्ते हैं, जो अक्सर इल्मी मस्ले (प्रश्न) पूछने आते हैं।"

इन्हीं सन्त अहमद का कहना है कि जब मुझे ईश्वर के दर्शन हुए तो उन्होंने मुझसे कहा कि और लोग तो अपनी-अपनी ज़रूरत की चीजें मुझसे मांगते हैं मगर बायज़ीद मुझसे मुझे ही तलब (मांग) करता है। एक इमाम मिलने आ । दोनों ने साथ मिलकर नमाज़ पढ़ी। फिर इमाम ने बायज़ीद से पूछा, "आपकी रोज़ी का कोई ज़रीआ तो दीखता नहीं, फिर आप कहां से खाते हैं ?" बोले, "फिर से नमाज पढ़कर जवाब दूंगा।" इमाम ने आश्चर्य से कहा, "फिर नमाज क्यों ?" बोले, "जो रोज़ी देने-वाले को नहीं जानता उसके पीछे पढ़ी हुई नमाज़ कबूल नहीं होती।" बायज़ीद का यह जवाब निहायत वाजिब था (बहुत ही समुचित था)।

बायज़ीद पर जब कोई मुसीबत आती तो वह प्रेम भरे स्वर में कहते, "या अल्लाह ! तूने रोटी दी है तो सालन भी दे ताकि उसे अच्छी तरह से खाऊँ", (अर्थात् यह मुसीबत तेरी दी हुई है तब उसको सहन करने की शक्ति यानी सब्र भी दे !)। एक आदमी को मस्जिद में नमाज़ पढ़ते देखकर उससे कहा, "अगर तू समझता है कि यह नमाज़ अल्लाह तक पहुंचायगी तो तू ग़लती पर है। अगर नमाज़ छोड़ देगा तो काफ़िर हो जायगा और जो नमाज़ की वजह से तकब्बुर करेगा तो मुशरिक (जो ईश्वर को एक नहीं मानता) हो जायगा। तो मुझे भूखे रहने के सिवा कुछ नहीं मिला, जो मिला सो उसकी रहमत से मिला; अपनी कोशिश से नहीं।"

एक बार इन्हें इल्हाम (देव-वाणी) हुआ कि खिदमत और इबादत तो बहुत है, ऐसी चीज़ को अपनी साधना बना जो हमारे खजाने में नहीं है। बोले, "या अल्लाह, ऐसी कौन-सी चीज़ है जो तेरे खज़ाने में नहीं है।" हुक्म हुआ कि बेचारगी (दीनता) और इज्ज़ (सम्मान) यानी विनय हासिल कर; क्योंकि यह चीजें हमें पसन्द हैं और जिनके पास यह होती हैं उन्हें हम अज़ीज़ रखते हैं। (इस प्रेमालाप में भक्तों के लिए बड़ा ही सुन्दर संकेत है कि उसकी साधनाएँ ऐसी हैं जिससे अहंकार ही बढ़ता है और निरहंकारिता या निरभिमानता भक्त के सर्वोत्तम आभूषण हैं और वह भगवान को बहुत प्रिय हैं)।

उनका शिष्य कह रहा था कि मुझे उस पर हैरत (आश्चर्य) है जो अल्लाह को जानता है और उसकी इबादत नहीं करता। वह बोले, "मुझे उस इंसान पर हैरत है जो अल्लाह को पहचानने के बाद उसकी इबादत करता है यानी अल्लाह को जानकर होश में कैसे रहता है !"

वह कहते—मैं पहली बार जब हज को गया तो खान-ए-काबा को देखा। दूसरी बार जब हज को गया तो न काबा दीखा न मालिके-काबा, यानी हर बार यादे-इलाही (प्रभु-स्मरण) मुझे अधिक होती गई।

वह कहते—मेरी सारी उम्र इस ख़ाहिश में ही गुज़र गई कि कोई नमाज़ ऐसे प्यारे भरे दिल से पढ़ूं कि कबूल हो जाय। मगर यह ख़ाहिश अब-तक पूरी न हुई। सारी रात नमाज़ पढ़ता इसी ख्याल से कि शायद अबकी बार की नमाज़ कबूल के काबिल हो। आख़िर सबेरे के वक़्त कहते—जैसा भी है मुझे उन्हीं में शुमार कर ले। कहा—चालीस साल रियाज़त (श्रम) के बाद हिजाब (रहस्य) का पर्दा पूरा हुआ तो मैंने राह चाही। हुक्म हुआ, टूटी हुई बंधनी और फटी हुई पोस्तीन जब तक तेरे पास है तबतक वह न मिलेगी और दूसरों को भी यह बात सुना दे।

यहां कुछ सूक्तियाँ दी जाती हैं—अल्लाह पहले ज़मीन के शिकस्ता-दिलों (निराश) में रहता है। इसलिए पहले आस्मान यानी फ़रिश्ते पहले ज़मीन से शिकस्ता-दिलों को ढूंढ़ा करते हैं। तमाम ख़ल्क़ को बख्श देने की इबादत करने पर मालूम हुआ कि हर किसी के साथ एक शफ़ीअ (सिफ़ारिशी) है और ख़ुदा उनपर मुझसे ज़्यादा मेहरबान है। शैतान पर रहमत करने को कहा तो सुना—वह आग का है। आग को आग ही बेहतर है। किसी ने पोस्तीन मांगी तो कहा—तू मेरी खाल भी ले ले तो भी फ़ायदा न होगा जबतक मेरे जैसे ही अमल न करेगा। एक दिन बोले, "अल्लाह मेरी ओर नज़र कर।" उत्तर मिला, "बायजीद, तेरे ऐमाल ?" बोले, "नज़र से ऐमाल (कर्म) ख़ुद ही अच्छे हो जायंगे।"

बायजीद दिल को ढूंढ़ा तो आवाज़ आई, "हमारे सिवा दूसरे की तलाश न कर। तुझे दिल से क्या काम ?" एक उनकी सूक्ति है—मुर्दा वह नहीं जो किसी चीज़ की तलाश करे बल्कि मुर्दा वह है जो चीज़ उसे दरकार हो ख़ुद ही उसके पास आ जाय। कहा—जिनके दिलों को अल्लाह ने मारिफ़त का बोझ उठाने वाला न पाया उन्हें अपनी इबादत में लगा दिया। आशिक का इश्क़ ही की तरफ देखना बुरा है और मतलूब के सिवा और कुछ मांगना नारवा है। एक ऐसा इल्म है, जिसे आलिम नहीं जानते और एक ऐसा ज़ुह्द है जिसे ज़ाहिद नहीं जानते।

सूक्ति—बातचीत आज पर्दे के बाहर है। (पर्दे के अन्दर शांति और आनन्द है)। अच्छे काम से अच्छों की सोहबत अच्छी है और बुरे काम से बुरों की सोहबत बुरी है। आरिफ़ (ज्ञानी) अपने को जाहिल (मूर्ख) और जाहिल अपने को आरिफ़ कहता है। आरिफ़ सिवा विसाले-हक़ (प्रभु-मिलन का अधिकार) के किसी चीज़ से ख़ुश नहीं होता ! हुर्मत (मर्यादा) की निगाहदाश्त (देख-रेख) करनेवाला अल्लाह तक पहुंचता है। जैसा हो वैसा ही ज़ाहिर करे या जैसा ज़ाहिर करे वैसा ही हो जाय। नफ़्स और दिल पर हमेशा नज़र रखो।

सूक्ति—ख्याल था कि मैं अल्लाह को दोस्त रखता हूँ मगर मालूम हुआ कि मैं नहीं, वह मुझे दोस्त रखता है। लोग रियाज़त (श्रम) पर नज़र करते हैं; पर मैं अल्लाह पर नज़र करता हूँ! लोगों ने मुर्दों से इल्म सीखा, मैंने ऐसे ज़िन्दे से सीखा जिसे मौत नहीं। "तूने यह काम क्यों किया?" क़यामत में यह पूछे जाने से बेहतर यह होगा कि यह पूछा जाय, "यह काम तूने क्यों नहीं किया?" पूछा, "मैं तेरी राह में कैसे आ सकता हूं।'?" हुक्म हुआ, "खुदी छोड़कर आ सकता है।"

लोगों ने पूछा, "आप भूखे रहने की तारीफ़ करते हैं?" कहा, "फ़रऊन भूखा रहता तो खुदाई का दावा न करता।" लोगों ने कहा, "आप हवा और पानी पर चलते हैं।" बोले, "यह सब कुछ नहीं, मर्द वह है, जो सिवा खुदा के किसी से दिल न लगाय।" बोले—मैं वह समन्दर हूं, जिसकी इब्तिदा और इन्तिहा (आरंभ और अंत) और गहराई का पता नहीं। किसी ने पूछा, "आस्मान क्या है?" कहा, "मैं हूं।" पूछने वाला पूछता जाता था और वह कहते जाते थे, "इब्राहीम, मूसा और मुहम्मद मैं हूं।" फरिश्तों का नाम लिया तो कहा, "यह सब भी मैं ही हूं।" कहा—जो हक़ में फ़ना (नष्ट) हो जाता है वह सबको अपने में पाता है, क्योंकि सब कुछ हक़ ही है।

: २२ :

यह्या-बिन-मुआज़ राज़ी

संत यहिया की दिमाग़ी ऊंची उड़ानों का नमूना उस उत्तर में मिलता है, जो उन्होंने अपने एक भाई का खत पाने पर भेजा था। उनके यह भाई भी फ़क़ीरी तबियत के थे। और उन्होंने काबा की मुजाविरी (दरगाह की सेवा करनेवाला) को अपनी ज़िन्दगी का काम बनाया था। खत में भाई ने लिखा, "मेरी तीन तमन्नाएँ (कामनाएँ) थीं, दो पूरी हो गईं। दुआ कीजिए कि तीसरी भी पूरी हो।"

भाई की पहली इच्छा यह थी कि वह किसी पाक जगह (पवित्र तीर्थ-स्थान) पर निवास करें। काबे के मुजाविर होने से यह इच्छा तो

पूरी हो ही गई। दूसरी इच्छा थी सेवा-अर्चा में बाधा न पड़े, सो ख़िदमत के लिए ख़ुदा ने एक दासी दे दी, जो वुज़ू के लिए पानी ला देती थी और वह ख़ुश थे। उन्होंने अन्त में लिखा, "अब सिर्फ एक तमन्ना बाकी है, मौत से पहले आपको देखूं। दुआ करें, यह भी पूरी हो।"

सन्त यहिया ने भाई को जवाब में लिखा, "आदमी को ख़ुद पाक होना चाहिए। उसके पाक होने से उसके रहने की जगह भी पाक हो जाती है। दूसरे, आपको ख़ादिम (सेवा करने वाला) बनना चाहिये न कि मख़दूम (सेवा करानेवाला—पूज्य)। तीसरे, अगर आप अल्लाह से ग़ाफ़िल न होते तो हर्गिज़ मैं आपको याद न आता। अल्लाह को याद कीजिए और भाई-बहन, औलाद को तर्क कीजिए। अगर आप अल्लाह को पा लेंगे तो मुझसे सरोकार न रहेगा और अगर अल्लाह को न पाया तो मुझी को मिलने से क्या फ़ायदा होगा ?"

वह ख़ौफ़ और रज़ा पर अक्सर बोलते। ख़ौफ़, (अर्थात्, ईश्वर का भय और रज़ा अर्थात्, ईश्वर की कृपा में विश्वास)। वे कहते, "बहिश्त पैदा करने से ज़्यादा अल्लाह का यह अहसान है कि उसने दोज़ख़ पैदा की; क्योंकि अगर दोज़ख़ का ख़ौफ़ न होता तो कोई इबादत करके बहिश्त के लायक नहीं होता।" दुनिया इबादत की जगह है और बन्दा भय और विश्वास के बीच हमेशा सोचता है न मालूम मैं ज़िन्नती (स्वर्ग का अधिकारी) हूं कि नहीं। वे कहते, "गुनाह न करो, यही एक बड़ी इबादत है।"

उन्हें ख़ुद ख़ुदा का कितना ख़ौफ़ रहता इसका पता एक छोटी-सी घटना से लगता है। एक बार उनके मकान का चिराग़ हवा से गुल हो गया (बुझ गया)। उनके दिल में ख़्याल आया कि कहीं ईमान और तौहीद (अद्वैतवाद—ईश्वर को एक मानना) का चिराग़ भी इसी तरह बेनियाज़ी (स्वछंदता) की हवा के झोंके से गुल न हो जाय और वह ज़ार-ज़ार रोने लगे। इनके एक लड़की थी। उसने मां से कोई चीज़ मांगी। मां ने कहा, "ऐ लड़की, अल्लाह से मांग।" बेटी बोली, "दुनियाबी चीज़ें अल्लाह से मांगते हुए मुझे शर्म आती है।"

एक बार संत यहिया कहीं दावत में गये। अपने स्वभाव के अनुसार उन्होंने बहुत कम खाना खाया। लोगों ने और खाने के लिए आग्रह किया तो बोले, "ज़्यादा खाने से नफ़्स क़वी (बलवान) होता है और इबादते-इलाही (प्रभु-उपासना) में कमी होती है।" अपने भाई के साथ सफ़र करते हुए एक देहात के पास पहुंचे तो भाई ने कहा, "यह देहात अच्छा है।" संत यहिया ने उत्तर दिया, "इससे ज़्यादा वह दिल अच्छा है जो यादे-इलाही की वजह से अच्छी-अच्छाई का ख़्याल न करे!"

किसी ने कहा—दुनिया मौत के सामने एक दाने से भी ज़्यादा हेच (तुच्छ) है। बोले, "अगर मौत न होती तो दुनिया बिल्कुल बेक़द्र होती!" और एक आयत सुनाई, "मौत मिस्ल उस पुल के है जो हबीब को हबीब (प्रेमी को प्रेमी) के पास पहुँचाता है।" अपने किसी दोस्त को उन्होंने लिखा, "दुनिया ख़्वाब है और आख़िरत (परलोक) उस ख़्वाब से जागना यानी बेदारी है। अगर इन्सान ख़्वाब में रोए तो बेदार होकर हंसता है। बस तुम दुनिया में ख़ौफ़े-इलाही (प्रभु-भय) से रोना इख़्तियार करो ताकि आख़िरत में हंसो!"

वे कहते—"जब तक तीन बातें इन्सान में नहीं होतीं; अक़्लमन्द नहीं होता। एक ख़ालिक़ (सृष्टिकर्त्ता) पर एतमाद (पूर्ण विश्वास)। २. ख़ल्क़ से बेनियाज़ी (`परवाह होना)। ३. अल्लाह की याद करना।" बोले, "अगर मौत फ़रोख़्त (विक्रय) की जाती तो आख़िरत वाले सिवा मौत के कुछ न ख़रीदते।" कहा—यह तीन बातें अक़्लमन्दी की निशानी हैं—(१) नसीहत की नज़र से अमीरों को देखना न कि हसद से; (२) शफ़क़त (ममता—आत्मीयता) की नज़र से औरतों को देखना न कि शहवत (कामेच्छा) से, (३) तवाज़य—इज्ज़त की नज़र से दरवेशों को देखना न कि घमंड से।

वे कहते कि अगर मैं दोज़ख़ का मालिक बना दिया जाऊं तो किसी आशिक (प्रेमी) को न जलाऊं इसलिए कि आशिक रोज़ाना अपने को सौ बार जलाता है। किसी ने कहा, अगर उसके गुनाह बहुत हों? कहा—फिर भी न जलाऊं क्योंकि उसके गुनाह इज़तरारी होते हैं न कि इख़्तियारी (आतुरता-वश वह दोष करता है, जान-बूझकर वह गुनाह नहीं करता) और कहा—जो अल्लाह से ख़ुश होता है तमाम चीज़ें उससे ख़ुश होती हैं और जिसकी आँख जमाले-इलाही (प्रभु-ज्योति) से रोशन होती है, तमाम जहान की आंखें उसके दीदार से रोशन होती हैं।

उनकी सूक्ति है—अल्लाह के गुनाह करने से जो शर्म रखता है अल्लाह उसपर अज़ाब करने में शर्म रखता है। बोले—बन्दे की हया (शर्म), नदामत (पछतावा) की हया और अल्लाह की हया करम (कृपा) की हया होती है। बोले—बन्दे को जिस क़द्र मारिफ़त (प्रभु-प्रेम) होती है उसी क़द्र उसे करम यानी कृपा की उम्मीद होती है।

इसलिए वे कहते हैं—अल्लाह के साथ सब नेक गुमानों से ज़्यादा नेक गुमान रखना ऐमाले-शाइस्त और मुराक़िबा के साथ अच्छा है। यह फ़ारसी मुहावरे का अस्पष्ट-सा अनुवाद है जिसका भाव यह है—(ईश्वर की अपार कृपा पर अगाध विश्वास रखना और सद्भावपूर्ण आशा विश्वास

से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। पर साथ ही भगवान को प्रसन्न करनेवाले शुभ आचरण करते रहना चाहिए और अपने मन को समाधिमय ध्यान में तल्लीन रखना चाहिए। मतलब यह कि सद्कर्म सद्भाव से और असत्-कर्म असद्भाव से उत्पन्न होते हैं।)

वे कहते—"बड़े ही घाटे में रहता है वह जो बुरे कामों में अपनी ज़िन्दगी बसर करता है। उन्होंने एक अच्छी-सी चेतावनी दी है यह कह कर कि जो गुप्त रूप से दुष्कर्म करता है, ईश्वर उसे सबके सामने ज़लील करता है। दुनिया से इब्रत (सीख) न हासिल करना नादानों (मूर्खों) का काम है। इबादत में ज़्यादा वक़्त सर्फ़ करो और लोगों से कम मिलो। साथ ही सावधान किया है—अल्लाह को दोस्त रखनेवाले का नफ़्स उसका दुश्मन होता है।

कहा—आरिफ़ वह है जो सिवा ख़ुदा के किसी को दोस्त न रखे; खौफ़ दिल (भयभीत मन) में एक दरख़्त है, जिसका फल दुआ और ज़ारी है अर्थात् जिसके दिल में खौफ होता है वह या तो दुआ करता है या उसके दरबार में अपने गुनाहों की माफी के लिए रोता है। बोले—इबादत की ज़ीनत खौफ़ है और खौफ़ तर्के-आर्ज़ू (इच्छा-त्याग) को कहते हैं। कहा—तवाज़ो (आदर-सत्कार) करना बड़ी पर्हेज़गारी है और ऐबों से अमल को (कर्म को दोषों से) बचाना इख़्लास (निष्कपट-प्रेम) है। शहवत से बचना शौके-इलाही (प्रभु-प्रेम) है।

खौफ़ तर्के-आर्ज़ू है—यह बात कुछ बहुत स्पष्ट-सी नहीं मालूम होती पर इसमें नुक्ता है बड़े मार्के का। जिसके दिल में खौफ़ होगा क़यामत का, जिसकी आँख के सामने दोज़ख़ की आग धधक रही हो वह आसाइश (सुविधा) की जमीन में उगने वाली आर्ज़ुओं को, तमन्नाओं को, कामनाओं और वासनाओं को कब अपने दिल में जगह दे सकेगा? जिसके मन में कामनाएं और वासनाएं उठती हैं। मानना होगा कि उसके अंदर वस्तुतः खौफ़ है ही नहीं।

इस भय की भावना को पोषित करने के कुछ तरीक़े थे और इस भय के दिल में रहते दुनिया एक दम ही, और सचमुच ही बिल्कुल नाचीज़-सी मालूम पड़े तो कुछ आश्चर्य नहीं। इस ख़्याल की रोशनी में, वैसे अस्वाभाविक-सी लगने वाली वह भयंकर विरक्ति कुछ समझ में आती है। संत यहिया कहते थे—दुनिया की कीमत एक दम के ग़म से भी कम है। दुनिया शैतान की दुकान है, इससे डर। और दुनिया शैतान की शराब है इसे न पी।

और कहते—ज़ाहिद वह है जो दुनिया तर्क करे। दुनिया ग़म और

अन्देशा है और उक़बा (परलोक) जज़ा (बेसब्री) और सज़ा है। कहते—दुनिया हासिल करने में ज़िल्लत और उक़बा हासिल करने में इज्ज़त है। आर्जू दुनिया की अल्लाह से गाफ़िल कर देती है। कहा—तीन शख़्स अक्लमन्द हैं:—१. तारके-दुनिया (संसार-त्यागी) २. तालिबे-उक़बा, (परलोक-इच्छुक), ३. आशिक़े-हक़ (सत्य-प्रेमी)। कहते—दीनार और दिरम बिच्छू हैं और उनका मन्त्र यह है कि हलाल ज़रीआ (द्वारा) से पैदा करे और हक़ (सचाई) काम में सर्फ़ (व्यय) करे।

वे कहते—मालदार को मरते समय दो मुसीबतें पेश आती हैं—एक यह है कि उसका माल दूसरे ले लेते हैं और दूसरी यह कि उससे माल का हिसाब पूछा जाता है। दुनिया का तालिब (इच्छुक) ज़िल्लत में, आख़िरत का तालिब इज्ज़त में, हक़ का तालिब आराम में है। इबादत का ज़ाहिर करना नारवा (अनुचित) है। (ये शायद इसलिए कि इससे मन दुनिया की ओर जाता है और दुनियावालों के सम्मान से मन में गर्व पैदा होने की आशंका है।)

उनकी यह सूक्ति कुछ बांकपन से भरी हुई है कि मुतकब्बिर से तकब्बर करना ऐसा है जैसे मुतवाज़य से तवाज़य। (घमण्डी के प्रति यथोचित स्वाभिमान से पेश आना उनकी दृष्टि में उतना ही श्रेयस्कर है, जैसा विनयी सज्जन पुरुष के प्रति विनय और उदारता से पेश आना और निश्चय ही यह श्रेयस्कर हो सकता है यदि उससे घमण्डी की आँख खुल जाती है और अपने को बेहद बड़ा समझने की उसकी आदत छूट जाती है।)

कम खाना, कम सोना और कम बोलना भी और सन्तों की तरह यहिया की साधना का मूल-मंत्र था। वह खुद तो कम खाते ही थे पर कहते थे कि ज्यादा खानेवाला बहुत जल्द शहवत की आग में जल जाता है। भूख शरे-आज़ा (अंगोद्भव विपत्तियों) से महफ़ूज़ (सुरक्षित) रखती है। वे कहते—भूखों रहना नूर (ज्योति), पेट भर खाना नार (आग) है, पर साथ ही सावधानी की दृष्टि से यह आवश्यक बात कह रहे हैं—भूख और खाना हक़ (सचाई) है। और सादिक़ सत्यवादी इससे बल पाते हैं।

एक अच्छी बात उन्होंने यह कही है—अपने उन्स (ईश्वर-प्रेम) पर खिलवत में नज़र कर कि तेरा उन्स अल्लाह की तरफ खिलवत में है! अगर तेरा उन्स खिलवत के साथ होगा तो बाद खिलवत के जाता रहेगा और अल्लाह के साथ होगा तो कभी ज़ाइल (विमुख) न होगा।

इससे सन्त यहिया का आशय यह है कि एकान्त में तो भगवान का भजन होता है, प्रेम उमड़ता है पर वहाँ से हटते ही मन और-का-और हो जाता है तो निश्चय ही यह बात सोचने योग्य है। इशारे से वह बताते

हैं, तुम्हारे ईश्वर-प्रेम के साथ एकान्त का प्रेम मिश्रित हो गया है। निस्संग निर्लिप्त ईश्वर-प्रेम सर्वत्र समरस है।

संत यहिया की मुनाजात (प्रेमपूर्ण प्रार्थनाएँ) भी बड़े मार्मिक और दिल को छूनेवाले हैं। भगवान को कृपालु और क्षमाशील कहकर मधुर ढंग से अपने गुनाहों के माफ कर दिये जाने की आशा व्यक्त करते हुए कहते, "ऐ अल्लाह! फ़रऊन ने खुदाई का दावा किया और तूने मूसा को उससे भी नरमी से बात करने का हुक्म फर्माया।" जो अपने को रब कहे उसके साथ जब तू इतनी कृपा दिखाता है तो जो तुझे अपना रब मानकर दिल-ही-दिल सदा तेरी परस्तिश (पूजा) करता है उस पर तू जो लुत्फ़ करेगा, उसे भला कौन जान सकता है!

कहते—ऐ अल्लाह! मेरी मिल्क (सम्पत्ति) में सिवा एक पुरानी कमली के कुछ नहीं है; लेकिन अगर यह कमली कोई मांगे तो दे दूंगा। फिर तू अपनी रहमत से, जिसकी इन्तिहा सिवा तेरे कोई नहीं जानता, कब अपने तालिबों को महरूम रखेगा? ऐ अल्लाह! तेरा क़ौल है कि नेकी करने वाले को उसकी नेकी से अच्छा बदला मिलता है। मैं तुझ पर ईमान लाया हूं और इससे अच्छी कोई नेकी दुनिया में नहीं है। इसके बदले में तू सिवा अपने दीदार के क्या देगा?

कहते—ऐ अल्लाह, जैसे तू किसी से मुशाबा (सदृश) नहीं, वैसे ही तेरे काम भी दूसरों के काम से मुशाबा (अर्थात् उनके सदृश) न होंगे। क़ायदा है तालिब मतलूब को खुश करना चाहता है तब कैसे संभव है कि तू अपने भक्तों को अज़ाब और बला में फंसाए इसलिए कि तुझसे ज्यादा कोई दोस्त रखनेवाला नहीं है। ऐ अल्लाह, जो हिस्सा मेरा दुनिया में हो, कुफ़्फ़ार (नास्तिकों) को दे और जो हिस्सा मेरा आखिरत में हो, वह मुसलमानों को दे। मुझे दुनिया में तेरी याद और आखिरत में तेरा दीदार काफ़ी है।

उनकी एक चोज़-भरी प्रार्थना यह था—ऐ अल्लाह, मैं ग़रीब हूँ और तेरा ज़िक्र ग़रीब है, क्योंकर उसे दोस्त न रखूं? ज़िक्र को ग़रीब कह-कर उसके साथ दोस्ती करने की बात में एक गहरी सूझ, एक मज़ेदार बारीकी है। ग़रीब का अर्थ है बे-वतन, परदेसी, अपने घर से दूर परदेस में फिरनेवाला मुसाफ़िर। इन्सान ग़रीब है, वह अपना असली वतन छोड़कर इस फ़ानी (नाशवान) किसी की न होने वाली दुनिया में आ पड़ा है।

वे कहते—अल्लाह का खजाना ताअत (विनयपूर्वक ईश्वरीय आज्ञा का पालन) करना है। और दुआ उसकी कुंजी है। तौहीद नूर है और शिर्क-

नार (दोज़ख) आग है। नूरे तौहीद गुनाहों को जला देता है और शिर्क की आग नेकियों को जला देती है। तौहीद अगले-पिछले गुनाहों को महव-(नष्ट) कर देती है। कहते—विरा (त्याग) तो तरह का है, सिवा खुदा के सबसे बेपरवाह हो जाना, यह ज़ाहिरी त्याग है। दूसरा त्याग बातिनी (आंतरिक) है, दिल में सिवा खुदा के किसी के लिए जगह न रहना। कहा—अल्लाह की पनाह (आश्रय) और अमन में होने का नाम ही तवंगि ी यानी अमीरी है।

उनके जीवन की अन्तिम घटना श्रद्धा-वर्द्धक और शिक्षाप्रद है। लोगों से ऋण ले-लेकर वह हाजियों, फ़क़ीरों, सूफ़ियों, गाज़ियों और आलिमों की सहायता करते रहे। जब एक लाख दिरम का ऋण हो गया तो ऋण-दाताओं ने ऋण चुकाने के लिए सख्त तकाज़े करने शुरू किये। जुम्मा की रात को स्वप्न में उन्होंने रसूल को देखा कि कह रहे हैं—"ऐ यहिया, रंज न करो। तुम सफ़र करो, शहर-व-शहर वाज़ करो। मैं एक शख्स को ख्वाब में हुक्म दूंगा कि वह तुम्हें तीन लाख दिरम दे दे। बफ़िक्र रहो, वक्त पर तुम्हें मिल जायगा।"

संत यहिया ने नेशापुर के प्रवचन में इसका उल्लेख किया तो श्रोताओं में से एक ने पचास हज़ार, एक ने चालीस हज़ार और एक ने दस हज़ार दिरम देने को कहा। यहिया बोले, "मैं तुम लोगों के ये दिरम नहीं ले सकता; क्योंकि हज़रत रसूल ने कहा है कि एक ही शख्स कुल कर्ज़ अदा कर देगा।" शहर बलख में वह तवंगरी (अमीरी) पर बोले। एक शख्स ने लाख दिरम भेंट किये, पर एक बुज़ुर्ग ने कहा, "तुमने तवंगरी की फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) दरवेशी पर बयान की, यह नाज़ेबा (अनुचित) है।" रात में डाकुओं ने वो लाख दिरम लूट लिये। बोले, "यह उस बुज़ुर्ग के कहने का असर था।"

यहिया का यह ख्याल ठीक था, पर रसूल ने तो तीन लाख दिरम की बात कही थी और वह हुई भी पूरी मुल्क हरी में। उनके प्रवचन में उस देश की शाहज़ादी उपस्थित थी। वह बोली, "जब आपको रसूल ने कहा, उसी रात को उन्होंने मुझे भी ख्वाब में आपका कर्ज़ चुकाने को कहा और यह भी फ़र्माया, वह खुद यहाँ आयंगे, तेरे वहाँ जाने की ज़रूरत नहीं।" शाहज़ादी के कहने से चार दिन रहकर उन्होंने चार वाज़ दिये। पहले में दस, दूसरे दिन पच्चीस, तीसरे दिन चालीस और आखरी दिन पूरे सत्तर आदमी जान-ब-हक़-तस्लीम (अपने प्राण प्रभु को अर्पण करनेवाले) हुए।

संत यहिया जब विदा हुए तो अमीरे-हरी की शाहज़ादी ने सात ऊँट

दिरम से भरे हुए भेंट किये। जब घर पहुंचे तो अपने पुत्र से कहा कि कर्ज़ चुकाने के बाद जो कुछ बचे वह सब दरवेशों को दे दो। मेरे लिए कुछ न रखना। मेरे लिए अल्लाह की ज़ात काफ़ी है। यह कहकर वह मुनाज़ात (ईश्वर-स्तुति) में मशग़ूल (व्यस्त) हो गए। मगर आश्चर्य, किसी ने उनके सर पर पत्थर मारा! वक्त आ गया था। देर न करके उन्होंने अपने साम `कर्ज़ अदा कराके शेष धन फ़क़ीरों और दरवेशों में बंटवा दिया और फिर निश्चित होकर अपने प्यारे प्रभु से जा मिले।

: २३ :

अबु हफ़स हदाद

निश्चय ही यह एक निहायत शानदार संत हुए हैं और इनकी बुजुर्गी ग़ैरमामूली (असाधारण) दर्जे की रही है, जिसका एतिराफ़ (मान्यता) जुनैद-जैसे संतों को भी खुले दिल से करना पड़ा। मगर इनकी जीवनी के प्रारम्भ में ही एक खास बात अत्तार ने यह कही है कि इनको कश्फ़ के मरातिब बे-वास्ता हासिल हुए (आत्म-ज्ञान के भेदों की प्रतिष्ठा सहज ही प्राप्त हुई) और इसीमें इनके जीवन की उच्चता की कुंजी है। अपने बल पर नहीं, अपने आराध्य की कृपा के बल पर ही यह इतने अच्छे बने, इतने ऊंचे उठे।

कीचड़ में उग हुए कमल की तरह इनकी आध्यात्मिक जिन्दगी का आग़ाज (उदय) मजाज़ी-इश्क (वासनामय प्रेम) की एक मामली कहानी से होता है। यह किसी कनीज (दासी) पर बेतरह (अत्यधिक) आसक्त थे। उन दिनों नेशापुर में एक नामी जादूगर रहता था। उसके पास जाकर इन्होंने अपना हाल बयान किया। वह इबादत तब भी करते थे। इबादत और जादू का मेल नहीं। इसलिए उसने कहा, पहले तुम चालीस दिन इबादत तर्क (त्याग) करो, फिर मेरे पास आना। तब मैं जादू करूंगा। इन्होंने ऐसा ही किया।

चालीस दिन के बाद जब यह जादूगर के पास पहुंचे तो उसने बहुत

कोशिश की, मगर उसके जादू ने कुछ असर न किया। वह बोला, "मालूम होता है, इन चालीस दिनों में तुमने कोई नेक काम किया है, जिसकी वजह से मेरा जादू काम नहीं करता।" संत बोले, "मैंने कोई नेक काम तो नहीं किया। हां, इतना जरूर हुआ कि जिस रास्ते में जाता उसमें जो कंकर-पत्थर मुझे पड़े मिलते उन्हें उठाकर मैं एक ओर रख देता ताकि किसी के ठोकर न लगे।"

अब वह कारसाज़ जादूगर बोलता है, "अफ़सोस है कि तुम ऐसे खुदा की याद नहीं करते, जिसने मामूली नेक काम को कबूल करके जादू के असर को बेकार कर दिया और तुम्हारी चालीस दिन की नाफ़र्मानी (अवज्ञा) का कुछ ख्याल न किया।" आसक्तिमग्न संत के दिल पर जादूगर के इन शब्दों ने मार्मिक चोट की; वह सर्वथा विरक्त होकर दिलोजान से भगवान के भजन में लग गए।

हदाद लोहार को कहते हैं और चूंकि यह पेशा लोहारी का करते थे इसीलिए हदाद कहलाए। मगर इनकी यह लोहारी भी खूब थी। यह अपने पेशे से रोज़ एक दीनार कमाते थे। और रात को किसी दरवेश को देते थे या अनाथ विधवा स्त्रियों के घर में इस तरह फेंक आते कि किसी को कोशिश करने पर भी यह पता न चलता कि कौन यह दीनार उनके घर में फेंक गया है। एक मुद्दत तक इन संत हदाद का यही रवैया रहा।

हदाद मेहनत तो करते, अपनी मेहनत के द्वारा दीनार भी कमाते; मगर वह दरवेशों को बाँटने या चुपचाप ग़रीबों के घरों में फेंक आने के ही लिए। और खुद क्या करते? शाम की नमाज़ पढ़कर भीख माँगने निकलते या गिरा-पड़ा साग बीनकर उसे ही पकाकर खा लेते। लाखों का दान करनेवाले तो इतिहास में बहुत से मिलेंगे, पर इस नमूने का आदमी और कोई सुनने में नहीं आया।

कौन जाने, उनके इस भीख मांगने में भी एक मसलहत (रहस्य) न रही हो? जब वह किसी के घर पर भीख माँगने जाते तो इनकी खुदा-परस्त आँखें चुपचाप उसकी माली हालत का, मुमकिन ही क्यों, कहना चाहिए यक़ीनन जायज़ा (अनुमान) लेती होंगी और जब कोई अनाथ बालक या झुकी कमरवाला, सिन-रसीदा (बड़ी आयु) बेरोज़गार बुज़ुर्ग अपने हिस्से की रोटी देने आता तो खुदा कान में कहता होगा कि कल कहाँ उसका दीनार फिके!

उनके मुरीद तो थे और इस सिलसिले में अबू-उस्मान हैरी के नाम का उल्लेख अत्तार ने किया है; पर उनके पीर कौन थे, इसका ज़िक्र ग्रन्थकार

ने नहीं किया। वह भूल गए हों, ऐसा मानना तो ठीक न होगा, पर वस्तुतः ऐसे लोगों का गुरु वही होता है, जो गुप्त ही रहना पसंद करता है और उसीने एक सूरदास को एक आयत पढ़ते हुए इनकी दूकान की तरफ भेजा और यह बेखुद हो गए उस आयत को सुनकर।

"ज़ाहिर हुआ उन पर अल्लाह की तरफ़ से वह अमर(भेद), जिसका उनको गुमान (भ्रम) भी न था—यह दिया गया है उस आयत का अर्थ ! बड़ी निर्दोष-सी है यह आयत, मगर बेचारे लोहार के दिल पर शायद घन-की-सी चोट पड़ी। नहीं, यह कहना ठीक होगा कि इसको सुनकर किसी ऐसे मीठे राज़ का इज़हार उनके दिल में हुआ कि वह बेक़रार नहीं, बेखुद हो गए, उनकी चेतना देहाध्यास से हटकर किसी ऐसे स्तर पर जा बैठी कि लोक का भान होते हुए भी देह की ओर से बेभान-से हो गए।

दूकान पर तो वह बैठे ही थे और अपना काम कर रहे थे कि इस बेखुदी के आलम (आत्म-विस्मृत दशा) में उन्हें न जाने क्या सूझी कि जलता हुआ लोहा आग से निकालकर अपने हाथ पर रखा और शागिर्दों से कहा, "इसे कूटो।" शिष्य यह हाल देखकर चकित थे। जब होश आया तो वह जलता हुआ लोहा अपने हाथ में देखा। उसे फेंककर तमाम दूकान लुटा दी। गोशानशीनी इख्तियार (एकांतवास धारण) करके इबादत और रियाज़त (उपासना और तपस्या) में लग गए।

हदाद जिस मोहल्ले में रहते थे उसमें एक उपदेशक उपदेश दिया करते थे। और उसमें वह हदीसें बयान करते। तमाम लोग हदीसें सुनने जाते। किसी ने इनसे भी कहा, आप भी चलकर सुनिए। बोले, "तीस साल हुए जब मैंने हदीस सुनी थी। उस पर पूरे तौर पर अमल करना चाहा, मगर मेरी वह ख्वाहिश अभी तक पूरी नहीं हुई।" पूछने पर बताया, "वह हदीस यह है—हराम (त्याज्य या वर्जित) तर्क करना ही हुस्ने-इस्लाम (इस्लाम की श्रेष्ठता) है।

संत अबु हफ़स हदाद जैसे बाअदब (शिष्ट) थे वैसा ही अदब वह अपने शागिर्दों को सिखाते थे। उनके मित्रों का कहना है कि-बीस साल हम उनके साथ रहे; लेकिन कभी बेखब्री के साथ खुदा को याद करते नहीं देखा। जब अल्लाह को याद्र करते तो निहायत ताज़ीम और हुरमत (सम्मान और मर्यादा) के साथ। इसलिए इनका शिष्यों पर इतना रोब था कि इनके सामने न कोई बात कर सकता था न इनकी ओर नज़र उठा-कर देखने की उनकी हिम्मत होती थी।

बिना उनकी इजाज़त के उनके पास बैठने की किसी को जुर्रत (साहस) न थी। इसीलिए उनके मुरीद अक्सर हाथ बांधे सामने खड़े रहते। जुनैद

ने यह शान देखकर शायद शिकायत और ताने के तौर पर कहा, "मुरीदों (भक्तों) को आदाबेशाही (राजसी शिष्टाचार) सिखाते हैं।" बोले, "सरनामा (पत्र का संबोधन) देखा, उसीसे खत का मज़मून (विषय) ज़ाहिर हो जाता है।" अच्छा-सा था यह जवाब! कौन-सा शाही दरबार अल्लाह के दरबार से ज़्यादा बाअदब (शिष्ट) हो सकता है और जहाँ वली-अल्लाह हैं, वहीं अल्लाह का दरबार है।

इसी दिली अदब की साधना से ही एक कहानी का इज़हार (रचना-प्रकट) यों हुआ : हदाद ने कहा, "ऐ जुनैद, ज़ेरबा (एक तरह का पकवान) और हलुवा तैयार कराओ।" जब दोनों चीज़ें तैयार हो गईं तो कहा, "एक मज़दूर को बुलाकर इन चीज़ों का थाल उसके सिर पर रखाओ और उसे कहो कि जबतक न थके, लिये ही चला जाय और बिल्कुल थक जाय तो करीब जो मकान हो, वहां ठहरकर आवाज़ दे और वहीं इन चीज़ों को दे आये।"

मज़दूर के साथ एक मुरीद भी पीछे-पीछे चला। वह मज़दूर जहां तक चल सका, चला। जब बिल्कुल थक गया तो करीब एक मकान था। उसकी कुंडी खटखटाई। अन्दर से किसीने आवाज़ दी कि अगर ज़ेरबा और हलुवा दोनों हों तो मैं बाहर आऊं। एक बुज़ुर्ग बाहर आए और दोनों चीज़ें ले लीं। मुरीद, जो कि मज़दूर के पीछे-पीछे गया था, यह हाल देखकर बड़ा चकित हुआ और उस बुज़ुर्ग के करीब आकर पूछा, "यह क्या माजरा है?"

बुज़ुर्ग बोले, "बहुत दिनों से मेरे लड़के मुझसे ज़ेरबा और हलुवा मांगते थे। मैंने ख्याल किया कि अल्लाह से मांगने की क्या ज़रूरत है। वह खुद ही भेज देगा। और सचमुच भेज दिया।" उस शख्स ने अल्लाह का अदब (मान) किया और उसका असर यह हुआ कि बहुत बड़े वली को इशारा हुआ कि अब वक्त आ गया है कि उन बच्चों की ख़ाहिश पूरी हो और मज़ा यह है कि मज़दूर बेपते के चलता है और वहीं पर जाकर थकता है।

इस अदब के साथ हदाद के यक़ीन की कहानी एक नया चोज़ पैदा करती है। बग़दाद से कहीं जा रहे थे। रास्ते में सहरा था। सोलह दिन तक कहीं पानी न मिला। उसके बाद एक नहर के किनारे पहुंचे और बिना पानी पिये खामोश बैठे थे। इतने में बख्शी अबु-तराब उधर से आ निकले। उन्होंने पूछा, "किस फ़िक्र में बैठे हैं?" सब बात बताकर बोले, "मेरे इल्म और यक़ीन (ज्ञान और विश्वास) में बहस हो रही है। अगर इल्म ग़ालिब (विजयी हुआ) आया तो पानी पीऊंगा और यक़ीन जीता तो बिना पानी पिये आगे बढ़ूंगा।"

इस इल्म और यक़ीन को ज़रा समझने की ज़रूरत होगी। अगर्चे ये मुबाहिसा (विवाद) अमूनन (प्रायः) हर शख्स की ज़िन्दगी में दरपेश (उपस्थित) आता है। इल्म कहता है : यह दुनिया है, यह जिस्म है, इस जिस्म को भूख लगती है, प्यास लगती है। खाना खाने और पानी पीने से भूख-प्यास शांत हो जाती है और इसके बिना जिस्म चल नहीं सकता। इस इल्म पर ही यह दुनिया चलती है और यह इल्म हर किसीको हस्बे-औक़ात (मर्यादानुसार) मिलता है हालांकि हैवान (पशु) भी ससे महरूम (वंचित) नहीं।

इस इल्म का सबसे खुशनुमा फल है यक़ीन; अगर्चे उसकी खुशबू हर किसीको हर वक्त नसीब (प्राप्त) नहीं होती। इस यक़ीन के दर्जे हैं—इल्मुल-यक़ीन (पूर्ण विश्वास), ऐनुल-यक़ीन (आँखों-देखा विश्वास) और हक्क़ुल-यक़ीन (अटल विश्वास)। इल्मुल-यक़ीन कहता है—यह दुनियाँ खुदा की बनाई हुई है, खुदा की ताक़त से यह चलती है, खुदा का नूर ही सबमें चमक रहा है। खुदा की मर्ज़ी से ही यहाँ सब कुछ होता है! उसकी मर्ज़ी के बिना कुछ भी नहीं होता। पत्ता तक नहीं हिल सकता।

यह इल्म ऊपरी तौर पर प्रायः सभी भक्तों को होता है। पर जब इसमें निष्ठा और श्रद्धा हो तब यह ऐन-यक़ीन के दर्जे पर पहुँचता है। हक्क़ुल-यक़ीन वह है जब यह सर्वमान्य सिद्धान्त केवल बौद्धिक विश्वास ही नहीं रहता, बल्कि सुश्रद्ध निष्ठा से भी आगे बढ़कर जीवन में सक्रिय हो उठता है। खुदा के हुक्म के बिना आग जलाती नहीं, जला सकती ही नहीं, यह ठीक; पर जब हाथ में लेने पर भी नहीं जलाती, तब हक्क़ुल-यक़ीन हुआ।

इसी तरह के और भी कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनकी एक मंजिल पर संत अबु हफ़स हदाद थे। जब वे नहर के किनारे अबु-तराब बख्शी को मिले और १६ दिन के प्यासे होने पर भी सोच रहे थे कि पानी पिऊं कि न पिऊं। आखिर जिस्म है बिना पानी कैसे काम करेगा। सोलह दिन बहुत होते हैं, खुदा की रहमत से जब पानी मयस्सर (प्राप्त) हुआ है तो खुदा को शुक्र भेजो और पानी पीओ। इल्म कुछ इसी तरह की बातें कहकर हदाद को समझा रहा होगा। यह आसानी से समझा जा सकता है।

पर हक्क़ुल-यक़ीन के मौके ज़िन्दगी में रोज थोड़े ही मिलते हैं। १६ दिन तक प्यासे रहने के बाद यक़ीन को आगे बढ़ने का अवसर मिला है। वह कह रहा होगा दुनिया नाचीज़ है, खुदा ही सब-कुछ है, ऐसा

तुम हमेशा कहते आये हो। ज़िन्दगी हक़ (सचाई) से है न कि पानी से। हक़ तुम्हारे हाथ है फिर क्यों दुनियादार की तरह पानी पर टूटते हो ? ज़ोरदार थीं दोनों ही की दलीलें।

अदब और क़ायदे को वे जितना महत्व देते थे इसके दो उदाहरण उल्लेखनीय हैं। उनके शिष्य अबु-उस्मान-हेरी का कहना है कि एक बार, जब वे उनसे मिलने गये तो कुछ मुनक्के रखे हुए थे। मुनक्के का एक दाना उठाकर उन्होंने मुंह में डाल लिया। हदाद ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा, "बिना पूछे मुनक्का क्यों खा लिया ?" उस्मान बोले, "आपके दिल का हाल मैं जानता हूँ। आपके पास जो कुछ होता है, फ़क़ीरों को तक़सीम कर देते हैं। इसीलिए मैंने खा लिया।"

हदाद ने कहा, "मैं खुद अपने दिल का हाल नहीं जानता हूं तब तुम्हें मेरे दिल का हाल कैसे मालूम हो सकता है ?" उनका एक दूसरा शिष्य बहुत ही बा-अदब और सभ्य था। उसे देखकर जुनैद ने पूछा, "यह कितने ज़माने से आपके साथ है ?" हदाद बोले, "दस साल से और इसने ७० हज़ार दीनार, जो इसके पास थे, मेरे लिए खर्च किये हैं। इसके अलावा ७० हज़ार कर्ज़ लेकर खर्च किये हैं जो अभी तक चुकाये नहीं गए। मगर फिर भी इसकी यह हिम्मत न हुई कि मुझसे कोई बात पूछे।"

एक बार जंगल में ध्यान में बैठे थे। एक हिरन आकर उनकी गोद में लोटने लगा और ये रो पड़े। हिरन चला गया। कुछ लोग, जो साथ में थे, पूछने लगे, "यह क्या बात हुई ?" हदाद बोले, "दिल में ख्याल आया, अगर बकरी होती तो तुम लोगों की ज़ियाफ़त (भोज) करता। फौरन ही हिरन गोद में आ गया।" लोगों ने कहा, "तो इसमें रोने की क्या बात जबकि अल्लाह को इतना ख्याल है।" बोले, "यह तो अपने से दूर करने के ढंग हैं। अगर फ़रऊन का भला मन्जूर होता तो उसके कहने से नील रवां (नील नदी को प्रवाहित) न करते।

यह थी तो समझदारी की बात मगर इन्सान का दिल कभी कैसा और कभी कैसा हो जाता है। कहीं जा रहे थे। किसीका गधा खो गया। उसने आकर इनसे कहा। दुआ की और कहा जबतक इसका गधा न मिल जायगा मैं आगे क़दम नहीं रखूंगा। गधा मिल गया और ये आगे बढ़े। मगर इससे भी जलाली शान देखी काबा में। ग़रीबों को देखा तो मदद करने की इच्छा हुई। देने को पास में कुछ था नहीं। एक पत्थर उठाया और कहा, "आज अगर तूने कुछ न दिया तो सब कंदोले-काबे (काबा के चिराग़) को तोड़ दूंगा।" किसी ने थैली लाकर दी, उसे बांटकर शान्त हुए।

इस हज से फ़ारिग़ (मुक्त) होकर जब बग़दाद पहुंचे तो जुनैद ने कहा, "हमारे लिए क्या सौग़ात लाये हो?" बोले, "तुम्हारे लिए यह सौग़ात लाया हूं कि जब कोई तुम्हारा कसूर करे तो उसे माफ़ करके अपनी समझ की ग़लती का ख़्याल करो। अगर नफ़्स न माने तो उससे कहो—अगर तू अपने भाई का क़सूर माफ न करेगा तो मैं तेरा साथ छोड़ दूंगा। और जबरन नफ़्स से क़सूर माफ़ करवाओ।" जुनैद ने विनम्रता से कहा—"ये मर्तब (दर्जे) अल्लाह ने आप ही को दिये हैं।"

हदाद के आध्यात्मिक बांकपन का नमूना अबु उस्मान के सामने आया। उस्मान ने कहा, "मेरा इरादा है कि मैं वाज़ (प्रवचन) कहूं; क्योंकि मुझे खलक़त (जनता) पर इस क़द्र शफ़क़त (सहानुभूति) है कि मैं तमाम खल्क़ (जनता) के एवज़ (बदले) में दोज़ख़ (नरक) जाना पसंद करता हूं।" अनुमति दे दी और वह खुद भी प्रवचन सुनने को एक कोनें में जा बैठे। प्रवचन की समाप्ति पर किसीने कहा, "मुझे कपड़े की ज़रूरत है।" अबु उस्मान ने अपना लिबास उतार कर उसे दे दिया।

हदाद, अभी तक जो कोने में छिपे बैठे थे, अब सामने आये और बोले, "ऐ झूठे, वेदी पर से उतर आ? तू तो कहता था कि मुझे खल्क़ पर शफ़क़त है और सायिल (प्रार्थी) का सवाल पूरा करने में तूने औरों पर सबक़त (पहल) की। शफ़क़त का तकाज़ा (मांग) था कि दूसरों को मौक़ा देता ताकि वह आगे आकर हाजतमन्द की हाजत (मांग) पूरी करके तुझसे ज्यादा सवाब (पुण्य) का मुस्तहक़ (अधिकारी) होता।" बात की बारीकी उस्मान समझ गए।

मगर मेहमानदारी कैसे की जाती है, यह सबक़ (पाठ) निहायत पुरअसर ढंग पर मुस्लिम-जगत के प्रसिद्ध विद्वान संत शिबली को एक बार उन्होंने सिखाया। शिबली ने प्रेम से चार महीने उन्हें अपने यहाँ मेहमान रखा और बड़ी खातिरदारी की। रोज़ नयी-नयी चीज़ें पेश करते। रुख़सत (विदा) के वक़्त ये शिबली से बोले, "जब कभी तुम नेशापुर में आओगे तो मैं तुम्हें मेहमान रखकर मेज़बानी (आतिथ्य) और जवांमर्दी (श्रेष्ठ पौरुष) सिखाऊंगा। मेहमान के साथ तकल्लुफ़ (दिखावा) ठीक नहीं, ताकि उसके आने पर ंज (खेद) और जाने पर खुशी न हो।"

यहाँ तक तो ठीक, और यह बात सबकी समझ में आने लायक है; पर दरसल हदाद को इससे भी बड़ी एक बात कहनी थी और वह क्रियात्मक ढंग से तब कही गई जब शिबली इनके यहाँ जाकर मेहमान हुए। वे कुल चालीस आदमी थे। हदाद ने इकतालीस चिराग़ रोशन किये। शिबली बोल उठे,

"क्या यह तकल्लुफ़ नहीं हुआ ?" बोले, "अगर इसे तुम तकल्लुफ़ समझते हो तो इन सबको गुल कर दो।" शिबली ने बहुत कोशिश की, मगर एक चिराग़ के सिवा और कोई गुल न हुआ। आश्चर्य-चकित शिबली ने इसका कारण पूछा।

उत्तर में हदाद ने एक बड़ी ही अच्छी मार्के की बात कही। वे बोले, "मेहमान ख़ुदा का भेजा हुआ होता है। वह उसीका (प्रतीक) है। मैंने हर मेहमान के लिए, अल्लाह की ख़ुशीनूदी की ख़ातिर, एक चिराग़ रोशन किया और एक अपने लिए। चूंकि चालीस ख़ुदा के लिए थे, वे ग़ुल न हुए और जो एक मेरे लिए था वह ग़ुल हो गया। तुमने बग़दाद में जो कुछ किया था, वह मेरे ही लिए किया था, इसलिए तकल्लुफ़ था; और मैंने जो कुछ किया अल्लाह के लिए किया, इसलिए तकल्लुफ़ में दाखिल नहीं।"

अबु उस्मान को वाज़ की अनुमति देते समय संत हदाद ने कुछ नेक सलाह दी थी, जो वहां पर न लिखी जा सकी। उन्होंने कहा था, "पहले अपने नफ़्स को नसीहत कर, फिर दूसरों को करना। और जब मजमा ज़्यादा हो तो ग़रूर न करना; क्योंकि ख़ल्क़ (जनता) ज़ाहिर को और ख़ालिक़ (सृष्टिकर्त्ता) बातिन (अंतस्) को देखता है।" इस सलाह के अनुसार वह अपने को नसीहत करने की धुन में रहते। चुनांचे बाजार में एक यहूदी को देखा तो देखते ही बेहोश हो गए। लोगों ने अचानक बेहोश होने का सबब पूछा तो वे बोले—

"मैंने एक मर्द को लिबासे-अदल (बहुत ही घटिया पहरावा) और अपने को लिबासे-फ़ज़ल (श्रेष्ठतापूर्ण पहरावा) पहने हुए देखा। मुझे खौफ़ हुआ कि कहीं इसका लिबास मुझे और मेरा लिबास उसे न दे दिया जाय। मतलब यह कि यहू ी को अल्लाह ने जिस लायक़ समझा इन्साफ़ (न्याय) करके उसको वैसा ही बनाया; पर मुझे अपने फ़ज़्ल से शरफ़े-इस्लाम बख्शा (मुसलमान होने का सम्मान दिया)। उनके डरने का खासा कारण था, जिसका उल्लेख वहीं पर आया है। उन्होंने कहा, "मैंने तीन साल तक देखा कि अल्लाह बनज़रे ख़श्म (क्रोध-भरी दृष्टि से) मेरी ओर देख रहा है।"

एक बार नेशापुर से हज को चले। रास्ते में बग़दाद में ठहरे। उनकी तक़रीर (भाषण) से अरबी के विद्वान् भी दंग थे। हदाद स्वयं फ़ारस के रहनेवाले थे और अरबी न जानते थे। वहीं जुनैद से वह पूछ बैठे, "तुम्हारी नज़र में जवांमर्दी क्या है ?" जुनैद बोले, "जो अच्छा काम किया हो उसे ज़ाहिर न करे और उसे अपना किया हुआ न समझे।"

यह एक अच्छी बात कही गई थी और हदाद ने इसे स्वीकार किया;

मगर वे बोले, "मेरे नज़दीक जवांमर्दी इसका नाम है कि खुद इन्साफ़ करे और दूसरे से इन्साफ़ का तालिब न हो।" उनका अभिप्राय यह है कि सच्चा पौरुष इसमें है कि न्यायपूर्वक दूसरे के हक़ को दे दे, मगर अपने हक़ की मांग न करे। जुनैद को भी यह बात पसन्द आई। लोगों से कहा कि इस पर अमल करो। हदाद बोले, "बल्कि तुम खुद इस पर अमल करो।" जुनैद बोले, "बेशक, मैं जवांमर्दी से नावाक़िफ़ (अपरिचित) था, आज वाक़िफ़ हुआ।"

किसीने पूछा, "वली के लिए कलाम (बोलना) करना अच्छा है या खामोशी (चुप)?" बोले, "अगर बात कहे तो उसकी आफ़त (तकलीफ़) को जाने और खामोशी की लज्ज़त (मधुरता) उम्रेनह (हज़रत नूह की आयु) मांगती है ताकि खामोशी में गुज़ार दे।" वे कहते थे, "खुदा के दोस्त वह हैं जो दुनिया से खुश जायं। वली वह है जो नफ़्स से इखलास (प्रतिहिंसा) तलब करे। बुख्ल (कृपणता), तर्के-ईसार (स्वार्थ-त्याग) को कहते हैं।" स्वार्थ-त्याग दीन और दुनिया दोनों में दूसरे को अपने हक़ से ज्यादा मान्यता देता है।

उनकी सूक्तियाँ हैं—अच्छा वह शख्स है जो लोगों पर करम (कृपा) करे और खुद अल्लाह् के करम का तालिब रहे। सद्गृहस्थ वह है, जो धार्मिक नियमों का पालन करे और शुद्ध कमाई का भोजन करे। जो अपने को बुरा न समझे मग़रूर (घमंडी) है, और जिसने ग़रूर किया हलाक़ हुआ (मारा गया)। खौफ़ दिल का चिराग़ है, जो नफ़्स की अच्छाई और बुराई को मालूम कराता है।

कहते—फ़रासत (अक़्लमन्दी) का दावा करनेवाला साहबे-फ़रासत (बुद्धिमान) नहीं। फ़ुक्र यह है कि लेने से देने को अजीज़ रखे। देनेवाला और लेनेवाला आधा मर्द और फ़क़त (केवल) देनेवाला और न लेनेवाला पूरा मर्द। और न देनेवाला और लेनेवाला मर्द नहीं, मक्खी हैं। हर समय अल्लाह का फ़ज़्ल ढूंढ़नेवाला हलाक़ नहीं होता। इबादत पर भरोसा न करो। अपनी निगहबानी (देखभाल) करो अल्लाह के साथ।

वे कहते—तक़्वा यानी पाकीज़गी (पवित्रता) हलाल रोज़ी (नेक कमाई) में है। तौबा के बाद गुनाह न करने को तौबा कहते हैं। दिखाने के लिए अमल करना बुरा है। वह शख्स अंधा है जो मस्नअः (बनाई हुई चीज़) या (दुनियावी चीज़ से) बनाने वाले को पहचानता है। और सानें-ए-मसनूअ (निर्माता) को नहीं पहचानता। अल्लाह का दर (दरवाज़े) इख्तियार करले ताकि सब दर तुझ पर खुल जायं और रसूल का आज्ञाकारी बन जा ताकि सब तेरे आज्ञाकारी बन जायं।

कहते—बन्दा वह है, जो पूरे तौर से अहकामे-इलाही (प्रभु-आज्ञाएँ) बजा लाय। दरवेश वह है जो अल्लाह की दरगाह में बावजूद बहुत-सी इबादत के आजिज़ी ज़ाहिर करे। एकदम भी वह राह मिलना, जिससे अल्लाह तक पहुंचे, अच्छा है। शराबे-शौक़ पीनेवाले (प्रभु-प्रेम-रूपी मदिरा) को हर वक़्त अल्लाह का दीदार हासिल होता है। गुनाह कुफ़्र का डंक है—जैसे ज़हर मौत का डंक है। (ज़ाहिर की रोशनी खिदमत और निष्ठा द्वारा अन्तर को रोशन करे।)

संत हृदाद से कोई पूछ बैठा, "आप अल्लाह की तरफ़ राग़िब (आकर्षित) किस लिए हुए ?" उन्होंने जवाब दिया—जिस लिए फ़क़ीर मालदार की तरफ़ राग़िब होता है। और वह मालदारों का मालदार ऐसा मालदार है जिसके पास किसी माल की कमी नहीं। ज़रूरत इस बात की है कि उस मालदार से सामाजिक विशुद्धि की, संसार के समुद्धरण की मांग करे। सच्चे जी से हो सके, तो रोकर किसी सद्वृद्ध की सद्प्रेरणा से निर्दोष बालकों के मन में उठी यह प्रार्थना और भी कारगर होगी !

: २४ :

इमाम अबु हनीफ़ा

कहते हैं कि हनीफ़ा इनकी लड़की का नाम था। इनका अपना ख़ुद का नाम नेमान था और साबित पिता का नाम था। इसलिए पहले यह नेमान बिन साबित कहलाते थे। एक बार कुछ स्त्रियों ने आकर इनसे एक प्रश्न किया, "मुस्लिम शरीयत (धर्म-पद्धति) में मर्दों को तो एक वक़्त में चार निकाह (विवाह) करने तक की मंजूरी दी गई है और औरतों को एक वक़्त में दो की भी इज़ाज़त नहीं, ऐसा क्यों ?"

इमाम को इसका कोई उत्तर सूझ न पड़ा, इसलिए यह कहकर कि इसका जवाब फिर दूंगा, वह घर आये। उनकी लड़की ने उन्हें चिन्तित देखकर कारण पूछा, तो उन्होंने उक्त प्रश्न की बात कही। लड़की, जिसका नाम हनीफ़ा था, बोली, "अगर अपने नाम के साथ मेरा नाम

मशहूर कर दें तो इसका तसल्लीवख्श जवाब (संतोषजनक) दे सकती हूं।" इस पर वह राजी हो गए और उन स्त्रियों को उसके पास भेज दिया। लड़की ने एक-एक प्याली उन स्त्रियों को देकर कहा," इनमें तुम अपना थोड़ा-थोड़ा दूध अलग-अलग निचोड़ दो।" फिर एक प्याली देकर कहा, "सब दूध इसमें मिला दो।" सब ने अपना-अपना दूध मिला दिया।

जब वह दूध एक प्याली में मिला चुकीं तो हनीफ़ा ने कहा, "अब तुम अपना-अपना दूध अलग कर लो।" स्त्रियां बोलीं, "अब हम इसे अलग-अलग कैसे कर सकती हैं, क्योंकि यह मिल गया है?" हनीफ़ा बोली, कई खाविंद (पति) करने के बाद जब तुम्हारी औलाद होगी तो तुम कैसे बता सकोगी कि यह औलाद किसकी है?" उन स्त्रियों को यह उत्तर संतोषजनक प्रतीत हुआ और वे चली गईं। इस घटना के कारण ही उनका उपनाम अबु-हनीफ़ा पडा, और आगे चलकर नामके बजाय उपनाम अधिक प्रसिद्ध हो गया।

इमाम अबुहनीफ़ा एक विद्वान् संत थे। कहते हैं, जब वह मदीने गये और मुहम्मद की कब्र पर जाकर मुहम्मद को सलाम किया तो जवाब मिला, "वालेकुम सलाम या इमाम-उल-मुसलमीन।" एक बार स्वप्न में उन्होंने देखा कि वह मुहम्मद की हड्डियों को अलग-अलग छाँट रहे हैं। जब वह जगे तो उनके मन में बड़ी ग्लानि हुई; लेकिन एक संत ने इस स्वप्न की तावीर (स्वप्न-फल) बतलाई कि तुम मुहम्मद के उपदेशों और उनकी सूक्तियों की खोज और उनका संपादन करोगे।

कुछ दिन तक उनका ऐसा मामूल (क्रम) था कि हर रात को ३०० बार नमाज़ पढ़ते थे। एक रोज़ राह में जाते हुए एक स्त्री को अपनी सहेली से यह कहते हुए सुना "यह मर्द रात को ५०० बार नमाज़ पढ़ता है।" बस, उस दिन से उन्होंने ५०० बार नमाज़ पढ़ना शुरू कर दिया। फिर किसी आदमी ने कहा कि यह रोज़ १००० बार नमाज़ पढ़ता है। उस रोज़ से १००० बार नमाज़ पढ़ने लगे। एक बार उनके एक शिष्य ने कहा, "लोगों का ख्याल है कि आप रात को सोते नहीं हैं।" बोले, "अच्छा, अब मैं नहीं सोया करूंगा।" शिष्य ने पूछा, "क्यों?" एक आयत सुनाकर कहा, "मैं उन लोगों में से नहीं होना चाहता जो झूठी तारीफ़ चाहते हैं।"

एक बार खलीफ़ा ने किसी दस्तावेज़ पर अपने काजी शाबी से हस्ताक्षर कराने के लिए अपने एक गुलाम के द्वारा कहला भेजा। शाबी ने हस्ताक्षर कर दिए। फिर वही काग़ज़ उन्होंने इमाम अबु हनीफ़ा के पास उनके हस्ताक्षर के लिए भेजा, मगर उन्होंने गुलाम से कहा, "या

तो खलीफ़ा मेरे पास आकर कहे या मुझे अपने पास बुलाकर कहे, तब मैं हस्ताक्षर करूंगा, वैसे नहीं।" खलीफ़ा ने शावी से पूछा, "क्या गवाही में देखना ज़रूरी है ?" शावी ने कहा, "हाँ।" खलीफ़ा ने कहा, "फिर आपने बिना देखे दस्तखत कैसे कर दिये ?" शावी बोले, "मुझे यक़ीन था कि गुलाम से आपने ही कहलाया है।"

खलीफ़ा ने कहा, "आपको क़ायदे के ख़िलाफ़ काम (नियम के विरुद्ध कार्य) नहीं करना चाहिए था। वाजिब यह है कि आपकी जगह पर किसी दूसरे शख्स को क़ाज़ी तैनात करूं।" अपने मंत्रियों से सलाह करके उन्होंने अबु हनीफ़ा को और दूसरे तीन संतों को इसके लिए बुलाया। किन्तु अबु-हनीफ़ा क़ाज़ी के पद को अच्छा नहीं समझते थे। इसलिए उन्होंने सफ़ियान को सलाह दी कि तुम तो भाग जाओ और मशअर तुम दीवाने बन जाओ। मैं किसी तरह बच निकलूंगा। रहे शरीह, खलीफ़ा इन्हें काज़ी बनाये बिना नहीं छोड़गा। हुआ भी ऐसा ही। सफियान तो भाग निकले और मशअर दीवाने बनकर छूटे।

अबुहनीफ़ा के पश्चात् मशअर से खलीफ़ा ने जब काज़ी होने को कहा तो उन्होंने बहकी-बहकी बातें करनी शुरू कर ीं। खलीफ़ा का हाथ पकड़-कर बड़े प्रेम से पूछा, "कहिये, आपका मिज़ाज कैसा है ? और हाँ, आपके सुपुत्र कहाँ हैं ?" खलीफ़ा ने सोचा ऐसे दीवाने को काज़ी बनाना ठीक नहीं। इसलिए शरीह से आग्रह करके उन्हें काज़ी बनने के लिए राज़ी कर लिया। मगर अबु हनीफ़ा ने इसके बाद उनसे मिलना बन्द कर दिया। खुद वह यों बचे कि पहले तो कहा कि मैं अरब नहीं हूं, इसलिए काज़ी नहीं हो सकता, कुलीन सरदार मेरी बात नहीं मानेंगे। मगर लोगों ने कहा, "काज़ी के लिए इल्म की ज़रूरत है, जाति की नहीं।"

जब इस तरह छुटकारा नहीं होते देखा तो उन्होंने खलीफ़ा से कहा, "मैं समझता हूँ कि मैं काज़ी बनने के काबिल (योग्य) नहीं हूं।" छूटते ही खलीफ़ा ने कहा, "तुम झूठ बोलते हो।" अब वह बोले, "देखिये, अगर मैं झूठ बोलता हूं तो झूठे आदमी को काज़ी नहीं बनाना चाहिए और अगर जो मैं कहता हूं वह सच है तो जिसमें काज़ी होने की लियाक़त (योग्यता) नहीं तो काज़ी और खलीफ़ा का नायब कैसे हो सकता है ?" लाजवाब (निरुत्तर) और निराश होकर खलीफ़ा ने दूसरों से कहा।

एक व्यक्ति ने उनसे कुछ ऋण ले रखा था। एक बार उसके मोहल्ले में उन्हें जाना पड़ा। सख्त धूप थी, कहीं दूर तक छाया न थी। बस थोड़ी-सी छाया उसी आदमी की दीवार की थी। लोगों ने उन्हें बुलाया तो उन्होंने अपने कर्ज़दार की छाया से भी लाभ लेना उचित न समझा। उन्होंने एक

हदीस सुनाई, जिसका अर्थ है, "कर्ज़ से जो नफ़ा लिया जाता है, सूद है।" सूद को इस्लामी विधान में बहुत ही त्याज्य माना जाता है।

कुछ ज़ालिमों ने एक बार इन्हें क़ैद कर दिया। उनमें से एक आदमी ने कहा कि मुझे क़लम बनादो (वध कर दो)। उन्होंने अस्वीकार किया। उसने बार-बार आग्रह किया पर वह न माने। जब उसने पूछा, "क्या सबब है कि आप क़लम नहीं बनाते ?" तो वे बोले, "मैं डरता हूँ कि कहीं मेरी गिनती ज़ालिमों के मददगारों में न हो जाय। सके प्रमाण में एक आयत सुनाई, "क़यामत के दिन अल्लाह फ़रिश्तों को हुक्म देगा कि ज़ालिमों को उनके मददगारों के साथ क़ब्रों से उठाओ।"

अबु हनीफ़ा के घुटनों में सिजदों के कारण ऊंटों के घुटनों की तरह घट्टे पड़ गए थे और ये स्वाभाविक है क्योंकि जो वर्षों तक हर रात को १००० बार नमाज़ पढ़े उसके घुटनों का और क्या हाल होगा ! एक और संत की पेशानी पर सिजदे अधिक करने से ढट्ठे पड़ गए थे। क़ुरान के पारायण में भी उनकी बड़ी श्रद्धा थी। जब कोई कठिनाई सामने आती तो क़ुरान के ४० पारायण करते थे जिससे उनकी समस्या हल हो जाती। एक बार उन्होंने क़ुरान के १००० पाठ किये केवल इसलिए कि किसी धनिक का उसके धन के कारण उन्होंने सम्मान किया था। उसका प्रायश्चित्त आवश्यक था।

मुस्लिम संतों में अदब अर्थात् ईश्वर की मर्यादा का भाव बहुत प्रबल होता है। हिन्दुओं में ऐसे बहुत से साधु मिलेंगे जो वर्षों तक पैरों पर खड़े ही रहे, न कभी बैठे और न लेटे। किसी झूले का सहारा लेकर वो नींद तो ले लेते हैं मगर उस समय भी टांगों पर खड़े रहते हैं। दाऊद ताई नाम के संत, जो इनके शिष्य थे, कहते थे कि २० वर्ष तक मैं आपके साथ रहा. कभी आपको नंगे सिर और पैर फैलाए नहीं देखा। दाऊद ने कहा, "अकेले में पाँव फैलाने में क्या हर्ज है ?" बोले, "मजमे में लोगों का अदब करूं और अकेले में खुदा का अदब न करूं ?"

एक लड़के को कीचड़ में चलते देखकर बोले, "ज़रा सम्भल कर चल, कहीं पैर न फिसले।" उसने कहा, "अगर मेरा पैर फिसला तो कोई हर्ज नहीं। मैं अकेला ही गिरूंगा। लेकिन आप बचे रहिए; क्योंकि आप इमाम हैं। अगर आप फिसले तो बहुत से लोग आपके साथ गुमराह हो जायंगे।" अबु-हनीफ़ा के दिल को यह बात लग गई और सावधानी की दृष्टि से अपने सभी शिष्यों से उसी दिन उन्होंने कह किया कि जिस बात में तुम्हें प्रमाण न मिले और संदेह हो, हरगिज़ मेरा अनुकरण न करना, बल्कि खुद सोच-समझ करके उसका नतीजा (निष्कर्ष) निकालना।

अबु-हनीफ़ा दानी-वृत्ति के पुरुष थे। कुछ लोग एक मस्जिद के लिए, जिसे वह बनवा रहे थे, इनसे धन लेने आये; मगर इन्होंने देने से इन्कार कर दिया। लोगों ने आशीर्वाद-स्वरूप जब कुछ देने के लिए बहुत आग्रह किया तो अनिच्छापूर्वक एक दिरम दे दिया। शिष्यों ने अबुहनीफ़ा से कहा कि आपकी दानशीलता तो प्रसिद्ध है। फिर आपको यह दिरम देना इतना नागवार क्यों गुज़रा? बोले, "नेक कमाई मिट्टी और पानी में खर्च नहीं होती। मुझे तो अब अपनी कमाई में शक हो गया है।" कुछ दिनों बाद, "यह दिरम खोटा है" यह कहकर वह लोग वापिस कर गये और वह उसे लेकर बहुत खुश हुए।

इनके वही शिष्य दाऊद ताई जब मुसलमानों के नेता चुने गए तो उन्होंने अबु-हनीफ़ा से पूछा कि मुझे क्या करना चाहिए। वह बोले, "तुम्हें इल्म पर अमल करना चाहिए। क्योंकि आलिम बेअमल मिस्ल जिस्म बेरूह के होता है" यानी ज्ञान दिमाग़ का बोझ बनने के लिए नहीं बल्कि कर्म में उतरकर जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बनाने के लिए है। वो ज्ञान ज्ञान नहीं जो जीवन में उतरने से झिझकता है। दीपक अपनी शक्ति-भर प्रकाश देता है, ठीक ऐसे ही ज्ञान जीवन को आनन्दमय और सुन्दर बनाता है।

अबु-हनीफ़ा कहते थे कि मैं किसी बखील यानी कंजूस और लालची की गवाही नहीं लेता, क्योंकि ऐसा आदमी स्वभाव से ही हक़ से अधिक लेने का इच्छुक होता है। एक बार हम्माम यानी स्नानागार से एक आदमी को बिल्कुल नंगे बाहर आते देखा तो अपनी आंखें बंद कर लीं। उस आदमी ने मज़ाक़ किया, "आपकी आंखों की रोशनी कब से ले ली गई?" बोले, "जबसे तुझसे शर्म छीन ली गई।"

एक बार खलीफ़ा ने इजराईल को स्वप्न में देखा और उनसे अपनी आयु के संबंध में पूछा। मृत्युदेव ने उत्तर में अपनी पांच अंगुलियां दिखाईं। खलीफ़ा ने लोगों से अपने स्वप्न को कहा तो कोई भी उसका आशय न बता सका। जब अबु-हनीफ़ा से पूछा तो उन्होंने कहा कि पांच अंगुलियों से मतलब उन पांच इल्मों से है, जिन्हें खुदा के सिवा और कोई नहीं जानता। एक आयत सुनाई—जिसमें कहा है कि क़यामत कब होगी, पानी कब बरसेगा, गर्भ में क्या है, कल कोई क्या करेगा और कौन कब कहां मरेगा, इसका हाल अल्लाह ही को मालूम है।

मुस्लिम संतों के देहावसान के पश्चात उनके साथी संतों का स्वप्न में उन्हें देखने का कुछ रिवाज़-सा मालूम पड़ता है। अबु-हनीफ़ा को भी उनकी मृत्यु के पश्चात न-फिल-हवान ने स्वप्न में यों देखा कि क़यामत लग रही है, हिसाब-किताब हो रहा है, हौज़े क़ौसर (स्वर्ग का एक कुंड)

पर मुहम्मद बैठे हैं, उनके इर्द-गिर्द बहुत-से बुजुर्ग खड़े हैं। उनमें अबु-हनीफ़ा भी हैं। मुहम्मद की अनुमति से अबु-हनीफ़ा ने एक कटोरे में नू-फ़िल को पीने के लिए पानी दिया। खूब पेट भरकर पिया; मगर कटोरा खाली नहीं हुआ। फिर पूछने पर अबु-हनीफ़ा ने बताया कि मुहम्मद के दाहिनी तरफ इब्राहीम और बाएँ हज़रत सिद्दीक हैं। एक दूसरे संत को मुहम्मद ने स्वप्न में कहा, "मुझे ढूंढ़ना है तो अबु-हनीफ़ा के इल्म के पास ढूंढ़ो।"

: २५ :

मन्सूर अम्मार

"इन्सान का दिल नूरी (प्रकाशवाला) होता है। जब उसमें दुनिया की मुहब्बत समा जाती है तो तारीकी (अंधकार) छा जाती है और नूर ले लिया जाता है।" यह सूक्ति मन्सूर अम्मार नामी सन्त की है और यह मानव के मन को बहुत ऊंचे स्थान पर प्रतिष्ठित करती है। संसार में लिप्त होकर वह तिमिरमयी हो जाती है और प्रकाश, जो उसका नैसर्गिक गुण है, उससे छीन लिया जाता है।

मन्सूर अम्मार के जीवन से यह शिक्षा मिलती है कि कैसे एक छोटी-सी सद्वृत्ति मनुष्य को ऊंचे स्थान पर पहुंचा देती है। लिखा है कि कहीं वह जा रहे थे। रास्ते में एक काग़ज़ पड़ा हुआ मिला, जिस पर, "बिस्मिल्ला उलरहमानुल्रहीम" लिखा था। उसे देखकर उनके भक्तिभाव ने ज़ोर मारा और अल्लाह के नाम को इज्ज़त देने के विचार से वह उसकी गोली बनाकर खा गए। रात्रि को उन्होंने ख़्वाब देखा कि कोई कह रहा है, "तूने हमारे नाम की इज्ज़त की इसके बदले में हमने तेरे लिए इल्म के दरवाज़े खोल दिए।" आगे चलकर अम्मार एक बहुत बड़े विद्वान हुए और उनकी अपनी यह मान्यता थी कि उस गोलीवाली घटना के बदले ही ख़ुदा ने उन पर अपनी मेह्र की प्रेमपूर्ण वर्षा की।

अपने निजी जीवन की तरह ही सद्वृत्तिपोषक एक छोटी-सी घटना के द्वारा एक गुलाम और उसके मालिक का उद्धार भी शिक्षाप्रद और मनोरंजक है। सभा लगी हुई थी, उनका उपदेश हो रहा था। उधर से

एक गुलाम आया। उसके मालिक ने चार दिरम देकर बाज़ार से कुछ चीज़ मोल लाने के लिए उसे भेजा था। सभा देखकर वह क्षण-भर के लिए ठिठका, यह देखने के लिए कि क्या हो रहा है। हृदय से निकली हुई सन्त की वाणी, जो उसके कानों में पड़ी तो उसका मन रम गया और भूल गया कि वह गुलाम है और किसी काम के लिए भेजा गया है। सन्त के हाथ खाली और हृदय भरापूरा होता है। सभा में कोई दरवेश था। मन्सूर की इच्छा हुई कि उन्हें कुछ सहायता पहुचाई जाय। इसलिए उपदेश की समाप्ति पर उन्होंने श्रोताओं से कहा, "क्या कोई ऐसा मर्द इस मजलिस में है, जो चार दिरम इस दरवेश को दे और उसके बदले में चार दुआएं ले ?"

आगे बढ़कर गुलाम ने वह चारों दिरम उस दरवेश को दे दिये। सन्त ने गुलाम से पूछा, "बता तू, क्या दुआएं चाहता है ?" उसने कहा, "पहली बात तो यह कि मुझे आज़ादी नसीब हो, दूसरी यह कि मेरे मालिक को खुदा नेकी दे, ताकि वह नेकराह (सन्मार्ग) पर चल सकें। तीसरी यह कि उन चार दिरमों के बदले उसे चार दिरम मिल जायं। चौथी यह कि अल्लाह मुझ पर, आप पर और मजलिस के सभी लोगों पर मेह्र करें।"

सन्त ने आंखें बन्द करके ईश्वर से प्रार्थना की और गुलाम घर वापिस आया। मालिक, जो देर से प्रतीक्षा कर रहा था, उसे देखते ही रुष्ट होकर बोला, "इतनी देर कहां लगाई ?" गुलाम ने सब बातें सुना दीं। मालिक ने यह सुनकर तुरन्त ही उसे आज़ाद कर दिया और अपने पास से चार सौ दीनार भी उसे भेंट किये। इतना ही नहीं, उसने सच्चे जी से तौबा की, अर्थात् जो कुछ लांछनयुक्त व्यवहार था उसके जीवन में उसे त्याग कर सन्मार्ग ग्रहण करने का संकल्प किया। रात्रि को मालिक ने स्वप्न देखा कि कोई कह रहा है, "हमने तुझ पर, तेरे गुलाम पर, मन्सूर अम्मार पर और मजलिस के सभी लोगों पर रहमत की, यानी उन्हें बख़्श (मुक्त कर) दिया।"

एक बार हारूं रशीद ने इन्हीं सन्त मन्सूर अम्मार से दो प्रश्न किये, "दुनिया में सबसे ज्यादा अक्लमंद कौन है ? और सबसे ज्यादा बेवकूफ कौन है ?" मन्सूर ने उत्तर में कहा, दुनिया का सबसे अक्लमंद इंसान वह है जो अपने-आपको अपने बनानेवाले के हाथ में सौंपकर बिलकुल उसके हुक्म में रहता है और दुनिया का सबसे ज्यादा जाहिल (मूर्ख) वह है जो जानता है कि जो कुछ वह कर रहा है, वह गुनाह है फिर भी वह उसे छोड़ता नहीं।" मन्सूर अम्मार की यह सूक्ति भी याद रखने लायक है, "अल्लाह ने आरिफ़ों का दिल ज़िक्र के लिए और अहले दुनिया का दिल लालच के

लिए बनाया है।" (जो जागरूक भक्त हैं वह इस मंत्र को कसौटी की भांति अपने मन में रखकर यह देख सकते हैं कि उनका दिल कैसा है। यदि भजन, सुमिरन और ज्ञानमर्म में उसे रस आता है तो वह ठीक राह पर है और यदि दुनिया की चीजों के लिए उसका मन दौड़ता है तो ज्ञानी कहलाने की इच्छा छोड़कर उसे अपने वद को ठीक करने में जी-जान से लग जाना चाहिए।)

एक रोज़ रात को घूमते हुए इन्हें एक घर में से किसी की दर्द-भरी आवाज़ सुनाई दी। सुना कि कोई कह रहा था, "ऐ अल्लाह, मैंने तेरी नाफर्मानी (अवज्ञा) के सबब यह काम नहीं किया बल्कि नफ़्स ने मुझे बहकाया और शैतान ने नफ़्स की मदद की। तू अपनी रहमत (करुणा) से माफ कर दे, सिवा तेरे कोई मेरा हाथ पकड़ने वाला नहीं है।" किसी दुखिया की यह दीन याचना सुनकर वह बेक़रार हो गए और उसी बेकरारी (व्याकुलता) की हालत में यह आयत उनके मुंह से निकली, "ऐ ईमानवालो, अपने नफ़्स को और अपने अहल को दोज़ख़ की आग से बचाओ कि जिसका इंधन आदमी और पत्थर है।" सुबह को घूमते हुए फिर उधर से गुज़रे तो उसी मकान से रोने की आवाज़ सुनी। पूछा तो लोगों ने कहा, "कल रात को किसीने दरवाज़े पर एक आयत पढ़ी थी जिसे सुनकर एक लड़का ख़ौफ़-ए-इलाही से मर गया।" मन्सूर अम्मार ने कहा, "आह उसका क़ातिल (वधिक) मैं ही हूँ।" वह लड़का स्वयं ही अपने कृत्य से अत्यधिक व्यथित था। उस आयत ने उसके मन पर मार्मिक चोट की।

उनकी सूक्तियाँ हैं—ख़ल्क़ से मिलनेवाले ख़ालिक़ से दूर रहते हैं। नफ़्स की पैरवी से इन्सान बला में फंसता है। दुनिया की मुसीबतों पर सब्र न करनेवाला आख़िरत (परलोक) की मुसीबतों में फंसता है। तारक यानी त्यागी बे-ग़म होता है और ख़ामोश रहनेवाले को माफ़ी मांगने की ज़रूरत नहीं होती। और कहा—जिस गुनाह के करने की ताक़त न हो और फिर भी करे तो वह बड़ा गुनाहगार होता है। जिससे बच सकता हो उसको करना तो बुरा है ही, पर जिस बुराई को कर भी नहीं सकता उसे करने जाना तो और भी बुरा।

‘मण्डल’ द्वारा प्रकाशित

धर्म-अध्यात्म साहित्य



- गीता माता
- अनासक्ति योग
- गीता बोध
- गीता की महिमा
- विनय पत्रिका
- भगवद्गीता
- उपनिषद
- वेदान्त
- भजगोविन्दम्
- बुद्धवाणी
- बुद्ध जीवन दर्शन
- बोधि वृक्ष की छाया में
- बुद्ध और बौद्ध साधक
- अमृतानुभव
- जागे मंगल प्रेरणा
- निर्मल धारा धर्म की
- उपनिषदों का बोध
- तमिल वेद
- सूफी सन्त चरित





सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन